

# हे प्रभो! तेरापंश

सोहनराज कोठारी

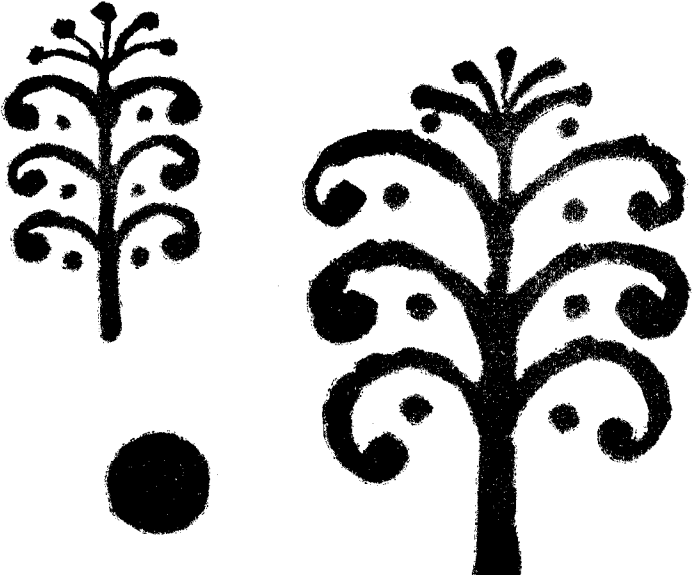


हे प्रभो ! ते रापंथ

**आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन**

# हे प्रभो! तेरापंथ

सोहनराज कोठारी



मूल्य : पचीस रुपये / संस्करण; १९८६ / आवरण-शिल्पी : हरिपाल त्यागी /  
प्रकाशक : कमलेश चतुर्वेदी, प्रबन्धक, आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राजस्थान) /  
मुद्रक : सौरभ प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

**HE PRABHO ! TERAPANTH : Sohan Raj Kothari Rs. 25.00**

## भूमिका

तेरापंथ एक गौरवशाली धर्मसंघ है, जैन धर्म में आये शैथिल्य के विरुद्ध विचार और आचार की उत्क्रांति के रूप में वि० सं० १८१७ में इसका उद्भव हुआ, तब से आज तक इसमें उत्तरोत्तर निखार आता रहा है, उत्क्रांति के पुरोधा प्रथम आचार्य स्वामी भीखणजी से लेकर वर्तमान आचार्यश्री तुलसी तक ने इसकी महत्ता को न केवल अधुण बनाये रखा है, अपितु उसे विकसित और वृद्धिगत किया है। तेरापंथ के इतिहास का अनुशीलन करने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने आचार्यों के उन महनीय कार्यकलापों को जानता है तथा उनके प्रति एक अनिर्वचनीय गौरवानुभूति रखता है।

प्रारम्भ काल से ही तेरापंथ का अपने इतिहास के प्रति बड़ा जागरूक एवं सुलझा हुआ दृष्टिकोण रहा है। उसने इतिहास का निर्माण करने में जितना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है, उतना ही उसके संरक्षण और लेखन में भी, इसीलिए अपने प्रारम्भ काल से लेकर आज तक का तेरापंथ का इतिहास अविकल रूप से उपलब्ध है, इतिहास लेखन के कार्य में यहां आचार्यों से लेकर साधुओं एवं श्रावकों तक की एक लम्बी शृंखला रही है, जो अपने जागरूक कर्तव्य के माध्यम से आगे से आगे की कड़ी जोड़ती चली आयी है।

तेरापंथ के नवम् अधिशास्ता अमृतपुरुष आचार्यश्री तुलसी अपने शासनकाल के पचासवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं, इस संप्रेरक अवसर पर समग्र समाज में एक नवोल्लास एवं नवोत्साह की लहर है, अनेक परियोजनाएं इसी उपलक्ष्य में कार्य-रूप में परिणत की जा रही हैं। तेरापंथ प्रवक्ता, पूर्व न्यायाधीश श्री सोहनराज कोठारी भी ऐसे अवसर से संप्रेरित होकर संघीय इतिहास के लेखन-कार्य में एक नयी कड़ी जोड़ रहे हैं। वे तेरापंथ इतिहास के मर्मज्ञ हैं, समय-समय पर इस विषय में उन्होंने काफी लिखा भी है। प्राचीनता के जखीरे में से कुछ नवीन खोज निकालने की उनकी मनोवृत्ति इतिहास कार्य के लिए बहुत उपयोगी कही जा सकती है।

‘हे प्रभो ! तेरापंथ’ नामक प्रस्तुत पुस्तक में कोठारीजी ने तेरापंथ के

भी आचार्यों तथा कतिपय प्रभावशाली मुनियों का संक्षिप्त जीवन-परिचय एवं उनके ऐतिहासिक कार्यों की स्वल्प-सी अवगति प्रदान की है। सहज, सरल एवं प्रवाहमयी भाषा तथा सुशृंखलित वाक्य-विन्यास प्रतिपाद्य विषय को आद्योपान्त सुविहित बनाये रखता है। यह इस पुस्तक की अपनी विशेषता है, एक न्यायाधीश की मानसिकता से छनकर आये हुए तर्कपूर्ण निष्कर्ष ही जिज्ञासुओं के सम्मुख और अधिक गहनता से इतिहास के अवगाहन की प्रेरणा प्रस्तुत करते हैं। संक्षिप्त रुचि पाठकों के लिए इतिहास की यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसी आशा करता हूँ।

६ अक्टूबर, १९८५  
तेरापंथी सभाभवन,  
बालोतरा (राजस्थान)

—मुनि बुद्धमल्ल  
(निकाय प्रमुख)

## प्रस्तुति

परम्परागत संस्कारित तेरापंथी परिवार में जन्म लेने व मेरे पूज्य पिताजी श्री प्रतापमलजी कोठारी, पश्चिमी राजस्थान के लब्ध-प्रतिष्ठित नागरिक एवं आचार्य-श्री तुलसी के अत्यन्त आस्थावान श्रावक होने के कारण शैशवावस्था से मेरा तेरापंथ से परिचय हो गया पर वह मात्र औपचारिक रहा। कॉलेज शिक्षा समाप्त करने व वकालत की विश्लेषक बुद्धि प्राप्त करने के बाद बुद्धिजीवी की तरह आचार्यश्री से प्रथम सम्पर्क संवत् २०१० के उनके जोधपुर चातुर्मासिक प्रवास में हुआ और तब से आचार्य-प्रवर की सतत शुभदृष्टि के कारण उनके प्रति मेरी आस्था निरन्तर प्रगाढ़ होती गई और वे मेरे मानस में स्थायी रूप से अंकित होते गये। वे अनायास ही मेरे हृदय की हर धड़कन, श्वास, भाव और प्राण में बसते गए और मैं सहज में 'तुलसी शरणं पवज्जामि' में संलीन हो गया। मेरी अपनी व्यस्तताओं व विवशताओं के कारण उनके साक्षात् दर्शन-सेवा का कम अवसर मिलने पर भी मैं उनको अपने से कभी दूर नहीं मानता। वे कभी नींद में स्वप्नों में आकर दर्शन दे देते हैं तो कभी जागृतावस्था में आंखें मूंदकर मैं उनके दर्शन कर लेता हूँ। वे सहज भाव से हाथ ऊपर उठाकर आशीर्वाद दे देते हैं, मैं सुख पृच्छा कर लेता हूँ। कभी-कभी वार्ता भी हो जाती है। यह कैसे होता है? मैं स्वयं नहीं जानता, पर अनेक बार मैंने ऐसा अनुभव किया है। मैं अपने चिन्तामुक्त जीवन को उनकी शुभदृष्टि का प्रसाद मानता हूँ। उन्होंने स्वयं को ही नहीं बल्कि अपने प्रेरणास्रोत पूर्व आचार्यों को भी मेरे साथ सम्बद्ध कर दिया है और यही कारण है कि आचार्यश्री भिक्षु, श्रीमद् जयाचार्य व श्रीमद् कालूगणि आदि के बारे में मैं जब भी सोचता हूँ या कुछ कहता हूँ तो ऐसा भाव-विभोर हो जाता हूँ कि मुझे अपनी विद्यमानता का भी भान नहीं रहता। मेरे कई मित्रों ने भी ऐसा महसूस किया है। इस वातावरण में कभी-कभी तेरापंथ का समूचा इतिहास चित्रपट की तरह मेरे सामने आ जाता है और मैं आत्मीय भाव से मात्र उसको निहारता रहता हूँ। कुछ वर्षों से मेरे मित्रों की इच्छा रही कि तेरापंथ के बारे में अपनी एकात्मकता को मैं शब्दों में प्रकट करूँ, पर हृदय में भावनाओं के पुलिदे को



अनावृत करना मेरे लिए सम्भव नहीं हो सका। इस बार भाई मोतीलालजी रांका व श्री देवेन्द्रजी कर्णावट व डॉ० महेन्द्र कर्णावट का विशेष आग्रह रहा कि मैं अमृत महोत्सव के अवसर पर जनता के पढ़ने योग्य तेरापंथ इतिहास की संक्षिप्त झांकी प्रस्तुत करूं। पता नहीं किस प्रेरणा ने कार्य किया? मैं सप्ताह भर दो-तीन घंटे प्रति दिन बैठकर लिखता रहा और एक लघु पुस्तिका ने आकार ले लिया। मेरे मन में तेरापंथ धर्मसंघ के प्रति जो भावना है उसे मैं सर्वांश में लिखकर प्रकट कर सकूँ यह कदापि सम्भव नहीं है पर फिर भी मैंने एक स्वल्प प्रयास इस दिशा में किया है। अगर यह पुस्तिका तेरापंथ इतिहास के अध्ययन की ओर पाठकों की रुचि जागृत कर सके तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगा। मेरा निश्चित विश्वास है कि तेरापंथ धर्मसंघ का इतिहास इतना गौरवशाली है कि उसकी चर्चा मात्र से ही अभय और असंगता से साक्षात् हो सकता है।

वि० सं० २०४२ आषाढ़ वदि ६३

११-६-८५

—सोहनराज कोठारी

प्रभापुंज, महाप्राण, अमृतपुरुष, युगप्रधान पूज्य आचार्यश्री तुलसी को,  
जिन्होंने तेरापंथ धर्मसंघ में, अध्यात्म के विविध आयामों को  
विकसित कर, समूचे राष्ट्र की चेतना को जागृत करने का,  
नया कीर्तिमान स्थापित किया व जिनकी शुभदृष्टि  
से मुझे शांत, सुखद, सात्त्विक एवं निरापद  
जीवन जीने की कला प्राप्त हुई—  
सादर साभार सहित—



## अनुक्रम

१. तेरापंथ का उदयकाल  
तेरापंथ का जन्म और उसके आदि-प्रणेता आचार्यश्री भिक्षु १
२. तेरापंथ का पालन-पोषण व क्रमिक विकासकाल  
द्वितीय आचार्यश्री भारीमालजी ३६  
तृतीय आचार्य श्रीमद् ऋषिराय ४४
३. तेरापंथ का निर्माण व युवाकाल में प्रवेश  
चतुर्थ आचार्य श्रीमद् जयाचार्य ५५
४. मर्यादा-अनुशासन का पुष्टिकाल  
पंचमाचार्य श्री मघवागणि ८१  
छठे आचार्य श्रीमद् माणकगणि ९४  
सप्तमाचार्य श्रीमद् डालगणि ९८
५. नवयुग का उदय व विकास  
अष्टमाचार्य कालूगणि ११४  
युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी—नवमाचार्य १४०
६. आचार्यश्री तुलसी का युग  
कीर्तिमानों की अपूर्व शृंखला १४८
७. आचार्य भिक्षु की मान्यताएं व मर्यादाएं :  
आज के युग में उनकी प्रासंगिकता व सार्थकता १६३

● परिशिष्ट

तेरापंथ का विधान	१७३
गण-विशुद्धिकरण हाजरी	१७७
लेख-पत्र	१८२
मर्यादा महोत्सव	१८५
तेरापंथ के ऐतिहासिक स्थल	१८७
तेरापंथ की अग्रणी साध्वियां	१८८
आचार्यों के चातुर्मास	१८९

## तेरापंथ का उदयकाल

### तेरापंथ का जन्म और उसके आदि-प्रणेता आचार्यश्री भिक्षु

#### गर्भ-प्रवेश

संवत् १७८२ आसोज शुक्ला ३ को रात्रि का अन्तिम प्रहर। वर्तमान राजस्थान राज्य के पाली जिले (प्राचीन मारवाड़ राज्य के कांठा क्षेत्र) के एक छोटे-से गांव कंटालिया में शाह बल्लूजी व उनकी धर्मपत्नी दीपांबाई फूस के छप्पर के नीचे आसपास सोये हुए थे। रात्रि की नीरव बेला में दीपांबाई को अर्द्धजागृत अवस्था में स्वप्न आया कि एक विशाल, तरुण, तेजस्वी सिंह उनके शरीर में प्रवेश पा रहा है। वे तत्काल उठीं, उन्होंने अपने पति को जगाया और स्वप्न की बात बताई। शाह बल्लूजी अनुभवसिद्ध व्यक्ति थे। उन्होंने स्वप्न की बात पर गौर कर कहा, “स्वप्न बहुत शुभ है, तुम्हारे पुत्र होगा, जो वनराज सिंह की तरह साहसी एवं निर्भीक राजा बनेगा, पर क्योंकि सिंह स्वयं ही अपना मार्ग खोजकर आगे बढ़ता है, अतः अपने पुत्र को, समझ आने के बाद, यौवन में प्रवेश करने के पूर्व, मुझे संभवतः शरीर छोड़ना पड़ेगा। उसके शौर्य और ऐश्वर्य की गाथाएं मैं न सुन सकूंगा। न देख सकूंगा। सिंह को अपनी माता से प्रतिरोध की आशंका नहीं रहती, अतः पुत्र की तेजस्विता एवं प्रखरता से तुम्हारा साक्षात् होना निश्चित है।” दीपांबाई अपने पति की भविष्यवाणी सुनकर तेजस्वी पुत्र की प्राप्ति की आशा में जहां प्रसन्न हुईं, वहीं अपने पति के असामयिक काल-कवलित होने की आशंका मात्र से सिहर उठी। वह अपने स्वप्न की बात किसी पारिवारिक जन या सगे-संबंधी को कहने का फिर साहस नहीं जुटा सकीं।<sup>१</sup>

#### जन्म और नामकरण

स्वप्न के ठीक १८० दिन बाद संवत् १७८३ के आषाढ़ शुक्ला १३ के शुभ दिन दीपांबाई के उदर से पुत्र का जन्म हुआ। माता-पिता ने स्वप्न के अनुसार

---

१. स्वीकृत तथ्यों के विश्लेषण के निष्कर्षों के आधार पर।

## २ हे प्रभो ! तेरापंथ

नवजात शिशु को दीप्तिमान पाकर जब उसके चेहरे पर भीषण ओज व तेज देखा तो उसका नाम 'भीखन' दिया। शिशुवय में इसी नाम का लघु रूप 'भिक्षु' हो गया और सभी इस बालक को 'भिक्षु' कहकर पुकारने लगे। उस समय किसे पता था कि इसी नाम से भगवान् महावीर ने अपने अनुगत शिष्यों को आगम वाणी में स्थान-स्थान पर 'भिक्षु' कहकर संबोधित किया है और यही बालक आगे चलकर भगवान् महावीर के बताये मार्ग का अनुसरण कर सच्चा भिक्षु होगा व आचार्य भिक्षु के नाम से जैन धर्म एवं परम्परा का सही स्वरूप उजागर करते हेतु धर्म-क्रान्ति करेगा व लाखों लोगों की आस्था का केन्द्र बन जाएगा ?

### जन्मभूमि, वंश-परिचय, परिवार आदि

भिक्षु की जन्मभूमि कंटालिया ग्राम तत्कालीन मारवाड़ राज्य के कांठा प्रदेश के एक छोर पर बसा हुआ था। वहाँ ठाकुर बख्तसिंह राज्य करते थे। गांव में घनी आबादी थी व ओसवालों के बहुत घर थे। ठाकुर बख्तसिंह मारवाड़ राज्य के उमराव थे। मारवाड़ राज्य के राजा महाराजा अभयसिंह थे, जो संवत् १७८१ श्रावण बदि में राज्यारूढ़ हुए थे।

भिक्षु बड़साजन ओसवाल वंश में जन्मे, उनका गौत्र संकलेचा था, उनके पिता का नाम शाह बल्लूजी व माता का नाम दीपांबाई था। उनके पितामह का नाम पांचोजी था, जिनके बड़े भाई नाकरजी व छोटे भाई गेलोजी थे। उनके ताऊ का नाम सुखोजी व चाचा का नाम पेमोजी था। उनके बड़े भाई का नाम होलोजी था जो उनकी विमाता से थे।

भिक्षु बचपन से ही असाधारण मेधावी, कुशाग्र बुद्धि व प्रत्युत्पन्नमति के धनी थे। वे बोलने में बहुत ही चतुर थे। उनकी बात न्यायसंगत एवं युक्तियुक्त होती थी। लोगों की घरेलू समस्याओं का भिक्षु समाधान करते। उनकी शिक्षा ग्राम-गुरु के यहाँ हुई और थोड़े ही समय में उन्होंने ज्ञानार्जन कर, महाजनी विद्या में निपुणता प्राप्त कर ली।

### धर्म-सम्प्रदाय

भिक्षु के पिता शाह बल्लूजी के दादा कपूरजी ने ढूँढिया सम्प्रदाय में दीक्षा ली थी। वे ४३ दिन की तपस्या में १३ दिन का संथारा कर स्वर्गवासी हुए थे। बल्लूजी के भाई पेमोजी पोतियाबंध सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। भिक्षु के माता-पिता जैन गच्छ-वासी सम्प्रदाय के अनुयायी थे व कुलगुरु होने के नाते भिक्षु का भी वहीं आना-जाना होता रहा। बाद में वे पोतियाबंध सम्प्रदाय के पास आने-जाने लगे, पर वहाँ उन्हें संतोष नहीं हुआ। फिर उनको छोड़कर वे ढूँढिया सम्प्रदाय के आचार्य रुघनाथजी महाराज के शिष्य बने। ऐसा लगता था कि वे

सत्य की खोज में एक के बाद एक सम्प्रदाय को टटोलते रहे व सत्य उपलब्ध न होने पर उसे छोड़ते रहे।

### गृहस्थ जीवन

भिक्षु का विवाह बगड़ी गांव के चकलोट बास में रहने वाले बांठिया परिवार की लड़की सुगुणी बाई से हुआ, जो बहुत ही सरल, सुविनीत, संस्कारी व सुन्दर महिला थी। भिक्षु के एक लड़की भी हुई, जिसका विवाह बाद में नीमावास गांव के बाफणा परिवार में हुआ।<sup>१</sup> भिक्षु में प्रारम्भ से ही अभय और असंगता की भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी और उन्हें दम्भ व ढोंग बिलकुल पसन्द नहीं था। उनकी प्रकृति पारदर्शी स्फटिक की तरह निश्छल, निष्कलंक व निर्मल थी और इसी प्रकृति के कारण उन्होंने न केवल अपने जीवन को विशुद्ध क्रान्ति का प्रतीक बनाया, बल्कि समूचे लोक-जीवन में उन्होंने ज्योति जागृत की व युगों-युगों के लिए वे क्रान्तिद्रष्टा बन गए। गृहस्थ जीवन में उनके बहुविध गुण सम्पन्न व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाली अनेक घटनाएं हुईं, जिनमें उनकी प्रकृति व वृत्तियों का तलस्पर्शी परिचय मिलता है। 'मजने पर सन्देह,' 'आरण के कंडे की तम्बाकू,' 'गाली भरे गीत,' 'लोटे की घिसाई,' 'कंटक विनोद,' 'थाली के दो टुकड़े' आदि गृहस्थ जीवन के अनेक प्रसंगों का विस्तृत उल्लेख 'तेरापंथ का इतिहास' (लेखक मुनिश्री बुद्धमलजी) एवं 'शासन समुद्र, भाग १' (लेखक मुनिश्री नवरत्नमलजी) में हुआ है।

### वैराग्य भावना और दीक्षा

गृहस्थ जीवन में आबद्ध होने पर भी भिक्षु की आन्तरिक वृत्तियां बड़ी वैराग्यपूर्ण थीं। श्रीमद् जयाचार्य ने लिखा है, "भिक्षु ने परभवतणी रे लाल, चिंता अधिकी चित्त।" संयोग से उनकी धर्मपत्नी बड़ी सुशील, विवेकी एवं धर्मपरायण थी। पति-पत्नी का ऐसा मणिकांचन योग उनके जीवन में वैराग्य की अभिवृद्धि करने वाला सिद्ध हुआ। विवाह के दो-तीन वर्ष बाद ही पति-पत्नी दोनों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया और वे सांसारिक कार्यों से निवृत्त होने व संयम-साधना में प्रवृत्त होने की तैयारी करने लगे। संयम के मार्ग में होने वाले कष्टों का साक्षात् अनुभव करने के लिए उन्होंने तांबे के लोटे में कैरों का धोवण पानी डालकर व उसे दिन की धूप में केलू की छत पर हांडी में रख कर उस खारे, निस्सार गर्म पानी को पीना आरम्भ किया। यह एक दुष्कर कार्य था पर भिक्षु ने सोचा कि आत्मलक्षी संयम-साधना तो अत्यंत दुष्कर है और जब

१. आचार्य भिक्षु : व्यक्तित्व व कृतित्व—श्रीचंद रामपुरिया, पृ० १०



उसे स्वीकार करना है, तो इसकी क्या चिंता ? दोनों ने इस प्रकार त्याग-तपस्या के कई वर्षों तक सतत प्रयोग किये, पर संयोग की बात, जब ये प्रयोग चल रहे थे कि भिक्षु की पत्नी रोगग्रस्त हो गई व रोग की भयंकर वेदना में ही उनका अकस्मात् देहान्त हो गया। इस घटना ने भिक्षु को जीवन की नश्वरता का तीव्र बोध करा दिया, और वे तत्काल २५ वर्ष की भर यौवन आयु में सारी सुख-सुविधाओं को छोड़ आचार्यश्री रुघनाथजी महाराज के पास जैन दीक्षा ग्रहण करने को तैयार हो गए। उनके पिता का देहान्त पहले ही हो चुका था, माता अपने स्वप्न के अनुसार पुत्र के राजा होने की आकांक्षा पाल रही थी, अतः जब उसके द्वारा अनुमति देने का प्रश्न आया तो उसने अनुमति देने से इनकार कर दिया। आचार्य रुघनाथजी महाराज को जब इसकी जानकारी मिली व दीपांबाई ने अपने स्वप्न की बात बताई, तो उन्होंने भिक्षु के बारे में भविष्यवाणी करते हुए कहा, “बहन ! तुम्हारा पुत्र बहुत होनहार है, यह अभय और असंग रहकर सिंह की तरह गूजेगा, बड़े-बड़े सामन्त और श्रीमन्त इसकी चरणरज लेने व अर्चना करने को लालायित रहेंगे, यह निश्चित ही इतिहास-पुरुष होगा। यह चारित्रात्माओं का शिखर, त्यागी पुरुषों का मुकुटमणि, तत्त्ववेत्ताओं का अधिराज व खण्ड आत्म-ज्योति का अक्षय पात्र होगा।”<sup>1</sup> आचार्यजी से समाधान प्राप्त कर माता ने दीक्षा की अनुमति दी व संवत् १८०८ के मिंगसर वदि १२ को बगड़ी गाँव में, नदी किनारे, विशाल वट वृक्ष के नीचे, श्री भिक्षु प्रव्रजित हुए व गुरु ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि “उनकी शिष्य सम्पदा, ज्ञान साधना व यश का विस्तार वट वृक्ष की शाखाओं की तरह फैले।” वह वट वृक्ष आज भी मौजूद है व श्री भिक्षु के संसार-त्याग की गाथा सुना रहा है। श्री भिक्षु अब भिक्षु स्वामी बन गये।

### व्यक्तित्व

भिक्षु स्वामी का वर्ण श्याम, कद दीर्घ व लंबा, देह विशाल, निर्मल एवं स्वस्थ थी। उनका ललाट प्रशस्त, चेहरा हंसमुख, मुखाकृति दीप्तिमय, आकृति ओजस्वी एवं आकर्षक थी। उनके नेत्रों में रक्तिम आभा के साथ सहज दयाद्रंभाव था, जिससे अमृत झरता था। उनकी चाल हस्ती की तरह मस्त व गति तीव्र थी। उनकी वाणी में ओज व मधुर चुम्बकीय प्रभाव था। शब्दों में आषाढ के मेघ की-सी गर्जना व सिंहनाद का बोध होता था। वे स्थितप्रज्ञ थे, उनकी बुद्धि शुद्ध एवं स्थिर होने के साथ कुशाग्र, उर्वरा व प्रत्युत्पन्न मति धारण किए हुए थी। उनके शरीर पर अनेक शुभ लक्षण थे, उनके दाहिने पैर में ऊर्ध्व रेखा का चिह्न, दाहिने

१. आचार्य भिक्षु : व्यक्तित्व एवं कृतित्व—श्रीचन्द रामपुरिया, पृ० १६

हाथ के मध्य मत्स्याकार रेखा, दाहिनी कलाई के पास तीन मणि बंध, दोनों हाथों की सभी अंगुलियों पर चक्र, ग्रीवा व ललाट पर तीन-तीन लम्बी रेखाएँ, दोनों कानों की लोल गाढ़ी व उन पर रोम, पेट पर नाभि के पास स्वस्तिक का चिह्न व ऊपर ध्वजा का आकार थे।

### समसामयिक सन्त व राजा

भिक्षु स्वामी के समसामयिक महापुरुषों में शाहपुरा पीठ रामस्नेही सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी रामचरणजी महाराज का नाम उल्लेखनीय है। वे भिक्षु के गृहस्थावस्था में मित्र थे। भिक्षु की बुआ सोढ़ा गाँव में ब्याही थी, रामचरणजी की वह जन्मस्थली थी। बचपन में भिक्षु सोढ़ा गाँव जाते, तब दोनों का सम्पर्क होता रहता। दोनों का हृदय संसार से विरक्त था, अतः दोनों घंटों बैठकर अध्यात्म-चर्चा करते व संन्यासी बनने की कामना करते। रामचरणजी मूलतः टूढाड़ में मालपुरा गाँव के थे। उनके पिता का नाम बख्तरामजी व माता का नाम देऊजी था। उनका जन्म संवत् १७७६ की माघ शुक्ला १४ को उनके ननिहाल सोढ़ा गाँव में हुआ था। वे विजयवर्गीय वैश्य थे। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जयपुर-नरेश ने उन्हें राज्याधिकारी नियुक्त किया, पर जिनके चित्तवृत्ति में वैराग्य हो, वह भला सांसारिक बन्धनों में कब तक बंधा रह सकता है? संवत् १८०८ की भादवा शुक्ला सप्तमी को उन्होंने दाँतड़ा गाँव में स्वामी कृपारामजी के पास दीक्षा स्वीकार कर ली व रामस्नेही सम्प्रदाय में अपने अध्यात्म के नये प्रयोग किए व शाहपुरा पीठ कायम की। उनकी रचनाओं में जैन संस्कारों व तेरापंथ की विचारशैली का स्पष्ट प्रभाव है, जिसका कारण सम्भवतः स्वामी भिक्षु का नैकदय रहा होगा।

भिक्षु जब दीक्षित हुए तब जोधपुर में महाराजा बख्तसिंहजी राज्य कर रहे थे, जिन्होंने उसी वर्ष अपने भतीजे महाराज रामसिंह को परास्त कर श्रावण वदि १२ को जोधपुर किले पर कब्जा किया। मेवाड़ में उस समय महाराणा रामसिंह द्वितीय का आधिपत्य था जो विक्रम संवत् १८०९ में राज्यारूढ़ हुए।

### दीक्षा के बाद आठ वर्ष

दीक्षा के बाद, आठ वर्ष तक भिक्षु स्वामी ने मनोयोगपूर्वक जैन आगम-ग्रन्थों का गंभीर एवं तलस्पर्शी अध्ययन किया और थोड़े समय में ही उन्हें जैन धर्म, दर्शन व शीलचर्या का अच्छा ज्ञान हो गया। दीक्षा के समय उन्हें न तो साधुत्व के शुद्ध आचार की पूरी जानकारी थी और न तत्त्वों का ही गहरा ज्ञान था। अध्ययन के साथ, उन्हें लगा कि धर्मसंघों में सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् चारित्र्य की साधना का अभाव है व कहीं-कहीं दृष्टि-विपर्यय भी है। उन्होंने देखा कि

६ हे प्रभो ! तेरापंथ

साधु अपने लिए बनाये स्थानकों में रहते हैं, अपने लिए खरीदे हुए उपकरणों का प्रयोग करते हैं, विवेक-रहित, अबोध व्यक्तियों को माता-पिता की बिना अनुमति बलात् या प्रलोभन देकर दीक्षा देते हैं। मर्यादाओं का उल्लंघन कर वस्त्र, पात्र, उपकरण रखते हैं और इन दोषपूर्ण क्रियाओं का शुद्धाचार स्थापित करने में संकोच नहीं करते। भिक्षु स्वामी को लगा कि संसार को निस्सार समझकर छोड़ने पर भी, उन्हें शुद्ध शील चर्चा नहीं मिली और इस प्रकार उनके मानस में तत्कालीन शिथिलाचार के प्रति असन्तोष की रेखाएँ उभरने लगीं पर उनका निश्चित आकार लेना अभी शेष था और उसके लिए अभी अवसर नहीं आया था।

अपने अध्ययन के फलस्वरूप, शिथिलाचार के प्रति असन्तोष की निष्पत्ति होने के उपरान्त भी, आचार्य रघनाथजी महाराज के प्रति वे पूर्ण विनयनिष्ठ व सेवाभावी बने रहे, वे आत्मजिज्ञासा की तृप्ति के लिए, अपने आचार्य महाराज को आचार-विचार के संबंध में अत्यन्त शिष्टतापूर्वक प्रश्न पूछते पर आचार्यजी या तो प्रश्नों का उत्तर नहीं देते या टालमटोल कर जाते। वे आचार्य रघनाथजी के प्रिय शिष्यों में थे, उनकी उत्कट वैराग्य भावना व मेधा से आचार्यजी उन से आंतरिक स्नेह रखते थे व पूरे समाज में उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। यह बात प्रायः प्रकट थी कि उस धर्मसंघ के भावी आचार्य भिक्षु स्वामी होंगे। गुरु-शिष्य का यह आत्मीय भाव वर्षों तक चलता रहा, न शिष्य की जिज्ञासावृत्ति ने आचार्यजी के मन में अविश्वास पैदा किया, न आचार्य की उपेक्षावृत्ति ने शिष्य के मन में अविनय भाव की सृष्टि की।

### बोध-लाभ

दीक्षा का सातवां वर्ष बीतते एक ऐसी घटना घटी, जिसने भिक्षु स्वामी के जीवन में एक महान् परिवर्तन ला दिया। मेवाड़ में विशाल रामसमन्द-शील के किनारे 'राजनगर' नाम का एक ऐतिहासिक शहर है। उस समय वहाँ जैन धर्मावलम्बियों की घनी बस्ती थी, जहाँ स्थानकवासी परम्परा के आचार्य रघनाथ जी व उनके गुरुभाई आचार्य जयमलजी के सम्प्रदाय के अनेक श्रावक रहते थे और उनमें कई तत्त्वज्ञ व आगम रहस्य को समझने वाले थे। संवत् १८१४ में आचार्य जयमलजी के शिष्य थिरपालजी, फतेचंदजी, बख्तमलजी, भारमलजी ने राजनगर में चातुर्मास किया, वहाँ श्रावकों से चर्चा करने के बाद उन्हें प्रतीत हुआ कि उनके साधवाचार व मान्यताओं में दोष है और उन्होंने आगमोक्त आधार पर मान्यताओं की पुनर्स्थापना करते हुए कहा, नवतत्त्व की जानकारी बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती, सम्यक्त्व के बिना श्रावकत्व व साधुत्व नहीं होता, केवली की आज्ञा के बाहर धर्म नहीं होता, व्रत में धर्म और अन्न में अधर्म होता है एवं मोह अनुकम्पा या सावध अनुकम्पा में पाप होता है।”

इन मान्यताओं का श्रावकों पर प्रभाव पड़ा और उन्हें परम्परागत श्रद्धा-आचार ठीक नहीं लगे। वे शंकाशील हो गए, उनमें आचार्य रघुनाथजी के श्रावक भी थे, जिनमें प्रमुखतः चतरोजी पोरवाल थे व उनके साथ अन्य कई ओसवाल पोरवाल श्रावक थे। उन्होंने विद्रोह का झण्डा उठाया व साधुओं को वंदना करना बंद कर दिया।

आचार्य रघुनाथजी महाराज उस समय मारवाड़ में थे। उन्हें राजनगर के श्रावकों के विद्रोह की जानकारी मिली, तो उन्होंने भिक्षु स्वामी को सक्षम व योग्य समझकर, श्रावकों की शंका समाहित करने के लिए संवत् १८१५ का चातुर्मासिक प्रवास राजनगर में करने हेतु भेजा। भिक्षु स्वामी ने गुरु-आज्ञा शिरोधार्य कर अपने सहयोगी मुनि टोकरजी, हरनाथजी, वीरभाणजी व भारमल जी के साथ राजनगर में आकर चातुर्मास किया। चातुर्मास के प्रारम्भ में ही श्रावकों ने साध्वाचार के विरुद्ध अनेकानेक अभियोग उनके समक्ष रखे। भिक्षु स्वामी ने अपने बुद्धिबल व वाक्पटुता से प्रभावित कर उन्हें चरण स्पर्श कर साधु वन्दना के लिए राजी तो कर लिया पर न तो उनके मन की शंकाएं निरस्त हुईं और न भिक्षु स्वामी का अन्तर्मन ही संतुष्ट हुआ। उन्होंने आगमों का गहराई से अवलोकन करने व श्रावक समाज को सही समाधान देने का संकल्प लिया और अपने गुरु का सम्मान रखने के लिए अपने बुद्धि-कौशल से कुछ समय तक उनके विद्रोह का शमन कर दिया।

संयोग की बात, जिस दिन श्रावकों को वन्दना करवाना प्रारम्भ किया, उसी रात भिक्षु स्वामी को मन के गहरे अंतर्द्वंद्व व उससे उत्पन्न अनुताप के कारण तीव्र ज्वर का प्रकोप हो गया। शीत ज्वर की भयंकर कंपकंपी और घोर वेदना के साथ, उनके विचारों में तुमुल संघर्ष मच गया। प्रवंचना की प्रताड़ना में उनकी आत्मा मर्माहत हो उठी व उन्हें तीव्र पश्चाताप व आत्मग्लानि के भाव कचोटने लगे, “मैंने अनर्थ कर दिया, श्रावकों की सच्ची बात को झूठा ठहराया, इस समय मेरी मृत्यु हो जाय तो मेरी क्या गति होगी? गुरु का झूठा सम्मान रखने के लिए भगवान् के वचनों को उत्थापित कर मैंने कितना बड़ा पाप किया है? मेरे दुर्गति को रोकने में गुरु कहां तक सहायक होंगे?” भिक्षु की आत्मा पवित्र भावनाओं से भावित हुई और उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की, “यदि मैं अस्वस्थता से मुक्त हुआ तो मैं निष्पक्षभाव से सत्य मार्ग को अपनाऊंगा। जिनेश्वरदेव के प्रस्थापित सिद्धान्तों के अनुसार चलूंगा और इसमें मैं किसी से कोई अपेक्षा नहीं रखूंगा।” इस संकल्प के साथ ही अन्तर्द्वन्द्व का निराकरण हो गया व उनका ज्वर उतर गया। इस तरह राजनगर में भिक्षु स्वामी के आभ्यन्तर नेत्रों का उन्मेष हुआ और उनके जीवन में निर्मल धर्मनीति का प्रादुर्भाव व उसकी शाश्वत

८ हे प्रभो ! तेरापंथ

स्थापना हुई। तेरापंथ धर्मसंघ में राजनगर को 'बोधस्थल' के नाम से जाना जाता है और इसकी गणना इतिहास-स्थल के रूप में की जाती है।

### विद्रोह के स्वर

भिक्षु स्वामी ने उस चातुर्मास में जैन आगमों का दो बार गहराई से अध्ययन किया तो उन्हें लगा कि धर्मसंघों में सम्यक्त्व व चारित्र्य दोनों की कमी है। उन्होंने श्रावकों को अपना निष्कर्ष बताया तो वे प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा; "आप जैसे मेधावी अध्यात्म-पुरुष से यही अपेक्षा थी।" अपने साथी साधुओं को भी उन्होंने अपना मन्तव्य बताया और वे सब उनसे सहमत हुए। भिक्षु स्वामी को सत्यदर्शन हो जाने के बाद भी वे अधीर नहीं हुए; उन्होंने विनयपूर्वक अपना निष्कर्ष अपने गुरु महाराज के पास रखने का विचार किया। यह उनकी सही सत्याग्रही वृत्ति का परिणाम था। चातुर्मास-समाप्ति पर, उन्होंने श्रावकों को आश्वस्त किया कि वे आगमोक्त शूद्र आचार पर चलने व सही मान्यताओं की प्रस्थापना करने को कटिबद्ध हैं पर वे अपने गुरुदेव के सम्मुख निष्कर्ष प्रकट करने के बाद ही निश्चित कार्यक्रम अपनाएंगे। राजनगर से मारवाड़ की ओर जाते समय रास्ते में छोटे-छोटे गांव आने से वीरभाणजी व एक साधु को अलग विहार करवाया व दो साधुओं के साथ भिक्षु स्वामी स्वयं अलग विहार करने लगे। वीरभाणजी आचार्य महाराज के पास पहले पहुंच गये व भिक्षु स्वामी की चेतावनी के उपरान्त भी, बात न पचा सकने के कारण, उन्होंने आचार्य महाराज को राजनगर की सारी स्थिति व भिक्षु स्वामी के निष्कर्षों से अवगत करा दिया। आचार्य महाराज उनकी बातों को सुनकर उदास और अन्यमनस्क हो गए व भिक्षु स्वामी जब उनके पास पहुँचे तो उन्होंने पाया कि आचार्य महाराज की दृष्टि में स्नेह का स्रोत सूख गया है। स्थिति को उन्होंने भांप लिया व सोचा कि अब उतावलेपन से कार्य बनने वाला नहीं है। उन्होंने अपने गुरु के प्रति, पूरी भक्ति प्रकट कर, पुनः विश्वास सम्पादन किया। वे शनैः-शनैः गुरु को अपनी आगमोक्त विचारधारा व साधुत्व के सही आचार पालन करने के लिए निवेदन करते रहे, पर उन्हें सहमत नहीं कर सके। भिक्षु स्वामी मात्र सिद्धान्त पर अडिग रहने वाले ही व्यक्ति नहीं थे पर संवेदनशील भी थे व अपने गुरु के प्रति अनन्य भक्ति के कारण, वे उन्हें भी सन्मार्ग पर चलने के लिए निवेदन करते रहे। आचार्य रघनाथजी महाराज का गृहस्थावस्था में जोधपुर राजघराने से संबंध था, संवत् १७८७ के जेठ वदि २ को आचार्य भूधरजी के हाथों जोधपुर में उनकी दीक्षा हुई, तब जोधपुर राज्य का पूरा लवाजमा (दो हाथी, एक हजार घोड़े, रिसाला, पलटन, सैकड़ों सरदार, जागीरदार, अमीर-उमराव) दीक्षा महोत्सव में सम्मिलित हुआ था। दीक्षा के बाद आचार्य पद प्राप्त करने व एक विशाल धर्म-

संघ के यशस्वी आचार्य होने पर भी संभवतः राजघराने से सम्बन्ध होने के कारण उनका रजोगुण पूर्ण रूप से तिरोहित नहीं हो पाया, और संभवतः यही कारण था कि वे अपने शिष्य की उचित व विनम्र प्रार्थना पर, उसके सारे सद्प्रयासों के उपरान्त, सहमत नहीं हो सके। भिक्षु स्वामी का संवत् १८१६ का चातुर्मास जोधपुर हुआ, जहां उनके चाचा गुरु आचार्य जयमलजी का भी चातुर्मास था। चातुर्मास-काल में आचार्य जयमलजी से उनकी विशद वार्ता हुई और वे सरलमना होने के कारण भिक्षु स्वामी के मन्तव्यों से सहमत हो गए। आचार्य जयमलजी बड़े विद्वान, साहित्य-सर्जक व श्रेष्ठ प्रवचनकार थे। उनकी दीक्षा १६ वर्ष की आयु में मेड़ता में संवत् १७८७ की मिंगसर वदि २ को हुई। १६ वर्ष तक उन्होंने एकांतर तप किया। अपने गुरु के स्वर्गवास के बाद २५ वर्ष तक वे लेटकर नहीं सोये। ऐसे त्यागी पुरुष के गले भिक्षु स्वामी की सारी बात सहज उतर गई। आचार्य रुघनाथजी को जब यह मालूम हुआ, तो उन्होंने सोजत के श्रावकों के माध्यम से, आचार्य जयमलजी को कहलवाया कि यदि वे भिक्षु के साथ हो गए; तो उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं रहेगी और उनके भरोसे, जो साधु-साध्वी दीक्षित हुए हैं, उनके साथ विश्वासघात हो जायेगा, और 'फकीर के दुपट्टे' वाली कहावत चरितार्थ हो जायेगी। आचार्य रुघनाथजी के आग्रह भरे संदेश से आचार्य जयमलजी का मन विचलित हो गया। उन्होंने भिक्षु स्वामी को अपना श्रेय मार्ग चुनने के लिए प्रेरित किया व उनके प्रति सद्भावना प्रकट कर सहयोग देने का आश्वासन दिया पर उनके साथ होने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

### अभिनिक्रमण और विरोध का तूफान

एक ओर भिक्षुस्वामी के मानस में सत्य-क्रान्ति की धारा प्रस्फुटित होने को आतुर हो रही थी, पर अपने गुरु को छोड़ना उन्हें प्रियकर नहीं था, तो दूसरी ओर उनके गुरु के मन में उनके प्रति अविश्वास की दरार, काफी चौड़ी हो चुकी थी और उन्हें आशंका थी कि भिक्षु उनके अन्य शिष्यों को अपने संग ले जायेगा, अतः वे भी भिक्षु स्वामी से संबंध-विच्छेद करने की सोच रहे थे, हालांकि वे यह भी जानते थे कि भिक्षु जैसा मेधावी एवं प्रखर शिष्य जाने से संघ में रिक्तता आ जाएगी व संघ का भविष्य धुंधला हो जाएगा। दोनों ओर इसी तरह के ऊहापोह के वातावरण में भिक्षु स्वामी ने संवत् १८१६ का जोधपुर चातुर्मास संपन्न कर, बगड़ी गांव में आचार्य रुघनाथजी महाराज के दर्शन किए। भिक्षु स्वामी ने कुछ समय औपचारिकता का निर्वाह करके, फिर अपने विचार, गुरु महाराज के

१. रुघनाथ चरित्र : मुनि मिश्रीमल के आधार पर तथ्यात्मक विश्लेषण।

१० हे प्रभो ! तेरापंथ

सामने रखे ।

संवत् १८१६ (विक्रम संवत् १८१७) की चैत्र शुक्ला नवमी रामनवमी का मंगल दिन था । उस दिन अभिनिष्क्रमण की कोई निश्चित योजना नहीं थी, पर ऐसा लगता है कि अप्रत्याशित रूप से भिक्षु स्वामी के लिए निर्णय का समय आ गया था । ज्योंही उन्होंने अपने गुरु महाराज से विनयपूर्वक अपनी बात रखी कि वे उसे अपने अहं पर चोट मानकर खीझ उठे और रोष भरकर उन्होंने कहा, “बार-बार एक ही रट लगाई जा रही है, तुम लाख कहो, मैं तुम्हारी एक भी बात नहीं सुनता । इस कलिकाल में शुद्ध साधुत्व की पालना असम्भव है, तुममें साहस हो तो यहां से निकल जाओ और कुछ कर दिखाओ पर ध्यान रहे, यहाँ आकर फिर मुझे मुँह मत बताना ।” भिक्षु स्वामी का धैर्य चरम सीमा पर पहुँच चुका था, उनके जैसा सिंह-पुरुष ऐसी चुनौती से कब घबराने वाला था । वे तत्काल स्थानक छोड़ कर सत्यक्रान्ति के मार्ग पर चल पड़े । उनके साथ अन्य मुनिजन टोकरजी, हरनाथजी, वीरभाणजी व भारमलजी ने भी स्थानक का परित्याग कर दिया । आचार्य रघुनाथजी ने, इस आशा से कि भिक्षु स्थान न मिलने पर वापस आ जाएगा, सेवक द्वारा सारं नगर से भिक्षु को स्थान न देने के लिए, श्री संघ की सौगन्ध दिलवाने की आज्ञा प्रसारित करा दी, फलतः भिक्षु स्वामी को बगड़ी में कोई स्थान ठहरने को नहीं मिला । यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि जिस बगड़ी में, भिक्षु स्वामी की गृहस्थावस्था का समुराल था, जहाँ उनके अन्य सम्बन्धी भी रहते होंगे क्योंकि उनकी जन्मस्थली कंटालिया गांव भी पास ही था, जहाँ उनकी संयम-साधना से प्रभावित अनेक व्यक्त भी रहे होंगे, वहाँ सब कुछ बिना योजना के, अप्रत्याशित रूप से, होने के कारण, उन्हें स्थान नहीं मिला । भिक्षु स्वामी ने बगड़ी से विहार कर दिया पर उनकी कसौटी होना अभी शेष था, गांव क बाहर जाते ही आंधी और तूफान आ गया, जिसमें साधु आंधी और तूफान में चलने से, यत्ना न रह पाने के कारण, विहार नहीं कर सकते । गांव में स्थान नहीं, बाहर जाना नहीं, ऐसी स्थिति में एकमात्र स्थान श्मशान की छत्रियों में उन्हें ठहरना पड़ा । जहाँ किसी भी व्यक्ति का अन्तिम पड़ाव होता है, वहाँ भिक्षु स्वामी व उनके सहयोगी साधुओं का पहला पड़ाव हुआ । सच है, जो मृत्यु को अनुभव कर सकता है, वही जीवन का आनन्द ले सकता है । कहते हैं उस समय वहाँ नव छत्रियाँ थीं, पर एक को छोड़कर, वे सभी भग्नावशेष हो गईं और बगड़ी के भूतपूर्व सामंत जैतसिंह की स्मृति में बनी छत्री, जहाँ क्रान्ति का शंखनाद फूकने के समय भिक्षु स्वामी के प्रथम चरण पड़े थे, अविचल भाव से अब भी खड़ी है । अब तो उस छत्री को काफी मजबूत किया जा चुका है और वह तेरापंथ की

१. स्वीकृत तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर ।

ऐतिहासिक स्थली बन चुकी है। स्वामीजी से सम्बद्ध होने से जैतसिंह जी अमर हो गए।

आचार्य रघनाथजी, भिक्षु स्वामी के वापस आने की प्रतीक्षा करते रहे पर उन्हें निराशा ही हाथ लगी। एक बार छूटा हुआ तीर वापस नहीं आता, सिंह कभी मुड़कर पीछे नहीं देखता, यही स्थिति उस समय बनी। आचार्य महाराज चिंतित हो उठे और श्रावकों को लेकर छतरियों पर पहुँचे और उन्होंने मधुर स्वरों में कहा, “भीखन ! टोला छोड़कर मत जाओ, पंचम कलिकाल में निभ नहीं सकोगे, मेरी बात मान लो।” उनका रोष उतर चुका था, पर भिक्षु स्वामी भी अब दृढ़ हो चुके थे। उन्होंने कहा, “मैं शुद्ध संयम की साधना के लिए कृत-संकल्प हूँ।” श्री रघनाथजी महाराज ने जब यह सुना तो उनकी रही-सही आशा टूट गई, और उनकी आंखें भर आईं। अपने संघ के चरित्रनिष्ठ एवं प्रभावक सदस्य अन्य चार शिष्यों के संघ छोड़ने से वे व्यथित हो उठे। जब मिठास से काम नहीं बना तो गुरु महाराज ने धमकी भरे स्वरों में कहा, “अच्छा देख लूंगा। तुम जहां जाओगे, आगे तुम और पीछे मैं रहूँगा, तुम्हारे पीछे सैकड़ों लोग लगा दूंगा, फिर तुम कैसे रहोगे?” गुरु की चेतावनी को भिक्षु स्वामी ने वरदानस्वरूप स्वीकार करते हुए कहा, “यह शुभ है कि मैं आगे रहूँगा और आप मेरे पीछे सैकड़ों लोग (अनुगामी) लगा देंगे। मेरे में परीषह सहने की क्षमता है, मेरा मार्ग स्वतः प्रशस्त हो जाएगा।” बगड़ी से विहार कर स्वामीजी बड़लू पधारे, आचार्य रघनाथजी भी वहां आए, चर्चा हुई। अंत में उन्होंने कहा, “इस कलिकाल में दो घड़ी शुद्ध साधुत्व की आराधना कर ले, तो केवलज्ञान हो सकता है।” स्वामीजी ने कहा, “मैं दो घड़ी सांस रोककर एक स्थान पर बैठ सकता हूँ, यदि इसी से केवलज्ञान हो सकता हो तो फिर क्या चाहिए? पर ऐसा होता नहीं।” इससे प्रकट है कि उस समय भी भिक्षु स्वामी श्वास रोककर दो घंटे बैठने की क्षमता रखते थे व विरल साधक थे। सम्भवतः आचार्य रघनाथजी का यह अन्तिम प्रयास था, पर सत्यक्रान्ति की जो धारा प्रवाहित हो चुकी थी, वह न रुकी, न मुड़ी।

भिक्षु स्वामी के अभिनिष्क्रमण के समय उनके सहित पांच साधु रघनाथजी महाराज के संघ से पृथक हुए, राजनगर में संवत् १८१४ में चातुर्मास करने वाले आचार्य जयमलजी के संघ के मुनि धिरपालजी, फतेहचन्दजी, बख्तमलजी, भारमलजी व उनके दो सहयोगी मुनि लिखमीचन्दजी व गुलाबजी भी विचार-साम्य के कारण उनके साथ हो गए। उसी तरह राजनगर में संवत् १८१६ में चातुर्मास करने वाले आचार्य श्यामदासजी के संघ के दो साधु रूपचन्दजी व पेमचन्दजी भी भिक्षु स्वामी के साथ हो गये। इस तरह तेरह साधुओं ने एक नई सत्य-क्रान्ति का सूत्रपात किया।



हर नई क्रान्ति का विरोध होता ही है। यही भिक्षु स्वामी के साथ हुआ। उन्हें गांव-गांव में स्थान देने का निषेध किया जाने लगा, आहार-पानी देने की मनाही की गई, किसी को उनके पास फटकने तक नहीं दिया जाता। चातुर्मास के लिए कोई स्थान दे देता तो उससे बलात् या प्रलोभन देकर स्थान छुड़वाया जाता या गांव छुड़ाने तक के प्रयास किए जाते, और उनके पास दीक्षा लेना तो दूर, कोई गृहस्थ उनके पास पहुँच तक नहीं पाता और अगर कोई जाता तो केवल उन्हें त्रास देने की दृष्टि से ही जा पाता। वे अपने सन्तों को इकट्ठा कर व्याख्यान देते-तो लोग शोर मचाना प्रारम्भ कर देते या उत्पात मचा देते। उनसे चर्चा के बहाने आकर कोई उनके सिर में ठोला मार देता, तो कोई उनके छाती पर मुक्का मारकर चला जाता, पर उन्होंने यह सब कुछ प्रसन्नता से सहन किया। उद्भवकालीन परिस्थितियों का वर्णन स्वामीजी ने स्वयं अपने संस्मरणों में इन शब्दों में किया है—

“हम लोगों ने जब आचार्य रघनाथजी को छोड़ा तब पांच वर्ष तक पूरा आहार-पानी नहीं मिला, घी आदि सरस पदार्थों के मिलने-मिलाने का तो प्रश्न ही नहीं था। कपड़े के लिए भी कदाचित् सवा रुपये की कीमत वाली मोटी खादी (बासती) मिलती तो भारमल निवेदन करता कि आप इसकी पछेवड़ी (उत्तरीय वस्त्र) बना लीजिये और मैं कहता (भीखणजी) इसके दो चोल पट्टे (अधोवस्त्र) बना दो, एक तुम्हारे लिए व एक मेरे लिए। लोग-बाग तो कोई आते नहीं, विरोध की भयंकर उग्रता में, उनसे किनारा कर लेते। हमको जितना रूखा-सूखा आहार मिलता, उसे लेकर हम सब साधु जंगल में चले जाते, वृक्षों की छाया में आहार रखकर कड़ी धूप में सब साधु आतापना लेते और शाम को वापस गांव में आ जाते। हमने यह कल्पना भी नहीं की थी कि हमारा संघ चलेगा, साधु-साध्वी दीक्षित होंगे या श्रावक-श्राविकाओं का संघ बनेगा। हमने तो एक ही संकल्प ले रखा था कि मरकर समाप्त होना स्वीकार है पर आत्मोन्मुख होकर शुद्ध साधुत्व का आराधन अवश्य करेंगे, कर्म-बन्धन से मुक्त होकर आत्मा की कार्यसिद्धि करेंगे।”

उपरोक्त शब्दों में भिक्षु स्वामी के लोमहर्षक कष्टों की गाथा स्वतः बोल रही है। इन कष्टों के कारण भिक्षु स्वामी के साथ जो तेरह साधु सत्य-क्रान्ति की राह पर चले थे, उनमें छः-सात साधु विचलित हो गए व मात्र छः साधु ही रह गये और स्वामीजी जैसे प्रखर, मेधावी एवं श्रमनिष्ठ उपदेष्टा के प्रयास के उपरान्त भी लगभग छत्तीस वर्ष तक फिर तेरह साधु न हो सके, इतना ही नहीं, स्वयं स्वामीजी की भावना भी लोकोपकार के प्रति कम हो गई और उन्होंने मात्र आत्मकल्याण का मार्ग चुनकर तपस्या, आतापना आदि का सतत क्रम चालू

कर दिया, जो लगभग दो वर्ष चला। भिक्षु स्वामी की उत्कट तपस्या, अपूर्व वैराग्य एवं प्रजा के प्रति लोगों का आकर्षण तो बन रहा था पर सामाजिक बहिष्कार के भय से वे दिन में उनके पास आने का साहस जुटा नहीं पाते पर रात्रि में वे लुक-छिपकर आते व उनसे सही तत्त्व की जानकारी करते व उनकी मान्यताओं के प्रति श्रद्धा प्रकट करते। दिन पर दिन ऐसे श्रद्धालुओं की वृद्धि होने लगी, तब मुनि श्री थिरपालजी व फतेचंदजी, जो भिक्षु स्वामी से अभिनिष्क्रमण के पूर्व दीक्षा में बड़े थे व बाद में भी स्वामीजी ने उन्हें बड़ा रखा, ने निवेदन किया, 'स्वामीनाथ ! आप न केवल वीतराग प्रभु के बताए मार्ग पर चलने में सक्षम हैं, पर उसकी अभिव्यक्ति देने में भी समर्थ हैं, अतः आप लोगों को समझाएं, उन्हें सत्पथ पर लगाएं व लोक-कल्याण की ओर अग्रसर हों, तपस्या का कार्य हम जैसों के लिए छोड़ दें।' समयोचित उद्गारों का स्वामीजी पर प्रभाव पड़ा और वे फिर 'सर्वजन हिताय-बहुजन हिताय' के लिए प्रचार में जुट गए। मुनि थिरपालजी व फतेचंदजी को सचमुच तेरापंथ धर्मसंघ की नींव का पत्थर कहा जा सकता है।

### तेरापंथ की विधिवत् स्थापना व नामकरण

जिस तरह तेरापंथ का प्रसव राजनगर के श्रावकों के विद्रोह के कारण व तेरापंथ का उदय आचार्य रघुनाथजी की अहंवृत्ति व रोष के कारण अप्रत्याशित रूप से हुआ, उसी तरह तेरापंथ के नामकरण व विधिवत् स्थापना का इतिहास भी अप्रत्याशित रूप से ही बना है।

#### नामकरण

भिक्षु स्वामी का संवत् १८१६ का चातुर्मास जोधपुर था व उनसे वहाँ कुछ श्रावक प्रभावित हुए थे। बाद में, जब उन्होंने अभिनिष्क्रमण किया तो उन श्रावकों ने भी स्थानकों में जाकर उपासना करनी छोड़ दी व स्वामीजी के प्रति श्रद्धाशील रहे। एक दिन का संयोग, वे श्रावक बाजार की एक दुकान में सामायिक व पौषध कर रहे थे कि उधर से जोधपुर राज्य के दीवान श्री फतेचंदजी सिंघवी का निकलना हुआ, श्रावकों को बाजार में उपासना करते देखा तो उन्हें आश्चर्य हुआ, व उन्होंने अपना कौतूहल शान्त करने के लिए जिज्ञासा की। उस समय तेरह श्रावक सामायिक-पौषध में संलीन थे व उनमें प्रमुख श्री गेरूलालजी व्यास थे। श्री गेरूलालजी ने भिक्षु स्वामी के आचार्य रघुनाथजी के संघ से अलग होने की बात सविस्तार बताई व उसके कारणों पर भी प्रकाश डाला। दीवान फतेचंदजी ने भिक्षु स्वामी के साहस की प्रशंसा करते पूछा, "वे कितने साधु हैं?" उत्तर मिला—“तेरह।” तेरह को मारवाड़ी भाषा में 'तेरा' भी बोला जाता है। पास

१४ हे प्रभो ! तेरापंथ

में ही एक सेवक कवि खड़ा सारी बात बड़ी रुचि से सुन रहा था। तेरह साधु व तेरह श्रावकों का योग जानकर उसने तत्काल एक दोहा पढ़कर सुनाया जो इस प्रकार है—

“साध साध रो गिलो करे, ते तो आप आपरो मंत ।  
सुणज्यो रे शहर रा लोकां, ऐ तेरापन्थी तन्त ॥”

इस दोहे की बात शहर में सर्वत्र प्रसिद्ध हो गई और लोगों ने उपहास की भावना से भिक्षु स्वामी के अनुयायियों को तेरहपंथी या तेरापंथी कहना प्रारम्भ कर दिया।

भिक्षु स्वामी उस समय जोधपुर में नहीं थे। उन्होंने जब तेरापंथी नाम सुना तो उन्हें इस नाम में अर्थगांभीर्य प्रतीत हुआ व उन्होंने अपनी अन्तर्प्रेरणा से उसी समय पाट से नीचे उतरकर बंदना आसन में बैठकर भगवान की वन्दना की और कहा, “हे प्रभो ! यह तेरापंथ है, इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। तेरापंथ ही हमारा ध्येय है और जो वीतराग-देव के मार्ग का अनुसरण करेगा, वही तेरापंथ का अनुगामी होगा।” तेरापंथ नाम में स्वतः ही अहंकार और ममकार-विसर्जन की भावना निहित है और स्वामीजी तो इसके साकार स्वरूप थे अतः उन्होंने अप्रत्याशित रूप से हुए नामकरण को स्वीकार कर लिया। उन्होंने एक अर्थ यह भी किया कि पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति—इन तेरह बोलों को स्वीकार करने वाला तेरापंथी होगा। उन्होंने तत्काल ‘तेरापंथ’ शब्द का विश्लेषण करते हुए गुणपरक व्याख्या में निम्नलिखित छंद रचा—

गुणं विन भेष कू मूल न मानत, जीव अजीव का किया निवेरा ।  
पुण्य पाप कू भिन्न-भिन्न जानत, आश्रवकर्मों कू लेत उरेरा ॥  
आवता कर्मों ने संवर रोकत, निर्जरा कर्म कू देत बिखेरा ।  
बंध तो जीव कू बंधिया राखत, सासता सुख तो मोख में डेरा ॥  
इसो घट प्रकाश किया भव जीव का, मेट्या मिथ्यात्व अंधेरा ।  
निर्मल ज्ञान उद्योत किया, अँ तो है पंथ प्रभु तेरा ही तेरा ॥  
तीन सौ त्रैसठ पाखंड जगत् में, श्री जिनधर्म सू सर्व अनेरा ।  
द्रव्यालिंगी केई साध कहावत, त्यां पिण पकड़या त्यांराइज केड़ा ॥  
ताहि कू दूर तजे ते संत, विध सू उपदेश दिया रूड़ेरा ।  
जिन आगम जोय प्रमाण किया, जब पाखंड पंथ में पड़या बिखेरा ॥  
व्रत, अव्रत, दान, दया, बतावत, सावद्य निरवद्य करत निबेरा ।  
श्री जिन आज्ञा में धर्म बतावत, अँ तो है पंथ प्रभु तेरा ही तेरा ॥

‘तेरापंथ’ की अधिकृत व्याख्या इससे सुन्दर बन नहीं सकती थी और तब से तेरापंथ का नामकरण वैधानिक रूप से हो गया ।

### स्थापना

अभिनिष्क्रमण के बाद मारवाड़ के कतिपय क्षेत्रों में विहार करते हुए स्वामीजी मेवाड़ पधारे पर वहाँ भी स्थान-स्थान पर उन्हें कड़ा विरोध सहना पड़ा । विहार करते-करते संवत् १८१६ (विक्रम संवत् १८१७) के आसाढ़ सुदि १३ को स्वामी जी चार साधुओं सहित केलवा पधारे व वहाँ के लोगों से स्थान की याचना की पर कोई गृहस्थ उन्हें अपना मकान देने को तैयार नहीं हुआ पर उन्होंने एक युक्ति हूँद ली । केलवा में कुछ ऊँचाई पर प्राचीनकाल का बना हुआ भगवान श्री चन्द्र-प्रभु का जैन मन्दिर है, उसके बारे में प्रख्यात था कि उस मन्दिर में यक्ष रहता है और वहाँ कोई ठहरने का साहस नहीं कर सकता और यदि ठहर जाए तो जीवित नहीं रह सकता । लोगों ने सोचा कि यदि सचमुच भिक्षु स्वामी, जैसा लोग कहते हैं, भगवान् के मार्ग के उत्थापक व निदक हैं, तो वहाँ ठहरने से स्वतः समाप्त हो जाएंगे और इस तरह उनकी हत्या का पाप भी नहीं लगेगा, व अनिष्ट समाप्त हो जाएगा और यदि भिक्षु स्वामी शुद्ध साधु हैं तो इनका देवता भी बाल बाँका न कर सकेगा, व स्वतः उनके बारे में उनके जीवित रहने पर निर्णय हो जाएगा । स्वामीजी की सबसे कड़ी परीक्षा किसी ने ली, तो वह तत्कालीन केलवा-वासियों ने ली । किसी ने अन्न, जल, वस्त्र, उपकरण, स्थान नहीं दिया पर वहाँ के लोगों ने तो उनके जीवन को दाँव पर लगा देना चाहा । साम्प्रदायिक उन्माद व आवेग जो न कराए, वह थोड़ा है । लोगों ने स्वामीजी को ठहरने के लिए उस मन्दिर में ‘अंधेरी ओरी’ (जहाँ प्रकाश का लवलेख ही नहीं था) का स्थान बता दिया । भिक्षु स्वामी को मंदिर के बारे में व लोगों की नियत के बारे में भनक मिल चुकी थी, पर भला वे कब धराने वाले थे ! ‘डर’ का नाम तो उन्होंने कभी न जाना, न देखा । वे उस मन्दिर में अपने सहयोगी साधुओं सहित निःसंकोच ठहर गए, रात्रि में जो उपसर्ग की आशंका थी, वही हुआ ।

स्वामीजी के साथ तेरह-चौदह वर्ष के समर्पित बाल साधु भारमलजी रात्रि को निवृत्ति हेतु बाहर गए, कि एक सर्प आकर उनके पैरों में लिपट गया । सर्प ने न कटाटा, न फुफकार किया, न कष्ट दिया और भारमलजी भी अविचल भाव से स्थिर खड़े रहे । धन्य है ऐसे बाल साधु की वीरता, जो सर्प के लिपटे रहने पर भी भयानुर नहीं हुआ । वापस आने में विलम्ब देखकर, स्वामीजी बाहर आए और वस्तुस्थिति जानकर सर्प को सम्बोधित करके बोले, ‘देवानुप्रिय ! हम साधु हैं, किसी को कष्ट नहीं देते । तुम्हें कष्ट होता हो तो हम अन्यत्र चले जाएँ, पर इस

बाल साधु को क्यों पकड़ रखा है ? चाहो तो मुझसे बात करो ।' इतना सुनते ही वह सर्प सपाटे से एक लकीर खींचता हुआ वहाँ से तत्काल चलता बना । मुनि भारमलजी अंदर आकर सो गए, पर भिक्षु स्वामी जागते रहे, निमंत्रित अतिथि की प्रतीक्षा में । कुछ देर बाद एक धवल वस्त्रधारी आकृति उनके सामने आई और उसने निवेदन किया, 'हे साधुश्रेष्ठ ! आपके यहाँ रहने से मुझे कोई कष्ट नहीं है, आप देवताओं के भी पूज्य हैं । केवल मेरी खींची हुई लकीर के घेरे में मल-मूत्र का उत्सर्ग न हो, मंदिर के आगे दाहिने चबूतरे पर आप निःसंकोच विराजें, प्रवचन करें, बाएं चबूतरे पर बैठकर मैं अदृश्य भाव से आपकी सेवा-परिचर्या करता रहूँगा, व संघ की सुरक्षा में सदा सदैव सहयोगी बना रहूँगा ।' सच है अहिंसा, तप व संयममय धर्म की साधना करने वाले आत्मबली पुरुषों की देवता भी सेवा करते हैं । अनायास ही एक चमत्कार घटित हो गया, प्रातः लोगों ने स्वामी जी व उनके सहयोगी मुनियों को निर्भीकता से अपनी उपासना करते देखा व रात की घटना की उनको जानकारी मिली तो 'चमत्कार को नमस्कार' वाली कहावत घटित हो गई । सारा केलवा गांव स्वामीजी के दर्शनार्थ उमड़ पड़ा । वहाँ के ठाकुर 'मोखमसिहजी' ने भावभरी अभ्यर्थना की, सारा समाज स्वामीजी का अनुगामी हो गया, तेरस को स्वामीजी ने उपवास किया, चतुर्दशी को स्वामीजी व सहयोगी सन्तों ने बेला किया व पूर्णिमा को तेला किया और ठाकुर मोखमसिहजी के निवेदन पर पारणा उनके यहाँ से आहार लाकर किया । एक और निर्णय की घड़ी आ गई । आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा को भिक्षु स्वामी व उनके सहयोगी संतों ने अर्हंतों व सिद्धों की साक्षी से मन, वचन, काया के योग सहित सब पापों के करने, कराने या अनु-मोदन करने का त्याग किया, व शुद्ध साधुत्व ग्रहण किया । तेरापंथ की विधिवत् स्थापना की गाथा एक अप्रत्याशित किन्तु रोमांचक घटना के साथ जुड़ गई ।

इस घटना ने बिना किसी श्रम के, एक साथ सारे केलवा को स्वामीजी के प्रति आस्था के साथ जोड़ दिया व तेरापंथ धर्मसंघ में केलवा व अंधेरी ओरी एक ऐतिहासिक स्थली बन गया । स्वामीजी ने अपने जीवनकाल में छः वर्षावास केलवा बिताए व आचार्य श्री तुलसी ने संवत् २०१७ में तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह का शुभारंभ वहीं से किया । केलवा की घटना ने लगभग सारे मेवाड़ में स्वामीजी की यशोगाथा को विस्तार दिया व आसपास के क्षेत्र उग्र विरोध के उपरान्त भी श्रद्धाशील हो गए । केलवा चातुर्मास की परिसमाप्ति के बाद स्वामी जी मारवाड़, मेवाड़ के दुर्गम क्षेत्रों में विहरण कर स्वपरकल्याण करते रहे, विरोध की आँच मंद पड़ती रही पर उनकी यशोगाथा के साथ, ईर्ष्या की अग्नि के कारण सर्वथा बुझ न सकी ।

### प्रचार-प्रसार एवं संघ-वृद्धि

साध्वियों की दीक्षा—घोर विरोध व भयानक परिषद के कारण स्वामीजी के संघ में दीक्षा लेना हर किसी के लिए दुरूह कार्य था, फिर स्वामीजी भी पूरी परीक्षा करके ही दीक्षा देते थे, अतः उस स्थिति में लगभग चार वर्ष तक कोई महिला साध्वी बनने के लिए तैयार नहीं हो पाई। संवत् १८२१ में कुशालोजी, मटूजी, अजबूजी नाम की तीन महिलाएं दीक्षा के लिए उद्यत हुईं। स्वामीजी ने उनकी परीक्षा लेते पहला प्रश्न किया, “क्या किसी समय आवश्यकता पड़ने पर संलेखना, संधारे के लिए तैयार हो सकती हो?” महिलाएं भी बड़ी निर्भीक थीं और उन्होंने बिना किसी हिचकिचाहट के कह दिया, “हां, हम इसके लिए सदा तैयार रहेंगे।” परीक्षा में खरी उतरने पर स्वामीजी ने उन्हें दीक्षा दे दी। यह प्रश्न भी जैन आचार परंपरा से संबंधित था, साध्वियां दो रह नहीं सकतीं, अतः तीनों में से एक का वियोग हो जाता तो शेष दोनों को आमरण अनशन करना पड़ता, क्योंकि उस समय अन्य साध्वियों के दीक्षित होने की कल्पना करना भी दुरूह था। सौभाग्य से फिर दीक्षाओं में वृद्धि होती गई व ऐसा अवसर आया ही नहीं पर उन वीर साध्वियों ने मरने का संकल्प लेकर दीक्षित होने से एक गौरवशाली इतिहास अवश्य बना दिया।<sup>१</sup>

### भावी व्यवस्था (मर्यादा-पत्र व युवाचार्य-मनोनयन)

पन्द्रह वर्ष सतत साधना, श्रमनिष्ठा एवं प्रचार-प्रसार के कारण स्वामीजी के संघ में वृद्धि होने लगी, तब संवत् १८३२ की मिंगसर वदि ७ को बीठोड़ा गांव में स्वामीजी ने संघ-संचालन के लिए एक मर्यादापत्र बनाया व यह व्यवस्था की, कि “तेरापंथ धर्मसंघ में एक ही आचार्य होगा और सारे साधु-साध्वीगण उनके ही शिष्य होंगे; व उनकी आज्ञा के अनुसार ही चातुर्मास व शेषकाल में प्रवास करेंगे व श्रद्धा, आचार, व्यवस्था से संबंधित उनका निर्णय सभी को मान्य होगा, पूर्वाचार्य द्वारा ही भावी आचार्य का मनोनयन होगा और सारे संघ को वह स्वीकार्य होगा, संघ के साधु-साध्वियों के पास वस्त्र-पात्र, उपकरण सारे संघ के होंगे। आचार्य किसी को दीक्षित करने के पूर्व उसकी पूरी परीक्षा करेगा व हर किसी को प्रव्रजित नहीं करेगा, कोई साधु-साध्वी संघ में दलबंदी नहीं कर सकेगा, और स्वखलना या अविनय के कारण संघ से बहिष्कृत व बहिर्भूत होगा, उसे संघ का कोई सदस्य साधु नहीं मानेगा, प्रश्रय नहीं देगा व परिचय-प्रीति नहीं रखेगा।” मर्यादा-पत्र में आगे के आचार्य का नामोल्लेख करना आवश्यक होने से उन्होंने अपने सबसे समर्पित व योग्य श्री भारमलजी स्वामी को अपना युवाचार्य घोषित

१. तथ्यात्मक विश्लेषण के आधार पर।

## १८ हे प्रभो ! तेरापंथ

किया। भयंकर कष्टों के मध्य श्री भारमलजी आचार्य भिक्षु के साथ छाया बनकर रहे व स्वामीजी ने कष्ट-सहिष्णुता के विविध प्रयोग उन पर किए। 'भिक्षु भारी-मल' गुरु-शिष्य की युगल जोड़ी की तुलना 'महावीर-गौतम' की इतिहास-प्रसिद्ध गुरु-शिष्य की जोड़ी से की जाने लगी। संघ के मर्यादापत्र के साथ ही तेरापंथ धर्म-संघ का आकार निश्चित हो गया।

स्थानकवासी बावीस सम्प्रदायों में आपस में कहीं-कहीं गहरे मतभेद हैं और स्वयं एक-दूसरे की सम्यक्त्व व साधना को संशय की दृष्टि से देखते हैं और उन सम्प्रदायों की संख्या भी बढ़ रही है व उनमें एक भीखणजी का टोला भी चल सकता था पर उनके द्वारा आचार्य भिक्षु का तीव्र विरोध व स्वामीजी की उत्कट तप-साधना, प्रखर मेधा व गहन अध्ययन के साथ-साथ तेरापंथ के पृथक नाम-करण व मर्यादापत्र की व्यवस्थाओं ने तेरापंथ को एक निश्चित व संपुष्ट पृथक आकार दे दिया और बावीस सम्प्रदायों के साथ उसका संबंधित होना असंभव ही नहीं हो गया वरन् उस सम्प्रदाय के विरुद्ध एक नई धर्म-क्रान्ति के सुत्रपात का प्रतीक बन गया व इस कारण शताब्दियों तक 'तेरापंथ' व बावीस सम्प्रदाय के बीच मधुर संबंधों के स्थान पर कटुता का वातावरण अधिक रहा।

## बिहार व धर्म-प्रचार

आचार्य रुघनाथजी महाराज के सम्प्रदाय में रहते भिक्षु स्वामी ने आठ चातु-र्मास क्रमशः मेड़ता (संवत् १८०६), सोजत (१८१०), बलूदा (१८११), जैतारण (१८१२), बागोर (१८१३), सादड़ी साहरी (१८१४), राजनगर (१८१५) व जोधपुर (१८१६) में बिताए, जिनमें राजनगर के चातुर्मास में 'तेरापंथ' की भावना का उदय हुआ व जोधपुर चातुर्मास में उसकी कुछ रेखाएं खींची गईं। आचार्य रुघनाथजी से पृथक होने के बाद आचार्य भिक्षु ने ४४ चातुर्मास किए, जिनकी तालिका स्थान एवं कालक्रम से इस प्रकार है—

१. केलवा	चातुर्मास	६	संवत्	१८१७, २१, २५, ३८, ४६, ५८
२. बड़लू	"	१	"	१८१८
३. सिरीयारी	"	७	"	१८१६, २२, २६, ३६, ४२, ५१, ६०
४. राजनगर	"	१	"	१८२०
५. पाली	"	७	"	१८२३, ३३, ४०, ४४, ५२, ५५, ५६
६. कंटालिया	"	२	"	१८२४, २८
७. खैरवा	"	५	"	१८२६, ३२, ४१, ४६ ५४
८. बगड़ी	"	३	"	१८२७, ३०, ३६
९. माधोपुर	"	२	"	१८३१, ४८

१०. पीपाड़	”	२	”	१८३४, ४५
११. आमेट	”	१	”	१८३५
१२. पादू	”	१	”	१८३७
१३. नाथद्वारा	”	३	”	१८४३, ५०, ५६
१४. पुर	”	२	”	१८४७, ५७
१५. सोजत	”	१	”	१८५३

आचार्य भिक्षु का विहार मारवाड़, मेवाड़, हाड़ोती, ढूँढाड़ व थली इन पाँच प्रदेशों में हुआ पर मुख्य विहार क्षेत्र मेवाड़, मारवाड़ ही रहे। मेवाड़ के पाँच विभिन्न क्षेत्रों में १३ चातुर्मास, मारवाड़ के नव विभिन्न क्षेत्रों में २६ चातुर्मास, हाड़ोती में सवाई माधोपुर में दो चातुर्मास हुए, ढूँढाड़ में चातुर्मास नहीं हुआ पर स्वामीजी संवत् १८४८ के शेषकाल में जयपुर पधारे व कालों की हाटों में २२ दिन विराजे व लाला हरचन्दलालजी जौहरी आदि को समझाया। थली प्रदेश में भी स्वामीजी का चातुर्मास नहीं हुआ पर संवत् १८३७ में पादू चातुर्मास संपन्न कर बोरावड लाडनू होते हुए वे बीदासर, राजलदेसर, रतनगढ़ स्पर्श करते हुए चूरू तक पधारे। क्षेत्र-स्पर्शना से अधिक तेरापंथ के बहिर्भूत व बहिष्कृत साधु चन्द्र-भानजी, तिलोकजी आदि के भ्रांत प्रचार का निरसन करने के ध्येय से ही वे चूरू तक पधारे, पर लगता है कि जयपुर या थली प्रदेश के प्रति उनका लक्ष्य नहीं बन पाया।

यह भी एक विचित्र बात है कि जिस राजनगर में स्वामीजी को बोधि प्राप्त हुई वहाँ उन्होंने प्रारम्भ में संवत् १८२० में मात्र एक चातुर्मास नहीं किया और बाद में उन्होंने या उनके उत्तरवर्ती किसी आचार्य ने वहाँ चातुर्मास नहीं किया। ठीक १६७ वर्ष बाद संवत् २०१७ में तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह का प्रसंग आने पर आचार्यश्री तुलसी ने इस क्षेत्र का पुनरुद्धार कर राजनगर को चातुर्मास का वरदान दिया। इसी तरह आचार्य भिक्षु ने कंटालिया में प्रारम्भ में संवत् १८२४ व १८२८ के चातुर्मास किये व बगड़ी में १८२७, ३० व ३६ के चातुर्मास किये पर उत्तरवर्ती वर्षों में इन क्षेत्रों को चातुर्मास से वंचित रखा, जबकि ये दोनों क्षेत्र स्वामीजी के गृहस्थ जीवन से अत्यधिक संबंध रखने वाले थे। पाली, सिरियारी और छोटा-सा गांव खैरवा स्वामीजी के प्रारम्भ से अन्त तक आकर्षण-क्षेत्र रहे।

यह एक गवेषणा का विषय है कि ऐसा क्यों हुआ। संभवतः उन क्षेत्रों के लोग इस स्थिति पर अधिक प्रकाश डाल सकें।

स्वामीजी के अनन्य श्रावक गेरूलालजी व्यास ने कच्छ में तेरापंथ की मान्यताओं से वहाँ के प्रमुख श्रावक टीकम डोसी को परिचय कराया। टीकम डोसी ने



२० हे प्रभो ! तेरापंथ

संवत् १८५३ में स्वामीजी के दर्शन कर २१ दिन सेवा की व प्रश्नोत्तर कर उनकी मान्यताओं को हृदयंगम किया व श्रद्धा स्वीकार की ।

स्वामीजी के साथ तेरापंथ की स्थापना के समय ७ साधु (थिरपालजी, फतेह चन्दजी, वीरभाणजी, टोकरजी, हरनाथजी, भारमलजी, लिखमीचन्दजी) दीक्षित हुए,<sup>१</sup> बाद में स्वामीजी ने ४१ साधुओं को और दीक्षित किया पर उनमें से २० साधु गण छोड़कर चले गये व २८ यावत् जीवन धर्मसंघ में रहे। इसी तरह स्वामीजी ने ५६ साधिव्यों को प्रव्रजित किया, जिनमें १७ ने संघ छोड़ दिया व ३६ जीवन-पर्यन्त धर्मसंघ में रहीं ।

### साहित्यदृष्टा एवं उपदेष्टा

तेरापंथ की विधिवत् स्थापना व परकल्याण भावना पर पुनर्विचार करने के बाद संवत् १८३२ से जीवन-पर्यन्त स्वामीजी ने लगभग ३८००० पद्यों की विपुल साहित्य रचना की व जीवन भर गद्य व पद्य में साहित्य-सृजन करते ही रहे । स्वामीजी की प्रारंभिक रचनाओं में आचार, अनुकम्पा; दया-दान, व्रत-अव्रत, नव तत्त्व निर्णय, शील की नवबाड़ व विभिन्न खंडकाव्य व प्रबन्धकाव्य हैं। वे सभी शुद्ध, सरल एवं लालित्यपूर्ण राजस्थानी भाषा में हैं और भाषा इतनी हृदय-ग्राही है कि पढ़ते-पढ़ते कोई भी भावितात्मा भाव-विभोर हुए बिना नहीं रह सकता। कुल काव्य रचनाएँ लगभग ४३ हैं व गद्य रचनाएँ १८ हैं जो मुख्यतः तत्त्व ज्ञान साधवाचार से सम्बन्धित हैं। अंतिम गद्य रचना संवत् १८५६ के माघ शुक्ला सप्तमी का मर्यादा-पत्र है जो तेरापंथ का सर्वमान्य व अधिकृत विधान है। यह सचमुच आश्चर्य का विषय है कि कुल १४ धाराओं के विधान से आज तक, लगभग दो शताब्दियों से, संख्या व काल की भिन्नता के उपरान्त भी, धर्मसंघ का संचालन हो रहा है और उस विधान में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। उस विधान (मर्यादा-पत्र) के निर्माण के उपलक्ष में संवत् १९२१ से प्रति वर्ष माघ शुक्ला सप्तमी को मर्यादा-महोत्सव मनाया जाता है, और जब सैकड़ों साधु-साध्वी एवं सहस्रों श्रावक-श्राविकाओं के समक्ष आचार्यप्रवर उस विधान का वाचन करते हैं तो उस मर्यादा-पुरुष आचार्य भिक्षु की दूरदर्शिता, प्रज्ञा एवं आत्मबल के प्रति सहज ही नत-मस्तक होना पड़ता है।

आचार्य भिक्षु ने अपने जीवनकाल में अनेक व्यक्तियों से चर्चा-वार्ता की, मान-अपमान की परवाह किए बिना, अनेक बार विरोध के विष को अमृत मान-कर पिया व सदा समता भाव बनाए रखा। स्वामीजी के जीवन-प्रसंगों व चर्चा-

१. स्वामीजी आदि तेरह साधु थे; चातुर्मास के बाद श्रद्धा-आचार न मिलने के कारण पांच साधु दीक्षित नहीं हुए।

वार्ताओं का विशद विवरण उनके अंतेवासी विद्वान शिष्य हेमराजजी स्वामी द्वारा श्रीमद् जयाचार्य को लिखवाए गए संस्मरणों में, जिसका संकलन 'भिक्षु-दृष्टांत' नामक ग्रंथ में हुआ है, मिलता है। यह ग्रन्थ इतना रोचक व सरस है कि उसके पढ़ने में स्वामीजी से साक्षात्कार जैसा अनुभव होता है। श्रीमद् जयाचार्य द्वारा रचित 'भिक्षु यश रसायन' में इन दृष्टांतों का पद्यबद्ध अनुवाद हुआ है व स्वामी जी के जीवन से संबंध रखने वाला यह प्रथम विशद एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है। वैसे स्वामीजी के स्वर्गवास के तुरन्त बाद उनके दो विद्वान शिष्य मुनिश्री वेणीरामजी एवं मुनिश्री हेमराजजी ने दो अलग-अलग लघुकाय 'भिक्षु चरित्र' नामक ग्रन्थों की रचना की। ये दोनों ग्रन्थ गुरुभक्ति एवं साहित्य-सौष्ठव की दृष्टि से अनुपमेय रचनाएं हैं। हाल ही में मुनिश्री बुधमलजी द्वारा लिखित 'तेरापंथ का इतिहास' व मुनिश्री नवरत्नमलजी द्वारा रचित 'शासन समुद्र' व श्रीचन्दजी रामपुरिया द्वारा लिखित 'आचार्य भिक्षु: व्यक्तित्व एवं कृतित्व' में भी स्वामीजी के जीवन पर समग्र दृष्टि से प्रकाश डाला गया है।

### इच्छामृत्यु एवं महाप्रयाण

आचार्य भिक्षु का मेवाड़ में अन्तिम चातुर्मास संवत् १८५८ में केलवा में हुआ और वे मारवाड़ पधारे। मारवाड़ में अनेक गांवों में विचरण कर चार मुनियों व सात साध्वियों को दीक्षित किया व सैकड़ों श्रावक-श्राविका बने। संवत् १८५९ का चातुर्मास पाली में हुआ व वहां से विहार कर चाणोद से पीपाड़ तक, अनेक गांवों का स्पर्श किया व वहां विराजे। पीपाड़ से विहार कर स्वामीजी सोजत पधारे व बाजार में रायचंद मुंहता की छत्रियों में विराजे। वहां कई साधु-साध्वियों ने उनके दर्शन कर आगामी चातुर्मास के लिए निर्देश प्राप्त किए। वहां पर सिरीयारी के प्रख्यात श्रावक श्री हुकमचंदजी आछा ने आकर स्वामीजी को सिरीयारी में उनकी पक्की हाट में चातुर्मास करने की भावभीनी प्रार्थना की। स्वामीजी बगड़ी कंटालिया होते हुए सिरीयारी चातुर्मास हेतु पधारे व पक्की हाट में ठहरे। उनके साथ छः मुनि सर्वश्री (१) युवाचार्य भारमलजी, (२) खेतसीजी, (३) उदेरामजी, (४) रायचंदजी, (५) जीवोजी, (६) भगजी थे। भारमलजी स्वामी व्याख्यान वाणी के लिए प्रख्यात थे। मुनि खेतसीजी की सेवा-भावना व विनय अद्वितीय थे व उन्हें स्वामीजी 'सतयुगी' कहकर सम्बोधित करते थे। मुनि उदयराजजी उदार तपस्वी, मुनि रायचन्दजी बालब्रह्मचारी, मुनि जीवोजी वैराग्यशील एवं जनप्रिय तथा मुनि भगजी सेवाभावी व भक्त मुनि थे। सिरीयारी उस समय बहुत बड़ा कस्बा था, जहाँ लगभग ६०० ओसवाल जाति के घर थे व स्वामीजी की साधना से प्रभावित होकर लगभग ७०० घर तेरापंथी बन गए थे। उस समय संभवतः सिरीयारी तेरापंथ का सबसे बड़ा व प्रमुख क्षेत्र

था और यहीं स्वामीजी का समाधि-स्थल भी बना। आज सिरीयारी बहुत छोटा-सा गांव है। वहां मुश्किल से ओसवालों के ५० घर खुले रहते हैं पर स्वामीजी के अनशन व समाधि-स्थल होने से तेरापंथ का एक ऐतिहासिक क्षेत्र बन गया है। दो वर्ष पूर्व राणावास चातुर्मास में भिक्षु चरम महोत्सव जब युग-प्रधान आचार्यश्री तुलसी ने सिरीयारी में मनाया तब उसमें नवनिर्वाचित राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंहजी सम्मिलित हुए व पचास हजार व्यक्ति एकत्र हो गए, जो दृश्य सचमुच मनोहारी व अविस्मरणीय बन गया।

संवत् १८६० का चातुर्मास प्रारम्भ होने के समय स्वामीजी बिल्कुल स्वस्थ व निरोग थे। उनकी इन्द्रियां बलवान व पुष्ट थीं। उपयोग व विवेक पूरा था। ७७ वर्ष की अवस्था में भी अपूर्व ओज था। वे स्वयं भिक्षा हेतु-पधारते, धर्म-चर्चा करते, सारे दिन श्रम करते व लगता था कि वे महान अतिशयधारी आचार्य हैं। पर जो जन्मता है, वह निश्चित रूप से मरता है। ऐसा लगता है कि स्वामीजी के आयुष्य की स्थिति भी पूर्ण हो चुकी थी। श्रावण मास के शुक्लपक्ष के अन्तिम दिनों में उन्हें साधारण दस्तों की शिकायत रहने लगी, देह में वेदना होने लगी, फिर भी वे भिक्षार्थ स्वयं जाते, शौचार्थ गांव से दूर जाते, शिष्यों को पढ़ाते, लेखन-कार्य करते व सारे आवश्यक कार्य स्वयं करते। भादवा के कृष्ण पक्ष में अस्वस्थता बनी रही, पर पर्युषण एवं संवत्सरी तक आचार्य भिक्षु प्रातःकाल-मध्याह्न व सायंकाल प्रवचन दिलाते रहे, व धार्मिक उत्साह बढ़ाते रहे। भादवा शुक्ला चतुर्थी को स्वामीजी को अपने शरीर में शिथिलता मालूम हुई व जल्दी आयुष्य की पूर्णता का आभास हुआ तो उन्होंने अपने परम विनीत शिष्य मुनि खेतसीजी को बुलाकर उनकी विनय-भक्ति की प्रशंसा करते अपने साधुत्व में उनके सहयोग के लिए कृतज्ञ भाव प्रकट किया। दूसरे दिन उन्होंने सब साधुओं को बुलाकर मुनि भारमलजी की आज्ञापालन करने, शुद्ध साधवाचार में रत रहने, अनाचारियों से दूर रहने, परस्पर प्रेम और प्रीतिभाव से रहने आदि के बारे में हित शिक्षा दी। अकस्मात् साधुओं को ऐसी अन्तिम शिक्षा की बातें सुनकर आश्चर्य हुआ, पर उन्होंने स्वामीजी की शिक्षाएं शिरोधार्य कीं। अब तो प्रतिदिन शिक्षाओं का क्रम-सा बन गया। संवत्सरी के बाद आचार्य भिक्षु ने सब साधुओं को बुलाकर कहा, 'मेरा शरीर शिथिल पड़ रहा है, लगता है परभव जाने का समय आ गया, पर मुझे इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं है। मेरे हृदय में अतुल आनंद है, पूर्ण चित्त समाधि है। मैंने अनेक भव्य जीवों को सभ्यवत्व प्रदान की, व्रती बनाया, दीक्षित किया, आगम वाणी का प्रचार किया, तुम सब लोग भी निर्मल चित्त होकर भगवद्वाणी का आराधन करना व शुद्ध संयम का पालन करना। पंच महाव्रत, तीन गुप्ति, पंच समाप्त का अखंड अनुपालन करना। ममता, मूर्च्छा, संग परिचय, प्रमाद, सुख-सुविधा, पौद्गलिक आसक्ति से दूर रहना। ऐसा करोगे तो तुम सचमुच सिद्धि

प्राप्त कर सकोगे।”

स्वामीजी का यह अन्तिम संदेश बड़ा ही मार्मिक व उपयोगी था, उन्होंने बाल-साधु रायचन्दजी को उनके प्रति मोह न रखने व आत्मकल्याण में सतत प्रवृत्त रहने की प्रेरणा दी। युवाचार्य श्री भारीमलजी स्वामीजी के अनन्य भक्त थे, आचार्य भिक्षु के पंडितमरण की बात सुनकर वे व्यथित हो गए व कहा, “भगवन् ! आपकी उपस्थिति में मन में साहस बना रहता था, आपके दर्शनों का वियोग व साक्षात्कार का विरह मुझे दुःसह होगा।” भिक्षु स्वामी ने उन्हें आश्वस्त करते कहा, “तुम्हारी ऋजुता व निर्मल आत्मसाधना से निश्चित है कि तुम देवगति में जाकर महाविदेह में अर्हतों के दर्शन कर शीघ्र मुक्ति प्राप्त करोगे।” अन्य विनीत शिष्य श्री खेतसीजी भी विचलित हो गए, पर उन्होंने साहस बटोरकर कहा, “आप तो शीघ्र स्वर्ग-गमन करेंगे, दैविक सुखों में जा रहे हैं।” स्वामीजी ने प्रत्युत्तर में उन्हें टोकते हुए कहा, “मेरी स्वर्ग में जाने की तनिक भी चाह नहीं है, पौद्गलिक सुख क्षणभंगुर एवं अनित्य हैं। मैं कर्म-बंधन से मुक्ति प्राप्त करूँ, यही मेरी चाह है। तुम भी इसी चाह से आत्मसाधना में लीन रहना।” स्वामीजी की चित्तवृत्ति अत्यन्त वैराग्यपूर्ण बन रही थी।

स्वामीजी (आचार्य भिक्षु) ने अपने प्रमुख शिष्य युवाचार्य श्री भारीमलजी एवं श्री खेतसीजी की उपस्थिति में अपने महाव्रतों में हुई सब प्रकार की स्वलना की आलोचना की, गण के साधु-संत, अन्य सम्प्रदाय के साधु-संत, श्रावक, श्राविका व पूरे जन समुदाय से जान-अनजान में हुए किसी भी प्रकार के गलत व्यवहार के लिए क्षमायाचना की। उन्होंने भाव-विभोर होकर, क्षमा प्रार्थना कर, अपने को निर्मल व निःशल्य बना दिया।

संवत्सरी के पारणे में अल्पाहार लिया, पर व्रमन हो गया और तब से स्वामी जी ने तपस्या का क्रम बढ़ा दिया। नवमी के दिन आहार की रूचि न होने पर भी खेतसीजी स्वामी के आग्रह पर उनके हाथ से अल्पाहार किया व दशमी के दिन भारीमलजी स्वामी के हाथ से मात्र ४० चावल व १० मोंठ स्वीकार किये। शेष समय के लिए आहार छोड़ दिया। एकादशी को स्वामीजी ने अन्न-त्याग रखा था, द्वादशी के दिन आचार्य भिक्षु ने तीन आहार का त्याग कर बेला (दो दिन का उपवास) किया व अन्तिम अनशन करने का संकल्प कर लिया। धूप निकलने पर वे कच्ची हाट के सामने, पक्की हाट में आकर विराजे व विश्राम करने लगे कि इतने में बालमुनि रायचन्दजी ने दर्शन किए व स्वामीजी के शरीर की स्थिति को देखकर कहा, “आपका पराक्रम क्षीण पड़ रहा है, शक्ति मन्द हो रही है।” मुनिश्री के इतने कहने मात्र से मानो सोया सिंह जाग उठा हो व एक बार फिर सिंहनाद गूँज उठा। तुरन्त उन्होंने अपने सभी शिष्यों को बुलाकर ऊँचे स्वर से अर्हत व सिद्ध भगवान् की साक्षी से यावत् जीवन आहार का त्याग कर लिया।

संथारे का समाचार हवा की तरह समूचे क्षेत्र में फैल गया। झुण्ड के झुण्ड लोग आकर उनकी वंदना, अभ्यर्थना, स्तुति करने लगे। उनके संथारा सम्पन्न होने तक अनेक लोगों ने त्याग-प्रत्याख्यान किए। संथारे में भी आचार्य भिक्षु ने भारमलजी स्वामी को जनता को व्याख्यान देने व उन्हें धर्मोपदेश सुनाने का आदेश दिया। उस रात्रि में स्वामीजी ने गहरी नींद ली व उनके चेहरे पर एक अपूर्व तेज व शांति खिल रही थी। तेरस के सूर्योदय के साथ जनता की भीड़ दर्शनार्थ उमड़ पड़ी। स्वामीजी ध्यान-मुद्रा में रहे, लगभग डेढ़ प्रहर दिन चढ़े, आंख खोलकर उन्होंने कहा—“१. शहर में त्याग प्रत्याख्यान कराओ, २. साधु आ रहे हैं, सामने जाओ, ३. साधवियां आ रही हैं,” इतना कहकर फिर ध्यान में लीन हो गए। गुलोजी श्रावक बोले, “स्वामीजी का मन साधिवियों में रह गया है।” भारीमलजी स्वामी उन्हें अर्हंत, सिद्ध साधु, धर्म का शरण उद्घोषित करते रहे पर किसी को यह ध्यान नहीं रहा कि स्वामीजी को अवधिज्ञान हो सकता है। एक मुहूर्त बाद पाली चातुर्मास कर रहे मुनिश्री वेणीरामजी व कुशलजी दो साधु वहां पहुंचे, स्वामीजी ने उनके मस्तक पर हाथ रखा, वे उस समय तक पूर्ण सजग थे। दो मुहूर्त बाद तीन साधवियां—१. बगतूजी, २. झुमांजी, ३. डाहीजी ने आकर स्वामीजी के दर्शन किए। स्वामीजी की कही दोनों बातें मिल गईं, तब लोगों की निश्चित धारणा बनी कि स्वामीजी को संभवतः अवधिज्ञान हुआ है। स्वामीजी को विश्राम करते हुए कुछ समय हुआ तो साधुओं ने बिठा दिया। वे तत्काल पद्मासन की मुद्रा में बैठ गए। ज्योंही दर्जी ने उनकी शव-यात्रा निमित्त तैयार की गई तेरह खंडी बैकुंठी की सिलाई सम्पन्न कर सूचना दी व पगड़ी में लगाई, कि स्वामीजी ने उसी मुद्रा में प्राण छोड़ दिये।

पद्मासन मुद्रा में देह त्याग करने वाला कोई महान पवित्रात्मा ही हो सकता है और फिर अतीन्द्रिय ज्ञान के साथ इच्छामृत्यु प्राप्त करने की जैन शासन के अर्वाचीन इतिहास में यह विरल घटना है। इस प्रकार संवत् १८६० के भादवा-सुदि १३ मंगलवार को डेढ़ प्रहर दिन अवशेष रहते सात प्रहर के तिबिहार अनशन से सिरियारी में स्वामीजी ने चित्त समाधिपूर्वक महाप्रयाण किया। ऐसा माना जाता है कि स्वामीजी यहाँ से देह त्यागकर पंचम स्वर्ग में इन्द्र रूप में (ब्रह्मन्द्र) उत्पन्न हुए। चाहे जो हो, इस भूलोक का एक जागृत्यमान नक्षत्र अपनी संपूर्ण आभा को समेटकर चारों दिशाओं में ज्योति व सौरभ फैलाकर अस्त हो गया। स्वामीजी के अन्तिम संस्कार का स्मारक सिरियारी में मौजूद है।

## १. प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण पर किए निष्कर्षों के आधार पर

## स्वामीजी के प्रमुख शिष्य

### १. मुनिश्री थिरपालजी व फतेहचंदजी

ये दोनों पिता-पुत्र थे व मारवाड़ के लांबिया गांव के थे। दोनों ने पहले स्थानकवासी सम्प्रदाय में आचार्य जयमलजी के पास दीक्षा ली। संवत् १८१४ में राजनगर चातुर्मास में इन्हें सही साधुत्व का परिचय मिला, पर वे अलग परम्परा का सूत्रपात न कर सके। स्वामीजी के अभिनिष्क्रमण के समय वे उनके साथ हो गए, पहले दीक्षा में बड़े होने के कारण स्वामीजी ने तेरापंथ में भी इन्हें अपने से बड़ा रखा, इस दृष्टि से तेरापंथ के प्रथम मुनि थिरपाल व दूसरे फतेहचंद हैं व इन दोनों शुभ नामों से तेरापंथ थिरपाल से प्रारम्भ हुआ व उसने फतह प्राप्त की। दोनों उग्र तपस्वी थे, पर प्रकृति के सरल व निस्पृह थे। एक बार आप दोनों कोटा विराज रहे थे, वहां के महाराजा ने आपकी तपस्या की महिमा सुनकर दर्शन करने की उत्सुकता प्रकट की तो आपने यह कहकर विहार कर दिया कि 'दर्शन तो गुरु महाराज के करने चाहिए, हम तो साधारण साधु हैं।' लोगों के उग्र विरोध व अशिष्ट व्यवहार से हताश होकर जब स्वामीजी ने लोक-कल्याण की भावना का परित्याग कर आत्मकल्याण हेतु घोर तपस्या का मार्ग चुना, तब आपने ही उन्हें प्रेरणा देकर पुनः स्वामीजी को लोक-कल्याण की ओर प्रवृत्त किया। संवत् १८३१ में मुनि फतेहचंदजी को ३७ दिन की तपस्या के पारणा में 'ठण्डी बाजरे की घाट' मिली, जिसके खाने से विकृति होने से उनका बडलू में देहान्त हो गया। इसके बाद थिरपालजी ने और भी कठोर तप प्रारम्भ कर दिया व उनका स्वर्गवास संवत् १८३३ के कार्तिक वदि ११ को खैरवा में हुआ।

### २. मुनिश्री टोकरजी एवं हरनाथजी

आचार्य रुघनाथजी महाराज के पास ये दोनों मुनि स्थानकवासी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए व संवत् १८१५ के राजनगर चातुर्मास में स्वामीजी के साथ थे। अभिनिष्क्रमण के बाद भी वे स्वामीजी के साथ ही रहे, व केलवा में नई दीक्षा ली। आचार्य भिक्षु की विनय भक्ति व सेवा में दोनों सदा दत्तचित्त रहे व उनके कारण स्वामीजी को चित्त समाधि रही। मुनि टोकरजी का स्वर्गवास संवत् १८३८ चैत सुदि १५ व आसाढ़ सुदि १५ के बीच हुआ व हरनाथजी का संवत् १८४६-४७ के आस-पास हुआ, निश्चित तिथि उपलब्ध नहीं है।<sup>१</sup>

१. आचार्य भिक्षु: धर्म परिवार—लेखक श्रीचंदजी रामपुरिया, पृ० १४३ के आधार।

२६ हे प्रभो ! तेरापंथ

### ३. मुनिश्री भारीमालजी

जीवन भर स्वामीजी के प्रति समर्पित रहे व स्वामीजी ने उन्हें शासन की बागडोर सौंपी। उनका वर्णन आगामी पृष्ठों में किया जायेगा।

### ४. मुनिश्री खेतसीजी

खेतसीजी का जन्म नाथद्वारा के भोपाशाह व उनकी धर्मपत्नी हरूजी के घर संवत् १८०५ में हुआ। वे तृतीयाचार्य श्रीमद् ऋषिराय के मामा थे। उन्होंने दो शादियाँ की पर दोनों पत्नियों का क्रमशः देहान्त हो गया, तब उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। गृहस्थावस्था से भी वे तपस्या व पौषध में रुचि रखते व एक बार नव की तपस्या व ७२ प्रहर का पौषध किया। वे पापभीरू व कोमल प्रकृति के थे। व्यापार में भी वे उत्तरासन लगाकर बातें करते तथा वस्त्रों को यत्नापूर्वक रखते व ग्राहकों से मधुर व्यवहार करते व कपड़े पर पशु-पक्षी की छाप होती तो उसे बीच में न फाड़ते। उनकी दो बहनें कुशलोंजी व रूपोंजी रावलियों में ब्याही गई थीं। संवत् १८३८ में उन्होंने स्वामीजी से नाथद्वारा में दीक्षा ली, दीक्षित होने के दूसरे दिन उन्होंने स्वामीजी के साथ कोठारिया विहार किया और पीछे उनके पिता की मृत्यु हो गई। स्वामीजी ने नवदीक्षित समझकर कहा, “खेतसी, विचार मत करना” तो आपने कहा, “मैं संसार में था तब वे मेरे पिता थे, अब आप हैं। मेरे पिता का वियोग हुआ ही नहीं, फिर चिंता किस बात की?” मुनि खेतसीजी स्वामीजी के अत्यन्त विनीत, सेवभावी शिष्य थे, अतः स्वामीजी ने उन्हें ‘सतयुगी’ नाम से सम्बोधित करना प्रारम्भ कर दिया। वे इतने विनम्र थे कि स्वामीजी इस बात का ध्यान रखते थे कि उन्हें बुलाते समय उनके हाथ में पात्र आदि न हो, क्योंकि वे तत्काल आ जायेंगे, व पात्र का ध्यान नहीं रखेंगे, जिससे सम्भव है, पात्र हाथ से छूटकर गिर जाए व फूट जाए। विनय और विवेक के साथ उन्होंने सैद्धान्तिक व तात्त्विक ज्ञान का भी गहरा अध्ययन किया। उनकी प्रेरणा से उनकी दोनों बहनें कुशलोंजी व रूपोंजी व भानजे रायचन्दजी ने कालान्तर में दीक्षा लेली। एक बार स्वामीजी की शारीरिक अस्वस्थता में खेतसीजी को बार-बार रात को उठना पड़ा तो उन्होंने स्वामीजी को कहा, “आपको रात्रि में ज्यादा कष्ट रहा।” स्वामीजी ने सोचा यह अपने कष्ट की बात कर रहा है, अतः उन्होंने कहा, “आज रात्रि मैं तुम्हें बिल्कुल नहीं जगाऊँगा।” प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा, “मैं आज रात्रि में बिल्कुल नहीं सोऊँगा।” उन्होंने संवत् १८४४ में मुनि वेणीरामजी को प्रतिबोध देने हेतु बगड़ी में चातुर्मास किया, व शेष सारे चातुर्मास स्वामीजी के साथ बिताए। स्वामीजी ने अपने अंतिम समय में कहा, “सतयुगी के सहयोग से सुखपूर्वक संयम पालन किया एवं परम

समाधि अनुभव की।" स्वामीजी के बाद संवत् १८६० से १८७८ तक वे द्वितीय आचार्यश्री भारीमालजी के साथ रहे व उनकी खूब सेवा की। उनकी सेवा-भावना से प्रसन्न होकर संवत् १८७८ में भारीमालजी ने युवाचार्य के मनोनयन में पहले उनका व बाद में रायचन्दजी का, दो नाम लिखे, जिस पर मुनि जीतमलजी ने निवेदन किया कि "दो नामों की परम्परा ठीक नहीं है।" जिस पर हेमराजजी स्वामी व आपने भारीमालजी स्वामी को श्री रायचन्दजी को उत्तराधिकारी बनाने का निवेदन किया,<sup>१</sup> तब आपका नाम काट दिया गया पर आप इतने निरभिमानी एवं निस्पृह थे कि उसका आप पर तनिक प्रभाव नहीं पड़ा। साधु जीवन में उन्होंने उपवास से लगाकर १८ दिन तक की तपस्या की व बहुत वर्षों तक खड़े रहकर एक प्रहर तक स्वाध्याय करते रहे। आपका स्वर्गवास संवत् १८८० आषाढ वदि १४ को संलेखना संथारा सहित पीपाड़ में हुआ।

#### ५. मुनिश्री वेणीरामजी

आपका जन्म अनुमानतः संवत् १८२६ में बगड़ी में हुआ, व आपकी दीक्षा संवत् १८४४ में पाली में स्वामीजी के हाथों हुई। मुनिश्रीने बाल्यावस्था में अच्छा ही विद्याभ्यास कर ज्ञानार्जन किया व व्याख्यान कला में प्रवीण हुए। वे थोड़े समय में ही पंडित, चर्चावादी, गुणग्राही, औत्पातिकी बुद्धि वाले, शास्त्रों के विशेषज्ञ, नीति निपुण व प्रभावशाली मुनि बन गए। जैन सिद्धान्तों के अतिरिक्त स्वामीजी द्वारा रचित लगभग ३८ हजार पद उन्हें कंठस्थ थे। हेमराजजी को प्रेरणा देने में उनका विशेष श्रम रहा। संवत् १८६० में पाली से चातुर्मास काल में विहार कर वे स्वामीजी के अन्तिम अनशन के समय सिरीयारी पहुंचे, जो लगभग ३३ मील दूर है, व चरम सेवा का लाभ लिया। मुनिश्री ने अपने हाथ से ७ संतों को दीक्षित किया। वे अच्छे धर्म-प्रचारक साधु थे व संवत् १८७० में मालवा प्रदेश पधारे, जहां उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा। रतलाम में तीन दिन में नौ स्थान बदलने पड़े, आहार-पानी का परिषह रहा, पर आपने उसकी परवाह नहीं की। रतलाम, खाचरोद, बड़नगर होते हुए संवत् १८७० का चातुर्मास आपने उज्जैन में किया। वहां से झालरापाटन होते हुए आपने सवाई माधोपुर में आचार्य भारीमालजी के दर्शन किए, व उनके साथ जयपुर गए। आपका अगला चातुर्मास जयपुर घोषित हुआ, पर चातुर्मास के पूर्व जब आप चासटू पधारे तो वहां आपको ज्वर हो गया। एक यति ने द्वेषवश आपको औषधि के स्थान पर विष दे दिया, जिससे संवत् १८७० के जेठ शुक्ला १० को आपका स्वर्गवास हो गया। वे प्रतिभा-संपन्न कवि

१. आचार्य भिक्षु : धर्म परिवार—लेखक श्रीचंदजी रामपुरिया, पृ० २२३ व शासन समुद्र, भाग १ (ख)—लेखक मुनिश्री नवरत्नमलजी, पृ० २७६।



थे और उनकी विशिष्ट कृति 'भिक्षु चरित' में स्वामीजी के जीवन पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है।

### ७. मुनिश्री हेमराजजी

संवत् १८१७ में स्वामीजी के साथ तेरह संत अभिनिष्क्रमण में जुड़े थे, पर थोड़े ही समय में कष्टों से घबराकर ७ ने साथ छोड़ दिया, उसके छत्तीस वर्ष बाद संवत् १८५३ में हेमराजजी तेरहवें साधु हुए और फिर तेरापंथ धर्मसंघ में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। मुनि हेमराजजी का जन्म संवत् १८२६ माघ शुक्ला १३ को सिरियारी में अमरोजी बागरेचा (आछा) के घर सोमाजी की कुक्षि से हुआ। वे बाल्यकाल से ही बड़े प्रतिभावान और होनहार थे व उनकी धार्मिक रुचि सराहनीय थी व आचार्य भिक्षु व साधु-साधिवियों की सेवा करके उन्होंने अच्छा तत्त्वज्ञान सीखा व श्रावक के बारह व्रत धारण किए। उनकी बुद्धि तीव्र व कंठ मधुर था। वे व्यापार निमित्त पाली, बिलाड़ा आदि स्थानों में जाते, तब लोगों को धर्मोपदेश देते, तत्त्व चर्चा कर दया-दान, धर्म-पुण्य का हार्द समझाते। वे चर्चा में कभी उत्तेजित नहीं होते। स्वामीजी के वे अनन्य भक्त थे, व स्वामीजी उनकी प्रतिभा से प्रभावित थे व उन्हें समय-समय पर दीक्षा लेने की प्रेरणा देते रहे। एक बार मार्ग में उन्होंने फिर आपको प्रेरणा दी, तो आपने स्वामीजी से नव वर्ष बाद ब्रह्मचर्य धारण कर लिया। स्वामीजी ने उन्हें संकल्प करा कर उद्बोधन दिया, "नव वर्ष का समय तुमने विवाह कर गृहस्थी बसाने के लिए रखा है पर एक वर्ष तो विवाह योग्य कन्या देखने, मुहूर्त जुटाने में लग जायेगा। नव वर्ष में एक वर्ष तक स्त्री पीहर रहेगी, सात वर्ष में दिन को कुशील की वर्जना से, स्त्री के साथ सांसारिक सुख मात्र साढ़े तीन वर्ष का रहा, उसमें तुम जैसे श्रावक के पांच तिथियों में अब्रह्मचर्य सेवन का त्याग होने से, समय मात्र दो वर्ष रहा, फिर दो वर्ष में भी रात्रि के चार प्रहर में, अधिकतम एक प्रहर का समय ही क्रीड़ा के लिए लग सकता है, ऐसी स्थिति में मात्र छः माह के सांसारिक सुख के लिए, नव वर्ष का साधुत्व खोना, कहां की बुद्धिमानी है? फिर विवाह के बाद बच्चे हों व औरत मर जाय, तो सारी आफत गले आ जाएगी, व साधु बनना असंभव हो जाएगा, अतः यही श्रेयस्कर है कि तुम शीघ्र साधु बन जाओ।" सिद्धहस्त गुरु के वचनों की चोट का नैसर्गिक शिष्य पर तुरन्त प्रभाव पड़ा व मार्ग में ही खड़े-खड़े उन्होंने दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की। यह बात तो हममें से बहुतों ने सुनी व पढ़ी होगी पर कभी दीक्षा की भावना ही नहीं बनती। हेमराजजी जैसे पुण्यशाली एवं निर्मल चित्त पर ही इसका प्रभाव पड़ सकता था। संवत् १८५३ माघ शुक्ला १३ को सिरियारी में विशाल वटवृक्ष के नीचे हजारों नर-नारियों की उपस्थिति में आपको स्वामीजी ने दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के पूर्व ही स्वामीजी ने अपने युवाचार्य

भारीमालजी को कह दिया—

“अब तुम निश्चिन्त हो गए हो क्योंकि पहले तो चर्चा-वार्ता के लिए मैं था, अब ‘हेम’ हो जायेगा।” उनकी यह भविष्यवाणी सत्य निकली और ऐसा लगता है कि हेमराजजी ने दीक्षित होने के बाद स्वामीजी की समूची ज्ञान-ऊर्जा अपने में समाहित कर ली। दीक्षा के बाद प्रथम चार चातुर्मास उन्होंने स्वामीजी के साथ व पांचवां मुनिश्री वेणीरामजी के साथ किए व आगमों का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया व तत्त्वचर्चा, के विविध व सूक्ष्म रहस्यों की धारणा की। उनकी व्याख्यान कला अद्वितीय थी। स्वामीजी ने उनको परम-उपकारी, विशिष्ट प्रतिभा के धनी एवं कंठ कला आदि गुणों को देख कर संवत् १८५८ में उन्हें अग्रगण्य बना दिया। मुनि श्री शासन में बड़े प्रभावशाली संत हुए, व उन्होंने संघ में कई यशस्वी एवं विज्ञ संतों को तैयार किया। जब संवत् १८७५ में उदयपुर महाराणा ने लोगों के बहकावे में आकर आचार्यश्री भारीमालजी को शहर से निकलवा दिया व बाद में भूल का अहसास होने पर वापस पधारने के लिए प्रार्थना कराई तो आचार्यश्री भारीमालजी तो नहीं गए पर उन्होंने हेमराजजी स्वामी को १३ संतों सहित संवत् १८७७ का शेषकाल व चातुर्मास प्रवास करने उदयपुर भेजा और वह चातुर्मास बहुत प्रभावक रहा। मुनि जीतमलजी उस समय आपके साथ थे। वैसे संवत् १८६९ से सं० १८८१ तक दीक्षा के बाद से ही मुनिश्री जीतमलजी आपके पास ही रहे व इन बारह वर्षों में आपने स्वामीजी से प्राप्त अपनी समस्त ज्ञान-ऊर्जा मुनिश्री जीतमलजी में उड़ेल दी; वस्तुतः प्रज्ञापुरुष स्वामीजी व जयाचार्य के बीच प्रखर ऊर्जा के हस्तांतरण में आप सेतु बने। श्रीमद् जयाचार्य ने अपने व्यक्तित्व व कृतित्व का सारा श्रेय हेमराजजी स्वामी को दिया है व यहां तक कहा कि, “मैं विदु के समान था, मुझे उन्होंने सिधु बनाया।” श्रीमद् जयाचार्य का शिल्पकार होने का श्रेय ही आपको है। इतना ही नहीं, शासन के अन्य अग्रगण्य व विशिष्ट साधु मुनिश्री स्वरूपचन्दजी, श्रीभीमजी, श्रीकर्मचन्दजी, श्रीसतीदासजी, श्रीहरखचन्दजी आदि ने भी वर्षों तक आपके सान्निध्य में रहकर शिक्षा प्राप्त की व शासन को बेजोड़ सेवाएं दीं। मुनिश्री ने अपने हाथों से १७ दीक्षाएं, स्वयं प्रतिबोध देकर, प्रदान कीं। उस समय किसी मुनि द्वारा दीक्षाएं देने का यह कीर्तिमान है। उनके साथ रहकर अनेकानेक मुनियों ने छःभासी, चारभासी व अन्य बड़ी-बड़ी तपस्याएं कीं। मुनिश्री जीतमलजी ने अग्रगण्य बनने के बाद भी प्रायः प्रत्येक चातुर्मास की समाप्ति पर आपके यथाशीघ्र श्री दर्शन कर आपसे शिक्षा प्राप्त करने का एक निश्चित क्रम-सा बना लिया था। संवत् १९०३ में तो उन्होंने युवाचार्य अवस्था में भी, मुनिश्री हेमराजजी के साथ नाथद्वारा में चातुर्मास किया व उस चातुर्मास में उनसे स्वामीजी के विविध संस्मरण सुनकर लिपिबद्ध किए व ‘भिक्षु दृष्टान्त’ नामक अद्भुत ग्रन्थ की

३० हे प्रभो ! तेरापंथ

रचना की ।

स्वामीजी का हेमराजजी के प्रति अत्यंत स्नेह था । द्वितीय आचार्य भारीमालजी उनसे परामर्श लेते रहते व संवत् १८७८ में उन्होंने रायचन्दजी को युवराज पद भी आपकी सहमति से ही दिया । श्रीमद् रायचन्दजी ने आपको सदा अतीव सम्मान दिया व श्रीमद् जयाचार्य की हर श्वास ही आपके प्रति कृतज्ञ भाव से प्रेरित थी । इस तरह चार आचार्यों से बहुमान प्राप्त करने वाले आप तेरापंथ के विरल साधुओं में हैं । संभवतः आचार्यों के सदृश ही उन्होंने धर्मसंघ की कीर्ति बढ़ाई है, आपके जीवन के साथ तेरापंथ धर्मसंघ के कई ऐतिहासिक प्रसंग जुड़े हुए हैं, जिनका विशद विवरण 'शासन समुद्र, भाग २' के पृष्ठ १४६ से २३६ तक में दिया गया है । आप अच्छे साहित्यकार थे व आपकी कृतियों में 'हेम दृष्टांत', 'भिखु चरित', 'भारीमाल चरित', 'खेतसी चरित', 'वेणीरामजी रो चौढालियो,' 'वीरचरित्र,' 'नमोत्थुणे की जोड़,' 'बड़ी चौबीसी' आदि कई महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं ।

संवत् १९०४ में आमेट चातुर्मास कर आप मारवाड़ पधारे व जेठ वदि ३ को सिरियारी में प्रवेश किया । लोगों से आपके आगमन से हर्ष छा गया, द्वादशी तक आप स्वस्थ रहे, चतुर्दशी को श्रीमद् जयाचार्य ने जयपुर चातुर्मास सम्पन्न कर आपके दर्शन किए । साध्वी सरदारजी ने भी दर्शन किए । फिर आपके स्वास्थ्य में गड़बड़ हो गई । मुनिश्री जीतमलजी ने आपको महाव्रतों की आलोचना करवाई व आपने आराधना की एवं चौबीसी की गीतिकाएं मनोयोगपूर्वक सुनीं । जेठ सुदि २ को प्रतिलेखन के बाद, अस्वस्थता बढ़ती देख, श्रीमद् जयाचार्य ने सागारी अनशन कराया व दो मुहूर्त दिन चढ़ने पर आप स्वर्ग प्रयाण कर गए । आचार्यश्री श्रीमद् ऋषिराय दो घड़ी बाद पहुंचे व समाचार सुनते ही उन्होंने कहा, "मेरे लिए यह महादुखद समाचार है, इतना दुखद अवसर पहले कभी नहीं आया ।" इस प्रकार तेरापंथ धर्मसंघ के एक महान्, यशस्वी व्यक्तित्व व शासन स्तम्भ ने ५१ वर्ष की अपूर्व संयम साधना कर अपना नश्वर शरीर छोड़ा, पर वे तेरापंथ के इतिहास में सदा अजर-अमर रहेंगे ।

## प्रमुख श्रावक

### १. श्रावक गेरूलालजी व्यास

अभिनिक्रमण से पूर्व, सं० १८१६ में, भिक्षु स्वामी के जोधपुर चातुर्मास के समय, वे स्वामीजी के प्रति आस्थाशील बने । तेरापंथ नामकरण की घटना के

समय उन्होंने दीवान फतेचन्दजी को जानकारी दी व स्वामीजी की सत्यक्रांति के साथ जुड़े। स्वामीजी के दयावान सिद्धान्त को उन्होंने बारीकी से समझा। जैनधर्म के प्रति श्रद्धालु बनने से ब्राह्मण समाज में उनके प्रति रोष रहा व उनको पुत्र का विवाह अन्यत्र करना पड़ा। वे सेठ के यहां नौकरी करते थे व बाहर जाते रहते। संवत् १८५१ में, उन्होंने मांडवी बंदर (कच्छ) के तत्त्वज्ञ श्रावक टीकम डोसी से चर्चा-वार्ता कर उसे स्वामीजी की मान्यताएं बताईं व उनकी प्रेरणा से टीकम डोसी ने संवत् १८५३ में मारवाड़ आकर स्वामीजी के दर्शन किए व गुरु-श्रारणा की। टीकम डोसी स्वामीजी की रचनाओं से बहुत प्रभावित हुए व अंत में अनशन कर स्वर्गवासी हुए।

## २. श्रावक शोभजी

आपका जन्म केलवा के कोठारी (चोरड़िया) परिवार में हुआ व आपके पिता नेतसीजी ने संवत् १८१७ के केलवा चातुर्मास में स्वामीजी की श्रद्धा ग्रहण की व उनके संस्कार आपमें भी आए। आप धार्मिक व सामाजिक दोनों कार्यों में निपुण थे व केलवा ठिकाने के कई वर्ष प्रधान रहे। बाद में ठाकुर से अकारण मनोमालिन्य होने के कारण, आप नाथद्वारा आ गये और वहां सपरिवार रहने लगे। केलवा ठाकुर के दबाव से नाथद्वारा के गुसाईंजी ने आप पर गलत आरोप लगाकर कारावास में डाल दिया व पैरों में लोहे की बेड़ियां डाल दीं। ऐसी विपदा के समय वे गुरु की शरण में जाना श्रेयस्कर समझ कर, तन्मयता से गाने लगे—

“मौटो फंद इण जीवरे, कनक कामणी दोग,  
निकल सकूं नहीं, उलझ रह्यो हूं, दरशण पड़ियो बिछोय  
गुरुजी रा दर्शन किण विध होय, स्वामीजी सुं मिलणों  
किण विध होय.....”

संयोग की बात, स्वामीजी उन दिनों आस-पास विचर रहे थे। पता लगने पर वे नाथद्वारा आए व शोभजी को दर्शन देने कारागृह गये। उन्हें तन्मयता से गाने देखकर स्वामीजी ने आवाज दी, आवाज के साथ ही शोभजी अपने गुरु के दर्शन करने खड़े हुए। पैरों की लोहे की बेड़ियां टूटकर अलग पड़ गईं। एक अनहोनी घटना घट गई, गुसाईंजी को सूचना मिलने पर उन्होंने आपको तुरन्त मुक्त कर दिया व खूब सम्मान दिया।

शोभजी जैसे श्रद्धाशील थे। वैसे कर्मठ भी थे। उदयपुर के प्रसिद्ध श्रावक केसरजी भंडारी को उन्होंने ही तेरापंथ के प्रति आस्थावान बनाया था। शोभजी की ३० गीतिकाओं की 'पूजगुणी' काव्य-रचना बड़ा प्रेरक ग्रन्थ है।

३२ हे प्रभो ! तेरापंथ

### ३. श्रावक विजयचन्द्रजी पटुआ

आप पाली (मारवाड़) के थे व गौत्र पोरवाल था। एक बार स्वामीजी पाली पधारे। मूलतः स्थानकवासी होने के कारण, सामाजिक प्रतिबन्ध से, आप स्वामीजी के पास दिन को न जाकर, रात को गये। सोने का समय हो गया था, पर आप स्वामीजी से जिज्ञासाएं करते रहे व समाधान पाते रहे। सारी रात इसी चर्चा-वार्ता में बीत गई। आपके साथ आपके मित्र वर्धमानजी श्रीमाल भी थे। प्रातः प्रतिक्रमण का समय हुआ व दोनों ने गुरु-धारणा कर ली। पटुआजी को स्वामीजी की मान्यताओं व चरित्रनिष्ठा के बारे में दृढ़ विश्वास था और वे इसके विपरीत किसी की बात नहीं मानते। एक बार वे दुकान बन्द कर स्वामीजी के पास सामायिक करने बैठ गये। फिर याद आया कि वे रुपयों की थैली दुकान के बाहर भूल आए हैं, पर उन्होंने समभाव रखकर एक और सामायिक ले ली। वापस गये तो देखा, एक बकरा रुपयों की थैली पर बैठा हुआ है व थैली पर किसी की नजर नहीं पड़ी। ऐसी समता बिरलों में होती है। वे विनम्र व व्यवहार-कुशल थे। उनकी उदारता एवं अविचल आस्था के अनेक उदाहरण हैं।

### ४. श्रावक गुमानजी लूणावत

वे पीपाड़े के तत्त्वज्ञ व धर्मनिष्ठ श्रावक थे। उन्होंने स्वामी का समग्र साहित्य कंठस्थ कर लिपिबद्ध किया, जो 'गुमानजी लूणावत के पोथे' के नाम से प्रख्यात है, उन्होंने बारह व्रत धारण किए।

## स्वामीजी की मान्यताएं

### धर्म की विशुद्ध व्याख्या

स्वामीजी जैन दर्शन से प्रभावित थे और उनकी सारी साधना का आधार जैन धर्म और दर्शन था। राग-द्वेष को जीतने वाले पुरुष को 'जिन' कहा जाता है और उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म 'जैन-धर्म' के नाम से जाना जाता है। जैन दर्शन का अन्तिम व प्रमुख लक्ष्य आत्मा की समुज्ज्वलता व कर्म-बन्धन से मुक्ति है। उसमें पदार्थ जगत के प्रति मोह, ममता, मूर्च्छा को किंचित भी स्थान नहीं है। वैसे भी जैन दर्शन का सार आत्मज्ञान, आत्मसाक्षात्कार व आत्मसाधना (सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चरित्र) की अभिवृद्धि करना व आत्मा को शुद्ध, प्रबुद्ध, सिद्ध अवस्था में प्रतिष्ठापित करना है। स्वामीजी ने इन मान्यताओं को प्रखरता से, बिना किसी दबाव, प्रलोभन या लोक-रंजन की भावना से, जनता

के सामने रखा व्रजमता को सही समझ देने के लिए सतत प्रयास किया। उन्होंने किसी प्रवृत्ति में धर्म है या नहीं, उसके लिए निम्न सूत्र दिए, जो इतने सुस्पष्ट हैं कि उनकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है —

(१) धर्म त्याग में है, भोग में नहीं, (२) व्रत में है, अव्रत में नहीं, (३) दया में है, हिंसा में नहीं, (४) हृदय परिवर्तन में है, बल-प्रयोग में नहीं, (५) समता में है, ममता में नहीं, (६) अमूल्य है, धन से खरीदा नहीं जा सकता, (७) राग-द्वेष की कमी में है, वृद्धि में नहीं, (८) आत्मिक सुख में है, दैहिक सुख में नहीं। दुनिया में स्वार्थ या मोह या यश-कीर्ति हेतु हम किसी प्रवृत्ति को धर्म कह दें पर जब तक उपरोक्त कसौटी पर किसी प्रवृत्ति को नहीं कसा जाता, तब तक उसे आत्मशुद्धि-परक धर्म नहीं कहा जा सकता।

### साधुत्व की सही परीक्षा

भगवान महावीर द्वारा प्रणीत साधुचर्या के पाँच महाव्रतों की साधना के विषय में स्वामीजी ने स्पष्ट किया कि जैन साधु मनयोग, वचनयोग, काययोग—तीनों प्रकार से किसी प्रकार की हिंसा नहीं करते, न कराते, न उसका अनुमोदन करते हैं। इसी प्रकार वे न झूठ बोलते हैं, न चोरी करते हैं, न अब्रह्मचर्य-सेवन करते हैं, न किसी भी प्रकार के मूर्च्छा परिग्रह रखते हैं, न अन्य किसी से करवाते हैं, न उसका अनुमोदन ही करते हैं—मन से, वचन से या शरीर से। स्वामीजी ने यह भी घोषणा की कि जो कार्य साधु के लिए करना पाप है, निषेधपूर्ण है, उसका कराना या अनुमोदन भी पाप है, निषेधपूर्ण है। इस सिद्धान्त को देखते, जब कोई जैन साधु द्रव्य पूजा नहीं करता, न कोई जैन साधु असंयमी व्यक्तियों को किसी वस्तु का दान करता है, न असंयती प्राणी के जीवन की आकांक्षा रख सकता है, फिर भला वह इनको करने के लिए किसी को प्रेरित कैसे कर सकता है, या अनुमोदन कैसे कर सकता है? गृहस्थों को अपनी आवश्यकतावश कुछ ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जिन्हें वह पाप जानता है पर आवश्यक कार्य होने से धर्म की कोटि में नहीं लिया जा सकता।

### अहिंसा की सही समझ (दान-दया का स्वरूप)

स्वामीजी ने जैन आगमों के आधार पर यह मान्यता दी कि सारे प्राणी जगत् की आत्मचेतना समान हैं और सभी प्रकार के प्राणियों की हिंसा, वध, यातना पाप की कोटि में आते हैं। इसमें ऐसा नहीं हो सकता कि एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा कर पंचेन्द्रिय का पोषण किया जाए या दुर्बल, असहाय, मूक, निरीह प्राणियों का वध या त्रास मनुष्य के ऐहिक लाभ या सुख-सुविधा के लिए किया जाए। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि जहाँ ज्ञान, दर्शन, चारित्रमय धर्म

की वृद्धि हो, अहिंसा, अपरिग्रह की भावना पुष्ट होती हो, राग-द्वेष से विरति होती हो, वही क्रिया सही दया और दान है, अन्य प्रकार की क्रिया आत्मसाधना से सम्बन्धित दान और दया नहीं हो सकती, उसे लौकिक दान या दया कह सकते हैं, पर वैसे दान और दया आत्मा को समुज्ज्वलता प्रदान करने में सहायक नहीं हो सकते। उन्होंने प्रतिपादित किया कि स्वयं की वृत्तियों में, सब प्राणियों के प्रति मैत्री भाव जागे व पीड़ा का भाव तिरोहित, हो जाए, वही अभयदान के स्वरूप में सही दान और दया है। आत्मसाधना से विमुक्त असंयम में संलीन प्राणी का न जीना श्रेयस्कर है, न मरना। अतः उसके जीवन की आकांक्षा करना मात्र मोह राग ही हो सकता है या मरने की आकांक्षा द्वेष का कारण हो सकता है। पर इससे उसे धर्म से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता। अलबत्ता किसी प्राणी के कर्म-बन्धन से मुक्ति की कामना करना, प्रेरणा देना या उसमें प्रवृत्त करना वीतराग देव द्वारा निर्देशित मार्ग है। स्वामीजी की इन मान्यताओं का समाज में भयंकर विरोध हुआ क्योंकि पूंजीवादी व्यवस्था पर आधारित समाज जो धन से धर्म खरीदना चाहता है अथवा शोषण व संग्रह कर किंचित् धन किसी को विपन्न रखकर लुटाने को दान बताता है, उसकी खोखली मान्यताएं इन शाश्वत सत्यों के आगे टिक न सकी तथा परम्परागत रूढ़िवादी धर्म और पुण्य के तथाकथित संस्कार हिल गए, और अध्यात्म के जगत् में एक नई विचार-क्रान्ति की हलचल मच गई।

स्वामीजी ने धर्म का सम्बन्ध किसी प्राणी के मरने या जीने से विलग कर अहिंसा, असंगतता व अभय भावना से जोड़ दिया। स्वामीजी की उपरोक्त मान्यताओं के निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

१. धर्म और अधर्म का मिश्रण नहीं होता।
२. गृहस्थ व साधु का मोक्ष धर्म एक है।
३. अशुद्ध साधन से शुद्ध साध्य प्राप्त नहीं होता।
४. अहिंसा और दया सर्वथा एक है।
५. बड़ों के लिए छोटे प्राणी की घात पुण्य नहीं है।
६. हिंसा से धर्म नहीं होता।
७. लौकिक व आध्यात्मिक धर्म एक नहीं है।
८. आवश्यक हिंसा अहिंसा नहीं है।

स्वामीजी ने अनेकानेक दृष्टान्तों व काव्य रचनाओं द्वारा उपरोक्त मान्यताओं को सम्पूर्ण अभिव्यक्ति दी, पर मिथ्याग्रह व स्वार्थ-भावना के कारण इन मान्यताओं को विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया व दो शताब्दियों तक इनके कारण स्वामीजी व तेरापथ की कुत्सित आलोचना की गयी। युगप्रधान आचार्य-श्री तुलसी ने गत तीन दशक से वर्तमान युगीन भाषा में, दर्शन की गहराइयों को

छूते हुए, इन मान्यताओं को विद्वज्जनों व जनसाधारण के सामने व्यापक आधार पर रखा, तब से आलोचना का स्तर सुधरा है, व उसकी आंच मंद पड़ी है। इन मान्यताओं पर विशद व प्रामाणिक विवेचन युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ द्वारा लिखित 'भिक्षु विचार दर्शन' में उपलब्ध है। 'भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर—प्रथम खण्ड' में स्वामीजी की सैद्धान्तिक काव्य रचनाओं का संग्रह है। उसको पढ़ने से स्वामीजी के मानस, विचार शैली व आत्म-स्फुरणा से सहज ही साक्षात्कार हो सकता है।



# तेरापंथ का पालन-पोषण व क्रमिक विकासकाल

## द्वितीय आचार्यश्री भारीमालजी

(संवत् १८६०-७८)

### जन्म, वंश आदि

आचार्यश्री भारीमालजी का जन्म संवत् १८०४ में मेवाड़ के मुंहा गांव में किसनोजी लोढ़ा (ओसवाल) व उनकी धर्मपत्नी धारिणी के यहां हुआ। बाल्यावस्था से ही आपमें वैराग्य भावना का प्राबल्य था, अतः भिक्षु स्वामी से संपर्क होने पर संवत् १८१३ में मात्र दस वर्ष की अवस्था में, अपने पिता किसनोजी के साथ, उनके पास दीक्षा ले ली। भिक्षु स्वामी उस समय आचार्य रुघनाथजी महाराज के संप्रदाय में थे। दीक्षा के बाद से ही आप स्वामीजी के साथ रहे व राजनगर के संवत् १८१५ के चातुर्मास में, उनके साथ थे। अभिनिष्क्रमण के समय व तेरापंथ-स्थापना के समय भी आपके साथ ही रहे। संवत् १८१७ के केलेवा चातुर्मास के प्रारम्भ में 'अंधेरी ओरी' की घटना व सर्प के उपसर्ग में आपने बालक होते हुए भी अजेय आत्मबल का परिचय दिया। आपकी निर्मल आत्म-दृष्टि, ऋजुता, विनय, दृढ़ता, विवेक से स्वामीजी आपसे प्रारम्भ से ही प्रभावित रहे व संवत् १८२४ के आपके बगड़ी चातुर्मास काल के सिवाय, आप जीवन भर स्वामीजी के साथ अभिन्न सहायक व सेवक के रूप में रहे। आपके युगल को 'महावीर-गौतम' की उपमा से उपमित किया जाता है।

### प्रथम सत्याग्रही

आचार्य भिक्षु ने अभिनिष्क्रमण के बाद नई दीक्षा लेने का विचार किया तो उन्हें लगा कि भारीमालजी के पिता किसनोजी की प्रकृति उग्र एवं असहिष्णु होने के कारण, उनको साधु की कठोर चर्या पालन करना कठिन रहेगा। अतः उन्होंने उनको साथ रखना उचित नहीं समझा। किसनोजी को जब यह मालूम हुआ तो वे अपने पुत्र भारीमालजी को बलात् अपने साथ ले गये। मुनि भारीमालजी ने पिता के साथ रहने पर, आचार्य भिक्षु के सिवाय, अन्य किसी के हाथ से अन्न (भोजन) लेने का त्याग कर दिया। उनके एक, दो, तीन दिन इस तरह निराहार

अवस्था में निकल गये, जिससे पिता का हृदय पसीज गया। उन्होंने मुनि भारी-मालजी को वापस लाकर भिक्षु स्वामी को सौंपा, तब उन्होंने आहार किया। किसनोजी ने स्वामीजी को उन्हें किसी स्थान पर सुरक्षित भेजने की प्रार्थना की, जिस पर स्वामीजी ने उनको आचार्य जयमलजी को सौंप दिया। आचार्य जयमलजी ने भिक्षु स्वामी की बुद्धि की सराहना करते हुए कहा, “भीखणजी ने तीन घर बधाई कर दी, मुझे शिष्य मिला, किसनोजी को ठिकाना मिला और स्वयं ने अयोग्य शिष्य से छुट्टी पाई।”

### प्रथम प्रयोगभूमि

स्वामीजी द्वारा तेरापंथ की स्थापना के पूर्व व पश्चात् उन्हें भयंकर उपसर्गों का सामना करना पड़ा, पर उन सारी स्थितियों में भारीमालजी स्वामी उनके साथ अडिग व अडोल रहे। स्वामीजी की कष्ट-सहिष्णुता से द्वेषवश लोग स्वामीजी व उनके सहयोगी साधुओं पर कई झूठे व अनर्गल आरोप लगा देते थे। स्वामीजी ने आपको बुलाकर कहा, “यदि कोई तुम्हारी गलती या दोष निकाले तो तुम्हें तीन दिन निराहार (तेला) रहना होगा।” आपने आज्ञा शिरोधार्य करते हुए पूछा, “कोई गलत आरोप लगाए तो क्या करना?” स्वामीजी ने कहा, “सही दोष निकाले तो प्रायश्चित्तस्वरूप व झूठा दोषारोपण करे तो पूर्व कर्मों का उदय समझ निर्जरा के रूप में तपस्या करना, पर तेला हर हालत में करना है।” आप इतने सजग थे कि आपको इस आदेश के फलस्वरूप उग्र विरोध के विषाक्त वातावरण में भी केवल एक बार तेला करना पड़ा, और वह भी किसी के मिथ्या दोषारोपण पर। भारीमालजी स्वामी का व्यक्तित्व स्वामीजी की ऊर्जा शक्ति का स्पर्श पाकर निखरता गया और वे ज्ञान-संपन्न व आचारनिष्ठ साधुओं में शीर्षस्थ माने जाने लगे।

### युवाचार्य पद

आपकी विलक्षणता देखकर संवत् १८३२ में जब आप मात्र २६ वर्ष के थे, तब व्यवस्था करने हेतु मर्यादा-पत्र तैयार करने के समय आपको युवाचार्य घोषित किया गया। तेरापंथ के दो सौ वर्ष से अधिक समय के इतिहास में आपका युवाचार्य-काल २८ वर्ष का (१८३२ से १८६०) सर्वाधिक रहा है। स्वामीजी के साथ ४३ वर्ष तक रहकर अनेक परिषद् सहेते व कष्टों को समभाव से झेलते, आपने व स्वामीजी ने जिन धर्म का मार्ग प्रशस्त किया। आचार्य भिक्षु का आपके प्रति अत्यन्त वात्सल्य भाव रहा। संवत् १८६० में अपने जीवन के अन्तिम समय में, स्वामीजी ने कहा, “भारीमाल के कारण मैंने सुगमता से संयम निर्वाह किया। ऐसा लगता है, इससे मेरी पूर्वजन्म की प्रीति थी, जिसके कारण इस जन्म में

अविचल साथ रहा ।” स्वामीजी ने अंतिम समय में प्रदत्त साधुओं को शिक्षा में भारीमालजी स्वामी की आज्ञा का अखण्ड पालन करने हेतु उद्बोधन दिया । स्वामीजी के स्वर्गवास से आशंकित विरह वेदना में जब आप व्यथित हुए तो स्वामीजी ने कहा, “तुम उदार यशवाले देव बनकर महाविदेह क्षेत्र में अर्हंतों के दर्शन करोगे । अतः मेरे विरह की क्यों चिंता करते हो ?”

स्वामीजी के अन्तिम अनशन के समय आपने उन्हें हर प्रकार से चित्त समाधि उपजाने के लिए सहयोग दिया ।

### प्रचार-प्रसार, दीक्षा आदि

आपने आचार्य बनने के बाद १८ वर्षावास बिताये, जिनमें ५ मेवाड़, ६ मारवाड़ व २ ढूढाड़ के कुल १३ नगरों का स्पर्श किया । आपके शासनकाल में ३८ साधु व ४४ साध्वियां प्रव्रजित हुईं जिनमें ६ साधु व ३ साध्वी गण से बहिर्भूत हो गईं । आपकी व्याख्यान शैली आकर्षक व आवाज बुलन्द थी । आपकी संभारता व निर्मल आत्मा के कारण कई मूर्तिपूजक व स्थानकवासी साधु तक आपके पास प्रायश्चित्त लेने आते । आप छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं को तत्त्व ज्ञान सिखाने की विशेष प्रेरणा देते । आप कुशल लिपिकर्ता थे, आपने लगभग पांच लाख श्लोकों की प्रतिलिपि की व स्वामीजी के समग्र साहित्य को लेखबद्ध कर प्रामाणिकता दी । आपकी प्रेरणा से मुनिश्री हेमराजजी ने संवत् १८६६ में किशनगढ़ चातुर्मास कर वहां अच्छा उपकार किया व महेशदासजी जैसे प्रतिभा-संपन्न कवि को समझाकर अस्थायी श्रावक बनाया । आपने संवत् १८६६ का चातुर्मास जयपुर किया, जो बहुत प्रभावक रहा । तब से जयपुर तेरापंथ का स्थायी क्षेत्र बन गया । वहीं पर कल्लूजी व उनके तीन यशस्वी पुत्र—स्वरूपचन्दजी (प्रमुख अग्रगण्य), जीतमलजी (जयाचार्य) व भीमजी (महान् तपस्वी) ने दीक्षा ली । आपके युग में वेणीरामजी स्वामी ने १८६६ में रतलाम व १८७० में उज्जैन चातुर्मास किये । संवत् १८७५ में कांकरोली में चातुर्मास कर आप शेषकाल में उदयपुर पधारे व वहां पर अनेक लोगों को समझाया । विद्वेषी लोगों ने आपके विरुद्ध महाराणा भीमसिंहजी के कान भरकर उदयपुर से निष्कासन करवा दिया । आपके विहार होते ही संयोग से शहर में महामारी फैल गई । महाराणा के पाटवी पुत्र व दामाद का अल्प समय में देहान्त हो गया जिससे महाराणा दुःखी और चिंतातुर हो गये । केशरजी भंडारी महाराणा के विश्वस्त अधिकारियों में थे । वे प्रच्छन्न तेरापंथी थे । उन्होंने महाराणा को आचार्य भारीमालजी के निष्कासन के लिए उपालम्भ देकर इसे सारी दुरवस्था का कारण बताया । महाराणा आपको वापस बुलाने को आतुर हो उठे और उन्होंने एक पत्र आपकी सेवा में भिजवाया, जो इस प्रकार है—

श्री एकलिगजी

श्री बाणनाथजी

श्री नाथजी

“स्वस्ति श्री साध भारमलजी तेरपंथी साध श्री राणा भीमसिंह री विनती मालूम होवे, कृपा कर अठे पधारोगा, को दुष्ट दुष्टाणों कीधो, जी सामू नहीं देखोगा, या सामू व नगर में प्रजा है, ज्योरी दया कर जेज नहीं करोगा, वती कांई लिखुं और समाचार शाह शिवलाल का लख्या जाणोगा, संवत् १८७५ वर्ष असाढ वदि ३ शुके ।”

आचार्यप्रवर को यह पत्र सुनाया व उदयपुर पधारने का निवेदन किया गया पर वे इतने निष्पृह थे कि उन्होंने कहा, “अब उस पथरीली धरती पर पैर घिसने कौन जाए ?” महाराणा को यह ज्ञात हुआ तो उन्हें बहुत निराशा हुई और चातुर्मास उतरने के बाद उन्होंने पुनः एक पत्र आपकी सेवा में भिजवाया जो इस प्रकार है—

श्री एकलिगजी

श्री बाणनाथजी

श्री नाथजी

“स्वस्ति श्री तेरापंथी साधु श्री भारमलजी सूं म्हारी दण्डौत बंचे, अप्रंच आप अठे पधारसी, जमा खातर सुं, आगे ही रुक्कों दियो हो सो अबे बेगा पधारोगा, संवत् १८७६ वर्ष पोह वदि ११, बेगा आवोगा, श्रीजी रो राज है, सो सारों को सीर है, जी थी; संदेह कोहि बी नहीं लावोगा ।”

इस पर वृद्धावस्था व शारीरिक दुर्बलता के कारण आचार्यप्रवर तो उदयपुर नहीं गये पर उन्होंने मुनिश्री हेमराजजी, रायचंदजी, जीतमलजी आदि तेरह संतों को भेजा, जिन्होंने एक माह प्रवास किया जिसमें महाराणाजी का बहुत सहयोग रहा । उन्होंने अनेक बार दर्शन किए । संवत् १८७७ का चातुर्मास भी श्रीहेमराजजी स्वामी ने उदयपुर में किया । इस चातुर्मास में बहुत उपकार हुआ । तब से उदयपुर का भी तेरापंथ से स्थायी रूप से सम्बन्ध हो गया ।

**युवाचार्य-मनोनयन व स्वर्ग-प्रयाण**

आचार्य-प्रवर ने संवत् १८७७ का चातुर्मास नाथद्वारा में किया व बाद में कांकरोली होते हुए राजनगर पधारे । मुनिश्री हेमराजजी ने वहां दर्शन किए, अनेक साधु-साध्वी व सैकड़ों श्रावक-श्राविकाओं का गुरु दर्शन हेतु वहां आना हुआ । उदर-वेदना से आचार्यप्रवर अस्वस्थ हो गए । उन्होंने मुनिश्री खेतसीजी व मुनि श्री हेमराजजी से परामर्श करके संवत् १८७७ के बैसाख वदि ६ गुरुवार को लेख-पत्र लिखकर श्री रायचंदजी स्वामी को युवाचार्य घोषित किया । पहले खेतसीजी स्वामी का भी लेखपत्र में नाम लिख दिया गया था पर यह आगे के लिए ठीक परम्परा न होने के कारण खेतसीजी स्वामी का नाम हटा दिया गया । इसके बाद

आपने तपस्या प्रारम्भ कर दी। ज्येष्ठ व असाढ में दस दिन तक की तपस्या की। श्रावण मास में एकान्तर आदि तप किया। संवत् १८७८ का चातुर्मास केलवा में किया। चातुर्मास में भी आपके अस्वस्थता बनी रही, पर आप बराबर आत्मालोचन, क्षमायाचना व आराधना करते रहे व चतुर्विध संघ को उचित शिक्षा फरमाते रहे। लगभग नव महीना केलवा विराजने के बाद पौह माह में आप राजनगर पधार गए। वहां आप 'कालाञ्जर' से प्रसित हो गए व माघ वदि ७ को आपने सागारी संथारा कर लिया। बाद में आपने आजीवन अनशन ग्रहण कर लिया व तीन प्रहर बाद संवत् १८७८ माघ वदि ८ की अर्द्धरात्रि में आपका स्वर्गवास हो गया। माघ वदि ९ को आपका चरमोत्सव ठाठ से मनाया गया। मंडी बड़ी होने के कारण शहर का दरवाजा छोटा पड़ गया तो लोगों ने शहरपनाह का दरवाजा तोड़ दिया जो आज भी 'फूटा दरवाजा' नाम से जाना जाता है। दाह संस्कार में स्वयं महाराणाजी ने आर्थिक सहयोग दिया। कहते हैं कि उनके दाह संस्कार में उनकी पछेवड़ी नहीं जली, तब लोग श्रद्धावश उसके टुकड़े-टुकड़े कर घर ले गए। उसका एक अढाई इंच का अवशेष लाडलू संग्रहालय में आज भी मौजूद है।

### दीक्षा व तपस्या की विशिष्ट उपलब्धियां

आपके समय निम्न विशेष दीक्षाएं हुई—

१. कुमारी कन्या नन्दूजी की प्रथम दीक्षा,
२. अविवाहित नौ बालकों की दीक्षा,
३. बहन-भाइयों का जोड़ा (दीपजी, जीवोजी, मयाजी)
४. माता सहित तीन पुत्र—कल्लूजी, स्वरूपचन्दजी, जीतमलजी, भीमजी
५. तीन सपत्नीक दीक्षाएं
६. चार सुहागिन बहनों की दीक्षाएं
७. सात स्त्री छोड़कर, पुरुषों की दीक्षाएं
८. पति पहले व बाद में पत्नी की दीक्षा—दो।

मुनि वर्धमानजी को भारीमालजी स्वामी ने आधी रात को, मुनि जीवोजी को स्वरूपचन्दजी स्वामी ने जंगल में गृहस्थ वेश में व साध्वी नन्दूजी को हेमराजजी स्वामी ने जंगल में गहने-कपड़े सहित दीक्षा दी। आपके युग में साध्वी चतरूजी ने १२, स्वरूपचन्दजी स्वामी ने १७ व हेमराजजी स्वामी ने १२ दीक्षाएं दीं। आपके समय में संवत् १८७४ में मुनि बख्तोजी ने १०१ दिन, १८७६ में मुनि पीथलजी ने १०६ दिन, १८७७ में मुनि पीथजी व माणकजी ने चार-मासी तप व १८७७ में वर्धमानजी ने १०३ दिन की आछ के आगार पर तपस्याएं कीं। मुनिश्री हेमराजजी ने आपके स्वर्गवास के पश्चात् 'भारीमाल-चरित्र' आख्यान की रचन

पीपाड़ में संवत् १८७६ भादवा वदि १२ को की। आपके जीवन से सम्बन्धित घटना-प्रसंगों का सविस्तार विवरण ख्यात संख्या ७, भिक्षु यश-रसायण, ऋषि-राय-सुयश, जय सुयश, भिक्षु दृष्टांत, हेम दृष्टान्त, श्रावक दृष्टांत तेरापंथ का इतिहास, भिक्षु स्मृति ग्रन्थ तथा शासन समुद्र (भाग १) में उपलब्ध है।

## प्रमुख साधु

### १. मुनि स्वरूपचन्दजी एवं भीमजी स्वामी

ये दोनों श्रीमद् जयाचार्य के अग्रज थे व इनका जन्म क्रमशः १८५० व १८५५ में हुआ। १८६६ में तीनों भाइयों ने अपनी माता के साथ जयपुर में आचार्य भारीमालजी के पास दीक्षा ली। मुनि श्री स्वरूपचन्दजी ने हेमराजजी के साथ छः व आचार्यप्रवर के साथ एक चातुर्मास किया। संवत् १८७२ से ७६ तक तीनों भाई हेमराजजी स्वामी के साथ रहे। मुनिश्री हेमराजजी के साथ सभी भाइयों ने खूब ज्ञानार्जन किया व साधना की। संवत् १८७६ में स्वरूपचन्दजी अग्रगण्य हो गए। अग्रगण्य होने के बाद संवत् १८७६ में लाडनू व संवत् १८८१ में उज्जैन में चातुर्मास किए। संवत् १८९३ में जब श्रीमद् ऋषिराय के साथ अमीचंदजी मुनि ने विश्वासघात कर अकेला रखा, तब आपने नाथद्वारा पधारकर आचार्यप्रवर को साहस बंधाया व उसी समय आचार्यप्रवर ने जीतमलजी के नाम युवाचार्य पत्र लिखकर आपको दिया। थली में आपने खूब प्रचार किया। आप शास्त्रों के गहन अध्ययता थे। संवत् १९२० से २५ तक आपका लाडनू में स्थिरवास रहा। श्रीमद् जयाचार्य के पदासीन होने के बाद आपकी सेवा में कम से कम ८ व अधिकतम १८ साधु रहे। आपने अपने हाथ से ८ साधु व ६ साध्वियों को दीक्षित किया। आपने अनेक साधु-साधवियों की अस्वस्थता व अन्तिम समय में चित्त समाधि स्थिर कर व अनशन कराकर सहयोग दिया। मुनि भवानजी (छोटा) व कालूजी (बड़ा) को आपने शिक्षा देकर योग्य बनाया। वे आपके जीवन पर्यन्त सेवा में रहे, बाद में अग्रणी बने। आपने कुछ महीने एकान्तर तप तथा १५ दिन की (आठ के आगार) तपस्याएं कीं। अनेक वर्षों तक शीतकाल में मात्र एक चद्दर ओढ़कर व रात्रि के समय चद्दर उतारकर विशेष रूप से स्वाध्याय करते रहे। जेठ वदि ४ शनिवार संवत् १९२६ (विक्रम) में आपका लाडनू में स्वर्गवास हुआ। तेरापंथ धर्मसंघ के अग्रगण्य साधुओं में आपका स्थान शीर्षस्थ साधुओं में आता है।

मुनिश्री भीमजी संवत् १८८२ में अग्रगण्य हुए। वे बड़े सेवाभावी, शांत, सरल, विनयी, उद्यमी, साहसी व निर्जरार्थी हुए। मारवाड़, मेवाड़, मालवा, हाड़ौती,

ढूँडाड, हरियाणा, थली में विचरण कर आपने अच्छा उपकार किया। आपने संवत् १८६७ में पादू में मुनि नन्दरामजी को दीक्षा दी। आप बड़े तपस्वी हुए व आपने ५/२, ८/२, १२/१, १५/१ व ३०/१ तपस्याएं कीं। शीतकाल में १२ वर्ष तक एक मलमल की चद्दर ओढ़कर रातें बिताईं। स्वाध्याय, ध्यान, स्मरण, जाप, खाद्य-विजय कर आपने अपनी आत्मा को निर्मल बनाया। संवत् १८६८ (विक्रम) के आसाढ वदि ७ को आपका अतशतपूर्वक स्वर्गवास हुआ। उग्र तपस्वियों की कोटि व विघ्न-हरण गीतिका में आपका नाम 'अभीराशिको' मन्त्र में सन्निहित है।

२. श्रीमद् जयाचार्य (विवरण आगे के पृष्ठों में दिया जायेगा।)

३. मुनिश्री कर्मचंदजी

आपका जन्म देवगढ़ में ओसवाल जाति गोत्र पोखरणा वंश में हुआ। संवत् १८७६ में मुनि हेमराजजी के देवगढ़ चातुर्मास में आपको दीक्षा की प्रेरणा मिली। पर जब आप दीक्षा के लिए तैयार हुए तो मोहवश आपके दादा ने बाधा डाली व आपको रोकने के अनेक उपाय किये, पर आप दृढ़ रहे। संवत् १८७६ मगसिर वदि १ को मुनि रतनजी व मुनि शिवजी के साथ आपकी भी दीक्षा हुई। आपने चार चातुर्मास मुनि हेमराजजी व दो चातुर्मास श्रीमद् ऋषिराय व २२ चातुर्मास मुनि जीतमलजी (बाद में जयाचार्य) व ४ चातुर्मास मुनि सतीदासजी के साथ किए। १९०८ में आप अग्रणी बने। आप बड़े विनयी व श्रमशील थे। आपकी बुद्धि व ग्रहणशक्ति प्रबल थी। आपने अनेक बार बत्तीस सूत्रों का वाचन किया। आपकी वाचन शैली, व्याख्यान कला व लिपि बहुत सुन्दर थी। आप ध्यान-योगी थे व आपका बनाया हुआ 'कर्मचंदजी स्वामी का ध्यान' (स्वतः चिंतन की रचना) बहुत प्रसिद्ध है। आपका स्वर्गवास संवत् १९२६ जेठ वदि ७ को बीदासर में श्रीमद् जयाचार्य की उपस्थिति में हुआ।

५. मुनिश्री सतीदासजी (शान्ति मुनि)

आपका जन्म गोगुंदा में श्री बाघजी कोठारी (ओसवाल, बरल्या गोत्र) व माता नवलोजी के यहां संवत् १८६१ में हुआ। आप प्रकृति से शान्त व कोमल एवं आकृति से सुन्दर व आकर्षक थे। संवत् १८७३ में द्वितीयाचार्य भारीमालजी गोगुंदा पधारे, तब आप उनके दर्शन व प्रवचन-श्रवण से बहुत प्रभावित हुए। संवत् १८७४ में मुनिश्री हेमराजजी (मुनि जीतमलजी भी साथ थे) के चातुर्मास में आपने खूब तत्त्वज्ञान सीखा व आजीवन अब्रह्मचर्य सेवन व व्यापार करने का त्याग कर दिया तथा साधु बनने को लालायित हुए। पर परिवारवालों ने आपको बहुत कष्ट दिए व दीक्षा की अनुमति नहीं दी व बलात् उनका विवाह रचा दिया। जिस व्यक्ति का अन्तर्मन बंधन-मुक्ति के लिए छटपटाने लगता है, उसे बंधन में

रखना असंभव है। आप की दृढ़ भावना देखकर आखिर परिवारवालों ने विवश होकर अनुमति दी। संवत् १८८१ माघ शुक्ला ५ को मुनिश्री हेमराजजी के हाथों गोगुंदा में आपकी दीक्षा हुई। दीक्षा के बाद आप मुनिश्री जीतमलजी के संवत् १८८१ में अग्रगण्य होने के बाद से २३ वर्ष तक लगातार मुनिश्री हेमराजजी की अनवरत सेवा में रहे। उनसे उनकी सम्पूर्ण साधना-शक्ति प्राप्त की। संवत् १९०४ में मुनिश्री हेमराजजी के स्वर्गवास के बाद आप अग्रगण्य बने। श्रीमद् ऋषिराय के संवत् १९०८ में स्वर्गवास होने के बाद श्रीमद् जयाचार्य ने आपको बहुत सम्मानित किया व अपने प्रधान पार्षद की उपमा दी। मुनिश्री हेमराजजी के वरद हाथों दोनों का समान रूप से निर्माण हुआ और इसी कारण दोनों अभिन्न सखा भाव से रहे। आप बड़े आत्मार्थी, पापभीरू व जागरूक थे। आपने अनेक प्रकार के बाह्य व आभ्यंतर तप किए। संवत् १९०९ मगसिर वदि ९ को बीदासर में आपका अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। बत्तीस वर्ष तक आपने निर्मल भावना से चारित्र्य का पालन किया। श्रीमद् जयाचार्य ने आपके बारे में उद्गाद प्रकट करते हुए लिखा है—

परम मित्र मुझ शांति मनोहर, सुविनितों सिरताज ।  
याद आवैं, निशदिन अधिकेरो, जाण रह्या जिनराज ॥  
शांति जिसी प्रकृति ना साधु, पंचम आरा मांय ।  
बहुल पणे है वेणा अति दुर्लभ, सम दम गुणे सुहाय ॥

सचमुच ऐसे विरल मुनियों से तेरापंथ धर्मसंघ सुदृढ़, प्रभावक व गौरवान्वित हुआ है।



# तृतीय आचार्य श्रीमद् ऋषिराय (रायचंदजी)

(संवत् १८७८-१९०४)

## जन्म व वंश-परिचय

श्री रायचंदजी स्वामी तेरापंथ के तृतीय आचार्य हुए। उनका साधु अवस्था का उपनाम 'ब्रह्मचारी' व आचार्य अवस्था का उपनाम 'ऋषिराय' है उनका जन्म उदयपुर डिवीजन (मेवाड़) के गोगुन्दा उपखण्ड में 'बड़ी रावलियों' ग्राम में संवत् १८४७ में शाह चतुरोजी व उनकी धर्मपत्नी कुशालोजी के घर हुआ। वे ओसवाल जाति में बम्ब गोत्र में पैदा हुए। आपके मामा मुनि खेतसीजी, जो नाथद्वारा के थे, ने संवत् १८३८ में स्वामीजी के पास दीक्षा ग्रहण की। उनकी प्रेरणा से रायचंदजी व उनके माता-पिता को तेरापंथ के संस्कार प्राप्त हुए। आपकी मौसी रूपोंजी का विवाह रावलियों में हुआ था। विवाहित होने के बाद उनके हृदय में वैराग्य जागृत हुआ। उन्होंने दीक्षा की अनुमति मांगी जिस पर उन्हें नानाविध कष्ट दिए गए व आखिर खोड़े (लकड़ी का ऐसा उपकरण, जिसमें कीले लगाकर पैर बन्द कर दिए जाते थे) में उनके पैर डाल दिए गए। इसी अवस्था में २१ दिन निकल गए। बाईसवें दिन खोड़ा स्वतः टूट गया। वे बंधनमुक्त हो गईं। इस चमत्कार से प्रभावित होकर उनके पति ने दीक्षा की आज्ञा दी व संवत् १८४८ में उन्होंने स्वामीजी के पास दीक्षा ली। वे प्रख्यात साधिका हुईं। उनके प्रभाव से भी आपके परिवार में विशेष धर्म-जागरण हुआ।

## दीक्षा एवं युवाचार्य पद

संवत् १८५५-५६ में तेरापंथ धर्मसंघ की विदुषी व शील-संपन्न साध्वी बरजूजी रावलियों पधारीं। उन्होंने रायचंदजी व उनकी माताजी को दीक्षा की प्रेरणा दी, जिसके फलस्वरूप संवत् १८५७ के चैत सुदी १५ को स्वामीजी ने मां-पुत्र दोनों को दीक्षित किया। आपके दीक्षित होने के बाद तेरापंथ में विशेष वृद्धि हुई, एक वर्ष में पांच बहनों ने पति छोड़कर दीक्षा ली व अढ़ाई वर्ष में ८ साधु व ७ साध्वियों ने संयम ग्रहण किया। आपकी प्रतिभा देखकर स्वामीजी ने कहा था कि

यह बालक आचार्य पद के योग्य प्रतीत होता है' और यह भविष्यवाणी सत्य प्रमाणित हुई। आपकी प्रकृति सरल व गुरु के प्रति अनन्य भक्ति भाव से ओत-प्रोत थी। आपके चेहरे पर एक अनुपम आभा प्रकट होती थी व स्वामीजी आपके ओजस्वी मुखमण्डल को देखकर, आपको 'ब्रह्मचारी' कहकर पुकारते थे।

स्वामीजी के अन्तिम दिनों में उन्हें इस बाल-मुनि को उनके प्रति किसी प्रकार का मोह न रखने की शिक्षा दी व उनके द्वारा स्वामीजी के शरीर दौर्बल्य का संकेत देने पर स्वामीजी ने आमरण अनशन कर दिया। आप स्वामीजी के साथ ढाई वर्ष व भारीमालजी के साथ १८ वर्ष रहे। दोनों आचार्यों की सतत सेवा, परिचर्या व सहयोग किया। संवत् १८६६ में भारीमालजी स्वामी का जयपुर चातुर्मास में, वहाँ उन्होंने मुनि स्वरूपचंदजी को स्वयं दीक्षित किया, पर मुनि जीतमलजी को दीक्षा देने, आपको यह कहकर भेजा, 'मेरे पीछे तो भार संभालने वाले तुम हो, तुम्हें अपने उत्तराधिकारी की आवश्यकता है, सौ तुम उसे दीक्षित करो।' वर्षों पूर्व कही बात दोनों महापुरुषों के लिए वरदान प्रमाणित हुई। संवत् १८७७ में नाथद्वारा चातुर्मास सम्पन्न कर आचार्य भारीमालजी राजनगर आए व अस्वस्थ हो गए। वहीं पर मुनि हेमराजजी ने उदयपुर चातुर्मास सम्पन्न कर व गोगुन्दा में मुनि सतीदासजी को दीक्षित कर उनके दर्शन किए। मुनिश्री खेतसीजी व मुनिश्री हेमराजजी की सहमति व निवेदन पर आचार्यश्री भारीमालजी ने संवत् १८७७ के बैसाख वदि ६ को केलवा में श्री रायचंदजी स्वामी को युवराज पद प्रदान किया। पहले नियुक्ति-पत्र में उन्होंने खेतसीजी का भी नाम लिखा था, पर दो नामों की परम्परा उचित न होने से बाल-मुनि जीतमलजी के निवेदन पर स्वयं खेतसीजी के आग्रह पर केवल रायचंदजी का नाम ही नियुक्ति-पत्र में रखा गया। भारीमालजी स्वामी का स्वर्ग-प्रयाण संवत् १८७८ के माघ वदि ८ को राजनगर में हुआ। दूसरे दिन आपका पट्टाभिषेक हुआ, जिसके लिए वे सर्वथा योग्य थे। ज्योतिष के हिसाब से माघ महीने की नवमी निषेध तिथि (मेवाड़ी भाषा में 'नखेद तिथि') होने पर भी आपने 'नखेद' को 'खेद-रहित' के रूप में स्वीकार कर शासन-भार संभाला। सचमुच आपका शासनकाल तेरापंथ धर्मसंघ के लिए उत्तरोत्तर प्रगतिकारक व वर्द्धमान रहा।

### धर्म-प्रचार

संवत् १९७६ का चातुर्मास पाली व संवत् १८८० का चातुर्मास आपने जयपुर में किया। जयपुर में धर्म का अच्छा प्रचार हुआ, हजारों लोगों ने दर्शन किए। वहाँ सैकड़ों लोग श्रद्धालु बने व मुनि वर्द्धमानजी ने ४३ दिन की कठोर तपस्या की, जिसका व्यापक प्रभाव पड़ा। आपके शासनकाल में सं० १८८३ में सर्वप्रथम तीन मुनियों ने छः मासी तप किए—मुनि पीथलजी ने कांकरोली में,

४६ हे प्रभो ! तेरापंथ

मुनि हीरजी ने राजनगर में व मुनि वर्द्धमानजी ने केलवा में किए। सं० १८८३ में उदयपुर चातुर्मास के पश्चात् आप ५४ साधु-साधिवियों सहित (जिनमें मुनि जीतमलजी भी थे) मालवा प्रदेश पधारे व खाचरोद, उज्जैन, नोलाई, रतलाम, झाबुआ आदि क्षेत्रों में अध्यात्म की अपूर्व लहर पैदा की। सं० १८८४ में ६ साधुओं के साथ पेटलावद चातुर्मास किया। आचार्यों का राजस्थान के बाहर यह प्रथम चातुर्मास था।

### थली प्रदेश में प्रवेश

संवत् १८८६ में आपका चातुर्मास पाली था। वहां बीदासर के शोभाचंदजी बैंगानी (प्रथम) व उत्तमचन्दजी, पृथ्वीराजजी, पंचाणदासजी प्रभृति प्रमुख व्यक्ति व्यापारार्थ आए व आपसे संपर्क किया। बीदासर में यति के शिथिलाचार व पाखण्ड से परेशान होकर व उनसे अनबन के कारण वे सही मार्ग की खोज में थे। आपके दर्शन व वार्तालाप से वे अत्यन्त प्रभावित हुए व स्थली प्रदेश (बीकानेर डिवीजन—चूरू संभाग) में पधारने का निवेदन किया। अपरिचित व दूर स्थान होने से आपने वहां की जानकारी हेतु ईशरजी आदि दो संतों को भेजा, जिन्होंने वहां का भ्रमण करने के बाद वापस आकर निवेदन किया, “स्थली प्रदेश के लोगों में अच्छा संगठन, सरल प्रकृति व रहन-सहन में सादगी है। उनका प्रमुख व्यवसाय कृषि है। वे मोटा खाते, मोटा पहनते और सारा काम स्वयं करते हैं। भावुक व जिज्ञासु हैं, अतः वहां धर्म-जागृति की अच्छी संभावना है।” श्रीमद् ऋषिराय वहां के संगठन, सरलता व सादगी की बात सुनकर प्रभावित हुए व सं० १८८६ के शेषकाल में स्थली प्रदेश पधारे। लाडनू, बीदासर, रतनगढ़ होते आप चूरू तक पधारे व वहां २२ दिन बिराजे, फिर आपने संवत् १८८७ का चातुर्मास बीदासर किया व मुनि जीतमलजी का चूरू, मुनि स्वरूपचंदजी का रीणी, मुनि ईशरजी का रतनगढ़ तथा कई साधिवियों के अन्यान्य क्षेत्रों में चातुर्मास कराए। सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रचार हुआ व धर्म-भावना व संघ के प्रति आकर्षण बना। श्रीमद् ऋषिराय ने बीदासर में पंचायती भवन के पास बाजार में दूकानों की छत पर जिस मेड़ी में चातुर्मास किया, वह आज भी विद्यमान है, पर उस मेड़ी की हालत देखकर यह अंदाज लगाया जा सकता है कि हमारे पूर्व आचार्यों ने कितने कष्ट झेलकर धर्म की लौ जगाए रखी है। आज तो उस मेड़ी में सामान्य व्यक्ति भी खड़ा नहीं रह सकता। थली में इस तरह विधिवत् तेरापंथ का बीजारोपण श्रीमद् ऋषिराय ने किया और शनैः शनैः वही तेरापंथ का प्रमुख व प्रभावशाली क्षेत्र बन गया। अकेले बीदासर को ही तेरापंथ के आचार्यों के

१. शासन समुद्र, भाग १ ख, पृ० २१० के आधार पर विश्लेषण।

सर्वाधिक चातुर्मास व मर्यादा महोत्सव मिलने का श्रेय प्राप्त है। अनेक कस्बों और गांवों में हजारों तेरापंथी परिवार रहते हैं, और अन्य किसी सम्प्रदाय का अस्तित्व तक नहीं है। अब तक थली प्रदेश के ही सर्वाधिक साधु-साधवी दीक्षित हुए हैं। संख्या व क्षमता की दृष्टि से श्रावकों का स्थान भी सर्वोपरि है। इस तरह विस्तार का यह नया क्षेत्र श्रीमद् ऋषिराय के समय उद्घाटित हुआ व शीर्षस्थ बन गया।

संवत् १८८९ में श्रीमद् ऋषिराय ने गुजरात, सौराष्ट्र व कच्छ की प्रलंब यात्रा की। मुनि जीतमलजी आपके साथ थे। यात्रा बहुत आह्लादकारी व अपूर्व रही। आचार्यों का गुजरात-प्रवास का भी यह प्रथम अवसर था। इस तरह क्षेत्रीय विकास की नई परम्परा बनी।

### युवाचार्य-मनोनयन

श्रीमद् ऋषिराय सं० १८९४ का चातुर्मास करने नाथद्वारा पधारे, तब मुनि स्वरूपचंदजी साथ थे। बाद में उनका विहार मारवाड़ की ओर हो गया था। पीछे मुनि अमीचंदजी ने दुर्भाविनावश आचार्यप्रवर का साथ छोड़ दिया और श्रीमद् ऋषिराय बिलकुल अकेले रह गये। तेरापंथ के इतिहास में आचार्य के अकेले रहने का यह प्रथम व सम्भवतः अंतिम अवसर है। मुनि स्वरूपचंदजी को आवश्यकतावश पुनः बुलाया गया। उन्होंने आचार्यप्रवर को अनुशासन-हीनता को सख्ती से निपटने का निवेदन किया व जीतमलजी का सहयोग लेने की प्रार्थना की।<sup>१</sup> श्रीमद् ऋषिराय मुनि जीतमलजी की प्रखरता व उच्च संयम-साधना से पूर्ण परिचित थे। उन्हें अपने लिए समर्थ सहायक की आवश्यकता थी, अतः आपने सं० १८९४ में चातुर्मास के पूर्व ही श्रीमद् जयाचार्य के नाम, युवाचार्य पद का मनोनयन-पत्र लिखकर स्वरूपचंदजी स्वामी को दिया और मुनि जीतमलजी का चातुर्मास सुदूर क्षेत्र फलौदी होने से, इस बात को प्रकट नहीं किया। चातुर्मास के बाद दो सन्तों को पत्र देकर उन्होंने मुनि जीतमलजी को बुलाया और जब वे आए तब नाथद्वारा में ही उन्हें युवराज घोषित किया व इस तरह संघ-व्यवस्था, अनुशासन एवं धर्म-प्रचार की भावी दिशा से वे निश्चित हो गए।

### स्वर्ग-प्रयाण

संवत् १९०८ में उदयपुर चातुर्मास की परिसमाप्ति पर वे गोगुन्दा, बड़ी-छोटी रावलियों, नादेसमा होते हुए माघ वदि १२ को पुनः छोटी रावलियों में

१. शासन समुद्र, भाग १ ख, पृ० २९५ व शासन समुद्र, भाग २ क, पृ० ७६-७७ के आधार पर विवेचन।

पधारे । आपको कुछ समय से श्वास की व्याधि रहती थी पर आप साहसी थे व उसकी परवाह नहीं करते थे । माघ वदि १४ को आपको श्वास की गति तेज होने से भारीपन महसूस हुआ । प्रतिक्रमण करने के थोड़ी देर बाद आप सो गए पर सोते ही शरीर में पसीना-पसीना होने लगा व श्वास की गति तेज हो गई, तब आप पुनः बैठ गए । कुछ सन्त आपकी पीठ को हाथ का सहारा देकर बैठे ही थे कि मृत्यु ने अकाम्यक आप पर आक्रमण कर दिया । कुछ ही क्षणों में आपका शरीर शान्त हो गया । सं० १६०८ माघ कृष्णा चतुर्दशी को लगभग एक मुहूर्त बीत जाने पर वह रात्रि सचमुच कालरात्रि बन गई व जैन जगत् का जगमगाता सूर्य अस्त हो गया ।

### उपलब्धियाँ

आपके शासनकाल में दो सौ पैतालिस—७७ साधु व १६८ साध्वियों की दीक्षाएँ हुईं । आपके आठ चातुर्मास पाली (सं० १८७६, ८२, ८६, ९०, ९३, ९६, १६०२ व ५), चार जयपुर (१८८०, ९२, ९७, १६००,) एक पीपाड़ (१८८१), चार उदयपुर (१८८३, ८६, ९५, १६०८), एक पेटलावद (१८८४), पांच नाथद्वारा (सं० १८८५, ८८, ९४, १६०१, ४), दो बीदासर (१८८७, ९९), एक गोगुंदा (१८९१), एक पुर (१८९४), दो लाडनू (१८९८, १६०६) हुए । आपके समय में मुनि जीतमलजी ने सं० १८८६ का चातुर्मास दिल्ली किया व उनके साथ गुजरात यात्रा कर आप ईडर होते अहमदाबाद तक पहुँचे । आपने कच्छ, सौराष्ट्र व गुजरात की यात्रा के दौरान वहाँ समझे भाइयों के निवेदन पर मुनि श्री कर्मचन्दजी का चातुर्मास बेला व मुनि श्री ईसरजी का चातुर्मास वीरमगाँम कराया । दोनों स्थानों पर अच्छा धर्म-प्रचार हुआ और कच्छ, सौराष्ट्र तेरापंथ के क्षेत्र बन गए । बीदासर, उदयपुर, गोगुंदा व लाडनू में तेरापंथ के आचार्यों का प्रथम चातुर्मास आपने ही किया ।

आपका शासनकाल दीक्षाओं की विविधता व तपस्या की दृष्टि से भी अपूर्व रहा । दीक्षाओं की विशेषताएँ इस प्रकार रहीं—

१. दस कुमारी कन्याओं की दीक्षाएँ ।
२. चार युगल (स्त्री-पुरुष) दीक्षाएँ ।
३. सुहागिन बहनों की चार दीक्षाएँ ।
४. अविवाहित कुमारों की ११ दीक्षाएँ ।
५. पत्नी छोड़ १२ मुनि दीक्षाएँ ।
६. बहन-भाई की दो युगल दीक्षाएँ ।
७. पिता-पुत्र युगल १ दीक्षा ।
८. सारे भाइयों की ३ की एक व दो की एक दीक्षा ।

९. माता व तीन पुत्रों की दीक्षाएं ।
१०. माता-पुत्री ५ युगल दीक्षाएं ।
११. वस्त्राभूषण सहित मुनि हरकचंदजी को मुनि हेमराजजी ने १६०२ में दीक्षा दी ।
१२. आपके समय में दीक्षित मुनि कालूजी ने सप्तमाचार्य डालगणी का चुनाव किया व मुनि मधराजजी पंचमाचार्य बने एवं साध्वी सरदारोंजी प्रथम साध्वी-प्रमुखा व नवलोंजी तीसरी साध्वी-प्रमुखा बनीं ।

### तपस्याएं

तपस्याओं में आपके शासनकाल में मुनिश्री वद्धमानजी, श्री पीथलजी, श्री मोतीजी, श्री दीपजी, श्री कोदरजी व श्री शिवजी ने छः मासी तपस्या की । मुनि हीरजी ने दो छः मासी तप किए ।

आपके जीवन की घटनाओं का विस्तृत एवं प्रामाणिक विवरण श्रीमद् जयाचार्य विरचित प्रबन्ध काव्य 'ऋषिराय मुजश', मुनिश्री बुधमल्लली लिखित 'तेरापंथ का इतिहास', मुनिश्री नवरत्नमलजी द्वारा लिखित 'शासन समुद्र, भाग २' एवं श्रीचन्दजी रामपुरिया द्वारा लिखित 'आचार्य भिक्षु : धर्म परिवार' आदि पुस्तकों में मिलता है ।

संक्षेप में आपका शासनकाल तेरापंथ के विकास की किरणों के विकिरण का प्रारम्भिक काल कहा जा सकता है ।

## प्रमुख शिष्य-शिष्याएं

### १. मुनिश्री कोदरजी

आपका जन्म बड़नगर-निवासी ताराचंदजी बिनायकिया व उनकी धर्मपत्नी मृगादेवी के समृद्ध घराने में हुआ । सं० १८६६ में मुनिश्री वेणीरामजी के बड़नगर पधारने पर आपका परिवार तेरापंथ का अनुयायी बना । संवत् १८७८ में मुनि गुलाबजी व साध्वी अजबूजी के उज्जैन चातुर्मास में आपने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया । संवत् १८८१ में मुनिश्री स्वरूपचन्दजी के उज्जैन चातुर्मास काल में प्रेरणा मिलने पर सं० १८८१ के जेठ वदि २ को आपने कंटालिया में आचार्यप्रवर से दीक्षा प्राप्त की । आप बड़े त्यागी, विरागी, सेवाभावी व उत्कृष्ट कोटि के तपस्वी हुए । आपका शारीरिक संस्थान, संहनन, सुदृढ़ व शक्तिशाली था । संवत् १८९६ श्रावण वदि १ को आप दिवंगत हो

५० हे प्रभो ! तेरापंथ

गये, लगभग १४ वर्ष के दीक्षाकाल में आपने कुल २६६६ दिन यानी लगभग १० वर्ष का समय निराहार तपस्या में बिताया । तपस्या के आंकड़े इस प्रकार हैं—

१/४५१, २/७८१, ३/७६, ४/१७, ५/५, ६/१, ७/२, ८/१, ९/१, १०/१, ११/१, १२/१, १३/१, १४/१, २०/१, २२/१, २५/१, ३०/१, ३२/१, ६०/१, ६४/१, १०१/१, १८१/१

आपने संवत् १८८५ से तीन वर्ष चार माह तक एकान्तर तप, संवत् १८८८ से सात वर्ष तक बेले की तपस्या व संवत् १८९५ से एक वर्ष तक तेले की निरन्तर तपस्या की । शीतकाल में आप वस्त्र नहीं ओढ़ते, आपने औषधि कभी नहीं ली । तपस्या में भी गोचरी अवश्य जाते, विहार करने में आपकी तीव्र गति थी व आप कुशल संदेशवाहक थे । तपस्या में आप अभिग्रह अवश्य करते । मुनि श्री राममुखजी जैसे उत्कट तपस्वी के देवलोक होते ही आपने आमरण अनशन कर लिया व युवाचार्य श्री जीतमलजी के सान्निध्य में संवत् १८९६ सावन वदि १ को स्वर्ग प्रयाण कर गए । 'अभिराशिको' बीज मंत्र में तपस्वी स्मरण व जाप का अन्तिम अक्षर आपके नाम पर है ।

## २. मुनि गुलहजारीजी

मुनि गुलहजारीजी हरियाणा प्रांत में नगुरा के निवासी व जाति से अग्रवाल थे । इनके पिता का नाम रामधनजी व माता का नाम कड़िया बाई था । वे चूरू में नौकरी करते थे, तब सं० १८८६ में श्रीमद् ऋषिराय से वहां सम्पर्क होने पर आप तेरापंथी बने व संवत् १८८७ में वहां चातुर्मास में मुनि जीतमलजी की खूब सेवा की । मुनि जीतमलजी संवत् १८८८ में बीकानेर चातुर्मास संपन्न कर हरियाणा होते हुए दिल्ली पधार रहे थे, तब चूरू में गुलहजारीजी ने आपके पास दीक्षा ली । मुनि जीतमलजी के हाथ से सन्तों की व हरियाणा की यह प्रथम दीक्षा थी । संवत् १८८९ में सात दिन के लिए शंका पड़ने पर गण के बाहर रहे पर फिर जीवन-पर्यन्त दृढ़ रहे । उन्हें तत्त्वज्ञान की बहुत सुक्ष्मता से जानकारी थी । वे बड़े साहसी, पुरुषार्थी व उत्कट तपस्वी थे । उन्होंने अपने हाथ से १९ व्यक्तियों को प्रतिबोध देकर दीक्षित किया । उन्होंने उपवास से ११ तक लड़ीबद्ध तपस्या की । ४२ वर्ष तक सतत एकांतर तप किया व चौदह वर्ष तक पारणे में निर्धारित ११ द्रव्यों के अलावा कुछ नहीं लिया । वे प्रकृति के फक्कड़ व स्पष्टभाषी थे । उनका कहा वचन प्रायः सत्य चरितार्थ हो जाता था । सं० १९३४ के आसोज वदि १२ को चूरू में आप समाधिमरण को प्राप्त हुए ।

### ३. मुनि कालूजी बड़ा

आप मुनिश्री खेतसीजी, हेमराजजी जैसे विरल साधुओं की कोटि में आते हैं, जिन्होंने समय पर अपना सब कुछ न्यौछावर कर संघ को तूफानी थपेड़ों से बचाया। वे मेवाड़ में गांव रेलमगरा के निवासी थे। जाति से सरावगी व गोत्र से छाबड़ा थे। इनके पिता का नाम मानमलजी व माता का नाम वखतूजी था। इनका जन्म सं० १८६६ में हुआ। सं० १९०८ में महासती नवलोजी के रेलमगरा चातुर्मास में आप व आपकी माताजी तत्त्वज्ञान सीख कर संयम साधना के प्रति आकृष्ट हुए व उसी वर्ष मगसिर वदि ८ को आचार्यवर की आज्ञा से मुनि भवानजी ने आपको व आपकी माताजी को दीक्षित किया। दो माह बाद ही श्रीमद् जयाचार्य पदासीन हो गए व उन्होंने आपको मुनि स्वरूपचन्दजी के साथ दे दिया। आपका कद दुबला-पतला, नाटा था व वर्ण श्याम था पर चेहरे पर ऐसी दिव्य कान्ति थी कि उसमें आपका विराट् व्यक्तित्व बरबस प्रकट हो जाता। आप सत्रह वर्ष तक स्वरूपचंदजी स्वामी के साथ रहे व तन्मय होकर उनकी जीवन-पर्यन्त सेवा की। आपने उनसे सारे आगमों का वाचन कर अर्थ व रहस्य समझे, उनके सं० १९२५ में दिवंगत होने पर चार वर्ष आप श्रीमद् जयाचार्य के साथ रहे व वहां शासन-व्यवस्था व मर्यादा-पालन के अनुभव प्राप्त किए। सं० १९२६ में आपने श्रीमद् जयाचार्य की आंख में मोतियाबिंद का अत्यन्त कुशलता से ऑपरेशन किया, उसी वर्ष आपको अग्रगण्य बना दिया गया व आपको कई प्रकार से श्रीमद् जयाचार्य ने बख्शीशें देकर सम्मानित किया। सं० १९३७ में सरदारशहर चातुर्मास में आपने अत्यन्त कठोर श्रम करके एक साथ सैकड़ों लोगों को संघ के प्रति श्रद्धाशील बनाया। तेरापंथ की राजधानी सरदारशहर के वर्तमान स्वरूप का प्रारम्भ करने का श्रेय आपको ही है। रास्ते में घंटों खड़े रहकर आपने अनिच्छुक श्री जेठमलजी गधैया से धर्म-चर्चा की व गुरु-धारणा कराई। इस तरह चार-पांच पीढ़ी से संघ की अविचल व निष्काम सेवा में लगे हुए गधैया परिवार में सम्यक्त्व का बीज-वपन आपके हाथों हुआ। आप आचार्यों की आज्ञा से अधिक उनके संकेत तक को सर्वोपरि मानते थे, अतः एक बार घोषित चातुर्मास फतहपुर छोड़कर संघ के बहिर्भूत साधु छोड़गी चतुरभुजजी के मिथ्या प्रचार का निराकरण करने हेतु आपने सरदारशहर चातुर्मास किया व स्वयं जयाचार्य ने इसकी सराहना की। आपने तेरापंथ के इतिहास को सुरक्षित रखने हेतु इतिहास (ख्यात) लिखना प्रारम्भ किया। संवत् १९४३ तक का प्रामाणिक इतिहास लिखा। इतिहास लिखने की वह परम्परा अब तक चालू है। आपने हजारों व्यक्तियों को प्रतिबोध दिया व दो बहनों को दीक्षा दी। मधवा गणि व माणक गणि ने आपको बहुत सम्मान दिया व आपके विहार के समय वे



अगवानी करते ।

संवत् १९५४ में श्रीमद् माणक गणि का कार्तिक में अकस्मात् देहावसान हो गया । वे अपने उत्तराधिकारी का मनोनयन नहीं कर सके । संघ के सम्मुख अनायास कसौटी की एक घड़ी आ गई । मुनिश्री का चातुर्मास उस वर्ष उदयपुर था । आप पौष वदि ३ को लाडनू पहुंचे, जहां लगभग सारा संघ आपकी प्रतीक्षा कर रहा था । सारे संघ ने आप में अटूट विश्वास प्रकट कर आपसे संघ का आचार्य घोषित करने का भाव भरा निवेदन किया । आप पर एक बहुत बड़ी जिम्मेवारी आ गई और आपने अन्य सारी बातों को गौण कर संघ, संगठन व अनुशासन के हित की दृष्टि से मुनिश्री डालचंदजी का नाम सप्तमाचार्य के लिए घोषित किया । सारे संघ में हर्ष छा गया । युग-युग तक इतिहास इस बात का साक्षी रहेगा कि आपने कितना सही व समुचित चुनाव किया । एकमात्र यही घटना तेरापंथ के इतिहास में आपको अजर-अमर बना देने के लिए पर्याप्त है । संवत् १९५८ के द्वितीय श्रावण वदि ३ को छापर चातुर्मास में अनशन कर मुनिश्री ने समाधिपूर्वक स्वर्ग प्रस्थान कर दिया । संघ और संघपति के प्रति अविचल भाव से समर्पित व्यक्तित्व संघ के गौरव में अभिवृद्धि करके सदा के लिए शान्त हो गया । युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी ने जयाचार्य निर्वाण शताब्दी पर आपको 'शासन स्तम्भ' घोषित किया ।

४. पंचमाचार्य मघराजजी का वर्णन आगे के पृष्ठों में दिया जायेगा ।

#### ५. महासती सरदारोंजी (साध्वीप्रमुखा)

सरदार सती का जन्म चुरू के धनाढ्य सेठ जेतरूपजी कोठारी व उनकी पत्नी चंदनादेवी के घर संवत् १८६५ के आसोज में हुआ । उनका विवाह मात्र दस वर्ष की अवस्था में फलीदी के सम्पन्न सेठ सुल्तानमलजी ढड्डा के पुत्र जोरावरमलजी के साथ हुआ पर पांच माह बाद ही आपको पति-बियोग हो गया और वे प्रारम्भ से बाल-ब्रह्मचारिणी रहीं । सरदार सती के पीहर में तेरापंथ से बहिर्भूत चन्द्रभाणजी तिलोकजी की मान्यता थी, पर संवत् १८८६ में श्रीमद् ऋषिराय के पदार्पण व संवत् १८८७ में मुनि जीतमलजी के चुरू चातुर्मास में वे तेरापंथ की ओर आकृष्ट हुए व सरदार सती ने भी गुरु धारणा की । संवत् १८७८ से ही सरदार सती ने उत्कृष्ट तप व त्याग से भावित जीवन बिताना प्रारम्भ किया, आपने ससुराल वालों से दीक्षा की अनुमति चाही पर वे इनकार हो गए । आपको नानाविध कष्ट दिए गए, पर आपने भी इतने दृढ़ संकल्प का परिचय दिया कि अन्ततः वे सहमत हो गए । वर्षों तक दिये गए उन कष्टों की कहानी स्वयं में रोमांचित करने वाली है । संवत् १८९७ मगसिर वदि ४ को आपकी दीक्षा

उदयपुर में युवाचार्यश्री जीतमलजी के हाथों बड़े ठाट-बाट से हुई। आपकी दीक्षा विशेष शुभ और मांगलिक मानी जाती है। आपको उसी वर्ष आचार्यप्रवर ने अग्रगण्य बना दिया। संवत् १९१० से जीवन-पर्यन्त आप श्रीमद् जयाचार्य के साथ ही रहें। उसी वर्ष जयाचार्य ने साध्वीप्रमुखा का पद निर्मित कर आपको उस पद पर नियुक्त किया, साध्वियों की व्यवस्था की जिम्मेदारी सौंपी। संवत् १९०८ में श्रीमद् जयाचार्य ने संघ के साधु-साध्वियों के पास प्राप्त पुस्तकों का संघीकरण किया। संवत् १९१४ में साध्वियों के सिंघाड़े समर्पित हुए। संवत् १९२६ में संघ की सारी साध्वियों को अलग-अलग सुविधाजनक दलों में बांटा। इन सब कार्यों में सरदार सती का बहुत बड़ा सहयोग रहा। पहले किसी दल में अधिक तो किसी में बिलकुल कम साधवियां रह जातीं। जो जिसे दीक्षा देती या प्रेरणा देती, वही उस साध्वी को अपने पास रख लेती। इस परंपरा में अपेक्षित परिवर्तन कर दिया गया। इस प्रकार कई नये दल साध्वियों के बन गए। प्रचार की सुविधा हो गई। आप प्रतिदिन सायंकाल साध्वियों व श्रावक-श्राविकाओं को आत्महित की शिक्षाएं देती रहतीं। उनमें संघ-निष्ठा व विनय-निष्ठा के गहरे संस्कार भरती रहतीं। साधु-साध्वियों की सेवा में आप सदा उदार बनकर कार्य करतीं। संवत् १९२७ में पौष शुक्ला ८ को श्रीमद् जयाचार्य के सान्निध्य में बीदासर में आपका अनशन-सहित स्वर्गवास हुआ। महासती सरदारोजी को श्रीमद् जयाचार्य ने प्रतिबोध दिया, ज्ञानार्जन करवाया, मार्गदर्शन दिया, दीक्षा दी, साध्वीप्रमुखा बनाया। पंडित-मरण में सहयोग दिया। वे जो कुछ थीं, जयाचार्य की ही कृति थीं। उन्होंने अपना सब कुछ संघ के लिए न्यौछावर कर दिया। साध्वियों के विकेन्द्रीकरण, पुस्तकों व उपकरणों के संघीकरण में श्रीमद् जयाचार्य के साथ उनका नाम भी इतिहास में अविस्मरणीय रहेगा।

#### ६. महासती नवलोजी

आपका जन्म संवत् १८८५ में मारवाड़ में 'रामसिंहजी का गुड़ा' ग्राम में कुशलचन्दजी गोलेच्छा के घर हुआ। आपकी माता का नाम चन्दना देवी था। आपका विवाह पाली के अनोपचन्दजी बाफणा के साथ हुआ, पर संवत् १९०२ में आपको पति-वियोग हो गया। संवत् १९०४ में आपने चैत्र शुक्ला-३ को आचार्यश्री रायचन्दजी के पास दीक्षा ली। आपने सरदार सती की तरह स्वयं ही केश-लुंचन किया। आप अपने महाव्रत व नियम-पालन में अत्यन्त सजग, संघ के प्रति निष्ठावान, शास्त्रों की गम्भीर अध्येता व मधुर व्याख्यानी थीं। संवत् १९०७ में आप अग्रगण्य बन गईं। संवत् १९१४ में आपने सर्वप्रथम अपना सिंघाड़ा श्रीमद् जयाचार्य को समर्पित किया। फिर तेरह वर्ष तक आप श्रीमद् जयाचार्य के साथ रहें। १९२८ में उन्हें पुनः अग्रगण्य बना दिया गया। उन्होंने तीन साध्वियों को

५४ हे प्रभो ! तेरापथ

दीक्षित किया । संवत् १९४२ में जोधपुर में साध्वीप्रमुखा गुलाब सती के स्वर्गवास पर श्री मधवा गणी ने आपको साध्वी-समाज का प्रमुख पद दिया । आप बारह वर्ष तक इस पद पर रहीं । आपने तीन आचार्यों की सेवा करने का अवसर पाया । आपमें समता, सहनशीलता, उद्योग-परायणता, स्वाध्याय-रुचि आदि विशेषताएं कूट-कूटकर भरी थीं । आपका गुरु-दृष्टि का सर्वांग-आराधन बेजोड़ था । आपका स्वर्गवास संवत् १९५४ के आसाढ वदि ५ को बीदासर में अत्यन्त चित्त-समाधि-पूर्वक हुआ । अष्टमाचार्य कालूगणीजी की माता साध्वी छोगोजी तथा मौसेरी बहन कानकुंवरजी दीक्षा लेने के बाद संवत् १९५४ तक आपके पास ही रहीं और आपकी शिक्षाओं ने ही उन्हें संघ में गौरव प्रदान कराया ।

# तेरापंथ का निर्माण व युवाकाल में प्रवेश

## चतुर्थ आचार्य श्रीमद् जयाचार्य

(संवत् १६०८ से १६३८)

### जन्म एवं वंश-परिचय

श्रीमद् जयाचार्य का जन्म संवत् १८६० की आसोज सुदि १४ को जोधपुर डिवीजन (मारवाड़) के पाली जिले में रोयट गांव में हुआ था। आपके पिता का नाम आईदानजी गोलछा व माता का नाम कल्लूजी था। बचपन में आपका नाम जीतमल रखा गया।

आचार्य भिक्षु जैन जगत् के साक्षात् सूर्य थे। वे संवत् १८६० के भादवा सुदि १३ को स्वर्गवासी हुए। उसके ठीक एक माह बाद आपका जन्म हुआ और लगा मानो एक सूर्य के अस्त होने पर दूसरे सूर्य का उदय हुआ हो। आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ को जन्म दिया। बीजारोपण कर उसका पौधा लहलहाया तो आपने तेरापंथ को निश्चित आकार देकर निर्माण किया। पौधे को साज-सँवार कर सुन्दर वृक्ष बनाया। आचार्य भिक्षु ने जिस संघ की नींव डाली, उसे आपने भव्यता प्रदान की। आचार्य भिक्षु विशिष्ट मान्यताओं के सूत्रकार थे तो आप उसके प्रशस्त भाष्यकार या व्याख्याकार हुए। आचार्य भिक्षु की अध्यात्म की साक्षात् अनुभूति को आपने प्रखर अभिव्यक्ति दी। तेरापंथ धर्म-संघ का वर्तमान स्वरूप श्रीमद् जयाचार्य की ही श्रम-निष्ठा, बुद्धि-कौशल एवं दूरदर्शिता का परिणाम है। श्रीमद् जयाचार्य ने इस बात पर हर्ष प्रकट किया कि आचार्य भिक्षु द्वारा सत्यक्रांति की धारा प्रवाहित करने के बाद उनका जन्म हुआ। उन्हें सत्य का सहज साक्षात् हो गया। आप जब गर्भ में थे, तब स्वामीजी का विहरण पाली जिले में ही हुआ। स्वामीजी की अन्तिम अवस्था का आपने जो सजीव चित्रण प्रत्यक्षदर्शी की तरह किया है, उससे यह संभावना बनती है कि आपने अवश्य अपनी गर्भावस्था में स्वामीजी के साक्षात् दर्शन किए होंगे। उनकी अमृतवाणी का अपनी माता के माध्यम से प्रसाद पाया होगा।<sup>1</sup> आपका शरीर कृश, अंग-प्रत्यंग सुदृढ़ व वर्ण श्याम

१. जयाचार्य की रचनाओं के आधार पर मेरा अपना अभिमत।

था। आपकी नस-नस में ओज व मधुरता भरी थी, जिससे आप सबको अत्यन्त वल्लभ लगते थे। आपका विशाल, प्रशस्त, तेजस्वी ललाट आपकी होनहारिता का सूचक था। आपकी प्रखर बुद्धि एवं शान्तवृत्ति आदि सद्गुणों का पुंज आपके जन्म-जन्मान्तर से संचित शुभ संस्कारों का ही परिणाम था।

### संस्कार एवं दीक्षा

स्वामी भीखणजी एक बार रोयट पधारे, तब आपका परिवार श्रद्धालु बना। संवत् १८४४ में आपकी बुआ अजबूजी ने स्वामीजी के पास दीक्षा ग्रहण की। बाद में अग्रगण्य बन गईं। आपके परिवार की अध्यात्म-साधना के लिए यह शुभ श्रीगणेश था। एक बार अजबूजी विहार करती रोयट पधारीं। उन दिनों शैशव अवस्था में आप इतने रोगग्रस्त हो गए कि आपके जीने की आशा छोड़ दी गई। सती अजबूजी जब आपकी माता को दर्शन देने आयीं तो कल्लूजी की आंखें दुःख से डबडबा गईं। सतीजी ने बालक की आकृति देखकर उन्हें आश्वासित किया, साथ में कल्लूजी को यह संकल्प भी करवाया कि बालक रोगमुक्त हो जाए, दीक्षा लेने की भावना हो तो उसमें बाधक न बनें, सुगमता से स्वीकृति दें। कल्लूजी, जो बच्चे के प्राण रहने तक की आशा छोड़ चुकी थीं, ने इसे सहज भाव से स्वीकार कर लिया। संयोग से बालक धीरे-धीरे रोगमुक्त होकर बिलकुल स्वस्थ हो गया। कहना चाहिए कि तेरापंथ धर्मसंघ के भाग्य से ही आपका जीवन अक्षुण्ण रहा। आप तेरापंथ के लिए ही जीवित रहे।

बचपन से ही पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण आप में गहन अध्यात्म-भावना थी। जब आप सात-आठ वर्ष के हुए, तभी से दीक्षा लेने के लिए लालायित रहने लगे व प्रतीक्षा करने लगे। कभी-कभी किसी वस्त्र की झोली बनाकर उसमें कटोरी रखकर सगे-सम्बन्धियों के यहां भिक्षा लेने जाने का अभिनय करते। उनसे कहते कि उसने दीक्षा ले ली है। कुछ समय बाद परिवारवालों ने आपकी सगाई कर दी। आपके बड़े भाई स्वरूपचन्दजी व भीमजी की भी सगाइयां हो चुकी थीं। उन दिनों अबोध उम्र में ही सगाइयां हो जाती थीं। प्रायः छोटी अवस्था में ही विवाह हो जाते थे। आप केवल तीन वर्ष के थे, तब मीरखां डाकू के दल ने रोयट में डाका डाला। उसके आघात से आपके पिता की मृत्यु हो गई। कल्लूजी असहाय हो गईं, पर उस स्थिति का उन्होंने धैर्य से मुकाबला किया। वे अपने तीनों बच्चों को लेकर किशनगढ़ चली गईं, जहां स्वरूपचन्दजी ने व्यापार प्रारम्भ कर भरण-पोषण का प्रबन्ध किया। जयपुर पधारते श्रीमद् भारीमालजी स्वामी का उन्हीं दिनों किशनगढ़ आना हुआ। कल्लूजी एवं उनके पुत्रों को अपने गुरुदेव के दर्शन,

१. जयाचार्य की रचनाओं के आधार पर मेरा अपना अभिमत।

सेवा, शास्त्र-श्रवण का अनायास लाभ मिल गया। पूरे परिवार के लिए यह समागम वरदान बन गया।

भारीमालजी स्वामीजी ने संवत् १८६९ का चातुर्मास जयपुर में लाला हरचन्दलालजी जौहरी के मकान में किया। चातुर्मास में कल्लूजी अपने तीनों पुत्रों सहित दर्शन-सेवार्थ जयपुर गईं। श्रीमद् जयाचार्य ने उस समय जैन तत्त्वज्ञान (पच्चीस बोल, तेरह द्वार, चर्चा) कंठस्थ कर लिया। अध्यात्म-साधना में रुचि लेने लगे। लाला हरचन्दलालजी आपकी असाधारण प्रतिभा व अध्यात्म-लीनता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने श्री कल्लूजी को कहा, “तुम्हारे छोटे पुत्र की प्रकृति व आकृति से लगता है कि वह दीक्षित होकर महान् तेजस्वी साधु होगा। इसमें मैं बाधक बनना नहीं चाहता पर यदि यह दीक्षा न ले, तो मैं अपनी भतीजी से इसका सम्बन्ध करना चाहूंगा। मेरे परम मित्र बहादुरसिंहजी के गोद देना चाहूंगा। उनके पास पचास हजार रुपये की नकद संपत्ति है, बाद में यह उस सम्पत्ति का स्वामी हो जायेगा।” श्रीमद् जयाचार्य भला ऐसे बड़े लोभ में भी कैसे फंस सकते थे? वे दीक्षा के लिए तैयार हो गये। महासती अजबूजी भी चातुर्मास के बाद वहाँ पधार गईं। उन्होंने स्वरूपचन्दजी आदि को प्रेरित किया। सारा परिवार विरक्त बन गया। सबसे पहले स्वरूपचन्दजी दीक्षित हुए, बाद में जीतमलजी का दीक्षा संस्कार श्रीमद् ऋषिराय द्वारा किया गया, जो शुभ भविष्य का सूचक था। आचार्य महाराज ने तो उसी समय भविष्यवाणी कर दी थी कि ऋषिराय का शासन-भार जीतमल को संभालना है, अतः वे ही उसे दीक्षित करें। बाद में भीमराजजी व कल्लूजी ने भी दीक्षा ले ली। इस तरह लगभग दो माह में तीन पुत्रों सहित माता ने दीक्षा ले ली। दीक्षा के बाद आचार्यप्रवर ने जीतमलजी व उनके अग्रजों को मुनिश्री हेमराजजी को सौंप दिया।

### सक्रिय शिक्षण

दीक्षा के समय आपकी अवस्था मात्र नौ वर्ष की थी। मुनिश्री हेमराजजी जैसे कुशल संरक्षक व अनुपमेय मार्गदर्शक ने ही प्रारम्भ से आप में ज्ञान, दर्शन, चरित्र के गहरे संस्कार भर दिए। स्वामीजी से प्राप्त अपनी समस्त ज्ञान, दर्शन, चरित्र ऊर्जा को शनैः-शनैः आप में उड़ेल दिया। इस तरह वे लगातार बारह वर्ष तक स्वामीजी की शक्ति को जीतमलजी (जयाचार्य) में प्रवाहित करने के लिए सेतु बन गये। ऐसा लगा मानो जीतमलजी के रूप में भिक्षु स्वामी का पुनः अवतरण हो गया है।

मन, वचन, शरीर की शक्तियों को स्थिर करने का प्रयास आपने बचपन से ही प्रारम्भ कर दिया। जब आप मात्र पन्द्रह वर्ष के थे, तब मुनि हेमराजजी संवत् १८७५ में पाली पधारे व बाजार में बिराजे। उन दिनों वहाँ नट मण्डली

आयी हुई थी। उसने बाजार में बांस रोपकर खेल प्रारम्भ किया। नगर की सारी जनता खेल देखने उमड़ पड़ी। इधर जयाचार्य दूकान में बैठे लेखनकार्य करते रहे। नाटक बिलकुल सामने होते रहने पर भी श्रीमद् जयाचार्य ने दो-तीन घंटों तक उस ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा। भीड़ में एक वृद्ध सम्भ्रांत व्यक्ति, जो तेरापंथ से द्वेष रखता था, की दृष्टि आप पर पड़ गई और नाटक की बजाय वह अपलक आपको ही निहारता रहा। एक बालक नाटक की ओर दृष्टि ही न डाले, यह उसके लिए आश्चर्य का विषय था। नाटक समाप्त हुआ। उसने अपने साथियों व सगे-सम्बन्धियों को इस घटना की जानकारी दी। कहा, “जिस संघ में ऐसा सजग व स्थिर योगी बाल-साधु है, उस संघ को आगामी सौ वर्ष तक भी कोई हिला न सकेगा।” तेरापंथ की आचारशीलता व मर्यादाओं को अक्षुण्ण रखने में आप सदा सजग रहे। जब भारीमालजी स्वामी ने युवाचार्य-नियुक्ति-पत्र में ‘खेतसी तथा रायचन्द’ दो नाम लिखे, तब मात्र अठारह वर्ष के होने पर भी, आपने उनसे निवेदन किया कि ऐसी परम्परा का सूत्रपात भविष्य के लिए उचित नहीं रहेगा, अतः वे चाहे जिस एक व्यक्ति की ही नियुक्ति करें।

आचार्यप्रवर को यह बात ठीक लगी और उन्होंने खेतसीजी का नाम काट दिया। जयाचार्य की दूरदर्शिता ने सदा-सदा के लिए सही परम्परा कायम करा दी। जब श्रीमद् ऋषिराय आचार्य बने, तब मुनि हेमराजजी उनसे दीक्षा में बड़े थे। वे उनका अत्यधिक सम्मान करते थे। मुनि हेमराजजी पहली बार आचार्य महाराज के पास आये तो सायंकालीन प्रतिक्रमण के बाद उन्होंने अपनी आलोचना स्वयं कर ली। उस समय तक आलोचना गुरु के समक्ष लेने की परंपरा बनी नहीं थी। ऋषिराय ने आचार्यत्व के महत्त्व को बढ़ाने हेतु परंपरा प्रारम्भ करनी चाही, पर वे हेमराजजी को, उनके प्रति पूज्य भाव होने से, कहने में संकोच करते थे। तब उन्होंने जीतमलजी को बुलाकर निर्देश दिया, “जब तक मुनि हेमराजजी आचार्य के पास आकर आलोचना न लें, तब तक तुम्हें अन्न-पानी का त्याग है।” बड़ी विचित्र स्थिति थी, आचार्य स्वयं न कहकर एक बाल-मुनि व हेमराजजी द्वारा ही संस्कारित शिष्य से, अपनी बात कहलवाना चाहते थे। पर उन्हें आपकी योग्यता पर विश्वास था, जो सही प्रमाणित हुआ। आपने मुनिश्री हेमराजजी को अत्यन्त विनम्रता से आचार्य महाराज के पास आलोचना लेकर एक सुन्दर परम्परा प्रारम्भ करने का निवेदन किया। मुनिश्री हेमराजजी के मन में कोई दुर्भाव तो था नहीं। वैसे भी वे एक महान् भावितात्मा थे। वे आचार्यप्रवर के पास आए व आलोचना ली। श्रीमद् जयाचार्य की विलक्षण योग्यता से तेरापंथ धर्मसंघ में आचार्य का सम्मान रखने की एक नई सुन्दर परम्परा प्रारम्भ हो गई।

आप मुनिश्री हेमराजजी के साथ (१८६९-१८८१) बारह वर्ष रहे। विनय, विवेक और विचारशक्ति से आपने इन वर्षों में मुनिश्री से प्रवचन कला, तत्त्व-

चर्चा व आगमों के सूक्ष्म रहस्य—सभी विषयों में पारंगतता प्राप्त की। आपकी मेधा व स्फुरणा इतनी प्रबल थी कि ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही, संवत् १८७१ में, आपने 'संत गुणमाला' गीतिका की रचना की। संवत् १८८१ में मुनिश्री हेमराजजी ने जयपुर चातुर्मास किया। आगमों की टीकाएं संस्कृत में होने के कारण आपकी इच्छा संस्कृत का अध्ययन करने की हुई, पर संघ में ऐसा सुयोग था नहीं। ब्राह्मण जैन साधुओं को निःशुल्क संस्कृत शिक्षा देते नहीं थे, अतः यह कार्य दुरूह था। पर 'जहां चाह वहां राह' मिल ही जाती है। जयपुर में एक श्रावक का पुत्र संस्कृत व्याकरण पढ़ता था। वह जो दिन में पढ़ता, उसे रात में आपको सुना देता व आप कंठस्थ कर लेते। इस तरह आपने सारस्वत का पूर्वादर्भ व सिद्धान्त चन्द्रिका का उतरादर्भ कंठस्थ किया व शब्दसिद्धि की साधनिका लेखबद्ध की। इस तरह बारह वर्षों में आपने अगाध आगमज्ञान, साहित्य-सृजन की कला व संस्कृत का अध्ययन किया।

### अग्रणी के रूप में

संवत् १८८१ के पौष शुक्ला ३ को पाली में श्रीमद् ऋषिराय ने आपकी अग्रणी बना दिया व प्रथम चातुर्मास उदयपुर करवाया। वहां महाराणा भीमसिंहजी व युवराज जवानसिंहजी आपसे विशेष प्रभावित हुए। महाराणा आपके बिराजने के स्थान के सामने घोड़ा रोककर आपकी वंदना करते। उस चातुर्मास के पूर्व व पश्चात् आपने नाथद्वारा में नन्दरामजी यति के पुस्तक भण्डार से भगवती, अनुयोगद्वार, उत्तराध्ययन सूत्रों की संस्कृत टीकाएं लीं। केशरजी भण्डारी से सूत्रकृतांग दीपिका ली। कांकरोली पुस्तक भण्डार से भी कई संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ प्राप्त किए। मेवाड़ में आप जहां पधारे, वहीं सफलता ने आपके चरण चूमे। संवत् १८८३ में, शेषकाल में, आप श्रीमद् ऋषिराय के साथ मालवा पधारे और खात्ररोद, रतलाम व उज्जैन में अन्य सम्प्रदाय के मुनियों से शास्त्रार्थ कर उन्हें समाधान दिया। संवत् १८८५ में आपने जयपुर चातुर्मास किया, जहां मालीरामजी लूणिया, गेरुजी प्रभृति ५२ व्यक्तियों ने गुरु-धारणा ली। चातुर्मास के बाद किशनगढ़ में भी अच्छा उपकार हुआ। संवत् १८८७ में स्थली प्रदेश में तेरापंथ के प्रथम चातुर्मास की कड़ी में आपने चुरू चातुर्मास किया, चन्द्रभाणजी तिलोकचन्द्रजी के कई श्रावकों को समझाकर उनका भ्रम दूर किया व सरदार सती को दीक्षा की प्रेरणा दी। संवत् १८८८ में आपने बीकानेर में चातुर्मास किया। उस क्षेत्र में भयंकर विरोध के उपरान्त तेरापंथ के बारे में अनेक प्रकार की भ्रान्तिओं का निराकरण किया। सैकड़ों लोगों को प्रभावित किया। बीकानेर चातुर्मास में हरियाणा के दो भाई मोमनचन्द व गुलहजारी ने दर्शन कर दिल्ली पधारने का निवेदन किया तब आपने कोदरजी स्वामी को मेवाड़ भेजकर श्रीमद्



६० हे प्रभो ! तेरापंथ

ऋषिराय से अनुज्ञा प्राप्त की। संवत् १८८१ में जयपुर में दिल्ली के कृष्णचन्दजी माहेश्वरी व चतुर्भुजजी ओसवाल ने आपसे प्रभावित होकर तेरापंथ की श्रद्धा स्वीकार की थी, पर बाद में उनका सम्पर्क नहीं रह पाया था। दिल्ली में आपने संवत् १८८६ का चातुर्मास किया। अनेक धार्मिक चर्चा-वार्ताओं से जनता को प्रभावित किया। कृष्णचन्दजी माहेश्वरी ने चातुर्मास की सम्पन्नता पर, आपसे दीक्षा संस्कार ग्रहण किया। दिल्ली की प्रभावक यात्रा कर मुनिश्री ने मेवाड़ में श्रीमद् ऋषिराय के दर्शन किए। वहां से श्रीमद् ऋषिराय के साथ कच्छ, सौराष्ट्र, गुजरात की यात्रा की व संवत् १८९० का चातुर्मास बालोतरा किया। आपके जीवन की यह एक बहुत बड़ी ऐतिहासिक यात्रा थी, जिसमें एक वर्ष में सात सौ कोस (लगभग २२०० किलोमीटर) का विहार हुआ। दिल्ली से लेकर गुजरात तक का स्पर्श हुआ। बालोतरा चातुर्मास में आपने श्री पूज्यजी के उपाश्रय में अनेक तात्त्विक चर्चाएं कीं। सैकड़ों लोगों ने आपकी श्रद्धा स्वीकार की। बड़ी चौबीसी की १८ गीतिकाओं व अनेक तात्त्विक संस्तुतियों की यहीं रचना हुई। जसोल की 'धके जाओ' की घटना इस चातुर्मास के पूर्व की है, जिसमें अकेले गांव में जाने पर आपको स्थान या आहार-पानी नहीं दिया गया। 'धके जाओ' कहा जाता रहा। संघीय संस्कारों की प्रतिबद्धता का यह अनोखा उदाहरण था। बाद में परिचय पाने पर तो श्रावकों ने क्षमायाचना की। संवत् १८९२ में लाडनू चातुर्मास में लालचन्दजी पाटणी (सरावगी) आदि अनेक प्रमुख व्यक्ति आपके प्रति श्रद्धाशील बने। संवत् १८९३ के बीकानेर पावस-प्रवास में नथमलजी आदि कई व्यक्ति तेरापंथ के अनुयायी बने। पूरे क्षेत्र में अच्छी जागृति आयी।

### युवाचार्य पद पर

संवत् १८९३ के आसाढ़ महीने में नाथद्वारा में श्रीमद् ऋषिराय ने एक विशेष घटना से प्रेरणा पाकर आपको परम विनीत, संगठनकर्ता, विश्रुत विद्वान आदि सभी गुणों से सम्पन्न व योग्य समझकर प्रच्छन्न रूप से उत्तराधिकारी घोषित कर नियुक्ति-पत्र मुनिश्री स्वरूपचन्दजी को सौंप दिया। आप पाली चातुर्मास करके फलीदी खींचन की ओर पधार गए थे, जहां आपको दो साधुओं ने श्रीमद् ऋषिराय के दो पत्र (जिनमें एक बन्द लिफाफे में नियुक्ति-पत्र था) लाकर दिए व शीघ्र मेवाड़ पधारने का निवेदन किया। आपने मार्ग में कहीं एक रात्रि से अधिक न ठहरने का संकल्प लेकर त्वरित गति से विहार कर नाथद्वारा में श्रीमद् ऋषिराय के दर्शन किए, जहां आपके युवाचार्य-पद की घोषणा की गई। सारे संघ में भावी योग्य संघपति पाकर अत्यन्त आह्लाद हुआ। आप लगभग चौदह वर्ष युवाचार्य रहे पर आपके चातुर्मास आदि आचार्य महाराज से अलग ही हुए। आप स्वतन्त्र रहकर भी बड़ा व्यापक धर्म-प्रचार करते रहे। लाडनू, चुरू,

उदयपुर, जयपुर, किशनगढ़ आदि में पावस प्रवास बिताकर स्थान-स्थान पर आपने अध्यात्म-भावना जागृत की। संवत् १६०३ में आपने नाथद्वारा में मुनिश्री हेमराजजी के साथ बारह संतों से चातुर्मास किया। एक युवाचार्य किसी मुनि के साथ चातुर्मास करे, यह विरल घटना है, पर आपकी निरभिमानता व विनय-भाव का भी यह उत्कृष्ट उदाहरण है। इस चातुर्मास में मुनिश्री से स्वामीजी के अनेक जीवन-संस्मरण सुनकर आपने लेखबद्ध किए जो आज 'भिक्षु दृष्टांत' नामक ग्रन्थ में उपलब्ध हैं। यह ग्रन्थ इतिहास, साहित्य, तत्त्वज्ञान आदि कई दृष्टियों से अत्यंत महत्त्वपूर्ण व बेजोड़ है। आपने अपने शिक्षा-गुरु की सेवा कर, उनके उपकारों से यत्किंचित् उन्नतता प्राप्त की। उनके अन्त समय में संवत् १६०४ में सिरियारी में पास रहकर, आपने उनकी आराधना व प्रत्यालोचना में अच्छी सहायता की व चित्त-समाधि उपजाई।

संवत् १६०६-१६०७ (मुनि स्वरूपचन्दजी के साथ) में आपने बीकानेर चातुर्मासिक प्रवास बिताए। सं० १६०७ का चातुर्मास पहले बीदासर घोषित था, पर अधिक उपकार की संभावना के कारण बाद में परिवर्तन हो गया। इसकी आपको सूचना आसाढ़ में मिली। रेगिस्तान की तपती रेत, भयंकर गर्मी, लगभग १३० किलोमीटर की दूरी, मार्ग में सुविधाजनक स्थान नहीं, पर यह सब होते हुए भी आपने सारे कष्ट सहकर गुरु-आज्ञा को शिरोधार्य किया। बीदासर के लोगों ने बहाना बनाकर न जाने का निवेदन किया तो आपने कहा, "बहाना तो नौकर (गुलाम) बनाता है, हम तो कर्तव्यभाव से सहर्ष जाएंगे।" उस चातुर्मास में मदनचन्दजी राखेचा आदि कई उच्च राज्याधिकारी प्रभावित हुए। सं० १६०८ में आपने स्वरूपचन्दजी स्वामी आदि १२ मुनिजनों सहित बीदासर चातुर्मास किया। वहां से लाडनू पधारकर सं० १६०८ की मगसिर वदि १२ को मुनि मघवा को दीक्षा प्रदान की। स्थान की दूरी, यातायात के साधनों का अभाव व संचार-व्यवस्था की कमी के कारण, वहां माघ शुक्ला ८ को मेवाड़ से पत्र आया, जिसमें लिखा था कि आचार्यश्री रायचन्दजी का माघ वदि १३ को छोटी रावलियों में स्वर्गवास हो गया। यह सूचना मानो एक युग की समाप्ति व नवीन युग के प्रारम्भ की सूचना थी।

### आचार्य-काल

संवत् १६०८ की माघ शुक्ला पूर्णिमा को आप पदासीन हुए। लम्बे अरसे से आपके मन में तत्कालीन परिस्थितियों व विचारों के परिवेश में अनेक व्यवस्थाओं में चित्तनपूर्वक परिवर्तन करने की योजनाएं बनी हुई थीं, जिनकी क्रियान्विति का सही समय आ चुका था। उन योजनाओं में तेरापंथ के निश्चित आकार, प्रकार व निर्माण की सम्भावनाओं के साथ, विकास के विविध आयामों

६२ हे प्रभो ! तेरापंथ

के स्रोत सन्निहित थे और उनकी क्रियान्विति ने युगों-युगों तक तेरापंथ धर्म-संघ को आत्म-साधना का एक अजेय गढ़ बना डाला। उनमें प्रमुख नई व्यवस्थाओं का निम्न प्रकार से उल्लेख किया जा सकता है—

### पुस्तकों का संघीकरण

स्वामीजी के पास पुस्तकों का अत्यन्त अभाव रहा, पर धीरे-धीरे गृहस्थों व यतिओं से व स्वयं लिखकर प्रतिलिपियां बनाने से पुस्तकें प्राप्त होती गईं, पर जो भी साधु पुस्तक प्राप्त करता, उसे वह अपने पास रख लेता, जिससे किसी के पास पुस्तकें प्रचुर मात्रा में हो गईं, तो किसी के पास अल्प मात्रा में। आपका विचार था कि कोई भी पुस्तक प्राप्त करे तो उसका लाभ सारे संघ को मिले। व्यक्तिगत शिष्य-परम्परा स्वामीजी ने ही समाप्त कर दी थी। श्रीमद् जयाचार्य ने कुछ साधुओं द्वारा पुस्तकों का विसर्जन करने में हिचकिचाहट देखकर, उन्हें आदेश दिया कि पुस्तकों का बोझ वे स्वयं उठाएं, संघ का कोई अन्य साधु-साध्वी नहीं उठायेगा। इस निर्णय से सबके मन में खलवली मच गई क्योंकि ऐसा करना सम्भव नहीं था। परिणामस्वरूप सारे साधु-साध्वियों ने अपने पास की पुस्तकें गुरु-चरणों में भेंट कर दीं। गुरुदेव ने उसका आवश्यकतानुसार समान बंटवारा कर दिया व सारी पुस्तकें मात्र संघ की होने की घोषणा की व केवल आचार्य की निश्चय में, अस्थायी तौर से हर किसी के पास, रखने की व्यवस्था की। इससे संघ की एकता को बल मिलने के साथ ममत्व-विसर्जन व समता की साधना भी बलवती हुई।

### गाथा प्रणाली

पुस्तकों पर व्यक्तिगत अधिकार समाप्त हो जाने से पुस्तकों के लेखन के उत्साह में कमी न आए, इस दृष्टि से श्रीमद् जयाचार्य ने गाथा प्रणाली प्रणयन किया। उन्होंने हर अग्रणी साधु के लिए प्रतिदिन २५ गाथा लिखना अनिवार्य कर दिया व प्रतिवर्ष मर्यादा महोत्सव पर हर अग्रणी के लेखापत्र में गाथाओं का लेखा-जोखा रखा जाने लगा तथा हर प्रतिलिपि पर संघ की मुहर लगने लगी। आचार्य की अनुमति से ही, उसे किसी के पास रखने की व्यवस्था की गई। कोई अपनी व्यक्तिगत सुविधा के लिए स्वयं कुछ भी लिखकर अपने पास रखना चाहता, तो उसे लेखापत्र में जमा नहीं किया जाता। संघ के साधु-साधवियों की सेवा व गाथाओं के कर को समकक्ष करके, यह भी व्यवस्था की गई कि वृद्ध, ग्लान, भीमार साधुओं की सेवा करने वाले अग्रणी की उसकी एक दिन की सेवा के बदले २५ गाथाएं जमा हो जाएंगी। ऐसी सेवा करना सबके लिए अनिवार्य कर दिया गया, ताकि कोई मात्र गाथाओं का संचय कर सेवा करने से इनकार न कर दे। गाथा

प्रणाली वस्तु-विनिमय का साधन बन गया व व्यक्तिगत प्रतियों का आदान-प्रदान इस आधार पर होने लगा ।

कालान्तर में व्यक्तिगत व सामूहिक कार्यों का मूल्यांकन भी गाथाओं के आधार पर होने लगा । सिलाई, रंगाई आदि अनेक व्यवस्थाओं की सम्पूर्ति करने वालों को गाथाओं का पुरस्कार दिया जाने लगा जो लेखापत्र में जमा हो जाता । जमाशुदा गाथाएं किसी को हस्तांतरित नहीं की जा सकती थीं और न किसी को उत्तराधिकार में दी जा सकती थीं । गाथाएं वे ही जमा की जातीं जो साफ, सुघड़, सुन्दर लिपि में लिखी गई हों । श्रीमद् जयाचार्य ने स्वयं लिपि-सुधार का कार्य प्रारम्भ किया व अन्य को प्रेरित किया । अतः कुछ ही समय में सारे संघ की लिपि इकसार, सुन्दर व सुघड़ बन गई । इस एक ही व्यवस्था में संघ में 'समाजवाद' वास्तविक रूप से प्रकट हो गया । इससे संघ में अच्छे लिपिकार, अच्छे ग्रन्थ की प्राप्ति, अच्छा वितरण व वस्तु का अच्छा उपयोग स्वतः सिद्ध हो गया । साध्वियों के लिए प्रत्येक अग्रणी पर प्रतिवर्ष एक रजोहरण, एक प्रमार्जनी व एक-एक डोरी गूथकर लाने का कर लगा दिया गया व प्रतिवर्ष आचार्य को भेंट देने की व्यवस्था की गई । आचार्य आवश्यकतानुसार इन उपकरणों को बांट देते व कभी-कभी गाथाओं के बदले साधुओं को कार्य से मुक्ति प्राप्त करने की अनुमति दे देते, पर भेंटस्वरूप दिये गये उपकरणों पर स्वत्व सारे संघ का समझा जाता ।

### आहार-संविभाग

आहार का समान वितरण करने की व्यवस्था तो स्वामीजी ने ही कर दी थी, पर उस समय संत अधिक होने व सतियां कम होने से साध्वियों को आहार की कम आवश्यकता रहती थी, अतः साधु-साध्वी सारा आहार लाकर स्वामीजी के पास रख देते व साधुगण अपनी आवश्यकतानुसार आहार लेकर अवशिष्ट आहार साध्वियों को दे देते और वे बांट-बांटकर आहार कर लेतीं ।

श्रीमद् ऋषिराय के समय में साध्वियों की संख्या साधुओं से कहीं अधिक हो गई, तब उपरोक्त व्यवस्था में परिवर्तन की अपेक्षा हुई । श्रीमद् जयाचार्य ने पुरुष के लिए बत्तीस कवल व स्त्री के लिए अट्ठाईस कवल आहार समुचित मानकर मर्यादा बनाई कि इस आधार पर साधु-साध्वियों के आहार का समान बंटवारा किया जाये । इसमें कई कठिनाइयां आने पर बाद में सारा आहार साधु-साध्वियों की संख्या के अनुपात से विभाजित करने की व्यवस्था कर दी । विभाजन को सुविधाजनक बनाने के लिए साधु-साध्वियों के अलग-अलग दलों के मुखियों पर विभाजन का दायित्व डाला गया । मर्यादा महोत्सव पर सैकड़ों साधु-साध्वियों को व अन्यान्य प्रसंगों पर भी अनेक साधु-साध्वियों को आवश्यकता-

नुसार आहार मिल सके, इसके लिए भोजन संबंधी द्रव्यों के कुछ नाम निश्चित कर दिये गये। एक पत्र (घड़ा पत्र) पर द्रव्यों की सूची लिखकर दल के मुखिया को दी जाने लगी। दल का मुखिया अपने दल के सदस्यों से पूछकर या समझकर, भोजन व द्रव्यों की मात्रा उस पत्र में लिख देता और इसी आधार पर सब पत्रों के योग के अनुसार आहार मंगवाया जाता। आहार आने पर उन पत्रों के अनुसार, प्रतिदिन प्रतिनिधि साधु आहार का विभाजन कर देते। साधु-साधिव्यां अपने-अपने स्थान पर अपने हिस्से का आहार कर लेतीं। प्रतिनिधि बंटवारा करने के बाद, उस स्थान को साफ कर, सबसे बाद में आहार करते। प्रतिदिन प्रतिनिधि बदलते रहते, आहार करते समय संविभाग में निष्ठा उत्पन्न करने के लिए कुछ समय तक प्रत्येक दल श्रीमद् जयाचार्य द्वारा रचित 'टहुका' (खाद्य संयम हेतु) बोलता पर बाद में व्यवस्था जम जाने पर इसकी आवश्यकता नहीं रही।

### धम का संविभाग

व्यक्तिगत कार्यों के अलावा सामूहिक कार्यों का भी समान उत्तरदायित्व निर्वाह करने के लिए श्रीमद् जयाचार्य ने अनेक साधु-साधिव्यों के सम्मिलित होने पर, आहार विभाजन करने, घड़ा पत्र लिखने, पानी का वितरण करने, आचार्यों के लिए विराजने की चौकी बिछाने, संत-सतियों का सामान जान-अनजान में बाहर पड़ा न रह जाये, अतः उसकी चौकीदारी करने, रात्रिकाल में मूत्र-विसर्जन (परिष्ठापन) करने आदि की जिम्मेवारी प्रतिदिन दीक्षा-क्रम से बड़े-छोटे के अनुसार प्रत्येक साधु-साध्वी पर डाल दी गई। उसे अनिवार्यतः यह कार्य करना होता। हर प्रकार के काम के विभाजन में सबको समान रूप से उत्तरदायित्व लेना पड़ता। साम्यवाद के राजनैतिक प्रयोग के बहुत पहले तेरापंथ धर्म-संघ में साम्य-वाद का प्रादुर्भाव हो चुका था।

### गण विशुद्धिकरण हाजरी

स्वामीजी द्वारा प्रणीत मर्यादाओं का श्रीमद् जयाचार्य ने वर्गीकरण कर 'गण विशुद्धिकरण हाजरी' (संक्षिप्त नाम 'हाजरी') की संरचना की। हाजरी में शिक्षा व मर्यादा की घोषणाएं हैं व उनमें संघ में साधु-साध्वी कैसे रहे, उनका आहार-विहार शील-चर्या क्या हो, संघ से उनका संबंध कैसा हो, शासन हितैषी से या बहिष्कृत, अविनीत, बहिर्भूत व्यक्तियों से संपर्क, संसर्ग कैसा रखा जाये, श्रावकों को संधीय मर्यादाओं के प्रति जानकारी व निष्ठा कैसे रहे— आदि विषयों पर दिशा-निर्देश हैं। हाजरी के दिन वे मर्यादाएं व्याख्यान में भरी परिषद् में सुनाई जाती हैं व साधु-साध्वीगण त्याग का घोष समवेत स्वर से करते

हैं। इसके बाद वे एक लेखपत्र का उच्चारण करके संघ व संघपति में अपनी निष्ठा व संयम-साधना का संकल्प प्रकट करते हैं।

### साध्वियों के नये सिंघाड़े (दल)

श्रीमद् जयाचार्य के पूर्व साध्वियों के सिंघाड़ों की व्यवस्था ठीक नहीं थी। जिसके पास या जिसकी प्रेरणा से किसी ने दीक्षा ली तो वह साध्वी उसी के पास रहती। इससे कुछ सिंघाड़ों में बहुत अधिक तो कुछ में बहुत कम संख्या ही रह पायी।

संवत् १९१० में 'साध्वी-प्रमुखा' पद का सृजन करके आपने 'सरदार सती' को 'साध्वी-प्रमुखा' नियुक्त किया व साध्वियों की समुचित व्यवस्था का भार सौंपा। सरदार सती स्वयं एक प्रखर अनुशास्ता व उत्कृष्ट साधक थी। उनके अथक प्रयास से धीरे-धीरे सभी सिंघाड़े उनके नियंत्रण में आ गये। संवत् १९१४ में प्रत्येक सिंघाड़े में चार या पांच साध्वियों का दल बनाकर उस समय के दस सिंघाड़ों को यथावत् रखते २३ नये सिंघाड़े बने। इस तरह प्रचार का एक गुस्तर कार्य संपन्न हो गया।

### तीन महोत्सवों की स्थापना

श्रीमद् जयाचार्य ने पट्ट महोत्सव, आचार्य भिक्षु चरमोत्सव व मर्यादा-महोत्सव की स्थापना की। पट्ट महोत्सव वर्तमान आचार्य के पट्टाभिषेक के अवसर पर उनकी संस्तुति करने व आचार्य द्वारा नयी घोषणाएं करने व अपने कार्य को पर्यावलोकन करने के उपलक्ष में मनाया जाता है। श्रीमान् जयाचार्य के समय में यह पट्टोत्सव माघ शुक्ला पूर्णिमा को मनाया जाता रहा।

भिक्षु चरमोत्सव तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक भिक्षु स्वामी की स्मृति में मनाया जाने लगा। उस दिन तेरापंथ के इतिहास व स्वामीजी के जीवन-संस्मरणों की स्मृति की जाती है व नयी प्रेरणा प्राप्त करने का संकल्प लिया जाता है। यह महोत्सव चातुर्मासिकाल में भादवा सुदी १३ को मनाया जाने लगा। इन दोनों महोत्सवों से अधिक व स्थायी महत्त्व का काम मर्यादा महोत्सव मनाने का रहा। स्वामीजी द्वारा अंतिम व निर्णायक विधान माघ शुक्ला सप्तमी को लिखे जाने के उपलक्ष में प्रतिवर्ष यह महोत्सव उसी तिथि को मनाया जाने लगा। चातुर्मास संपन्न करने के बाद लगभग सभी साधु-साध्वी आचार्यप्रवर के निर्देशानुसार घोषित स्थान पर पाद-विहार करते एकत्रित हो जाते हैं। आचार्यप्रवर प्रत्येक सिंघाड़े से साक्षात्कार कर इस बात का पूरा विवरण प्राप्त करते हैं कि वे कहां-कैसे रहे, वहां के लोगों की प्रकृति व आस्था कैसी है? उनके आपस में सौहार्द कैसा रहा? कब क्या व्यक्तिगत व सामाजिक कठिनाइयां आयीं? आगे के लिए

उनकी क्या आकांक्षा है? धर्म-प्रचार में उनकी कैसी गति रही व उसमें क्या सुधार, परिवर्तन, परिवर्धन अपेक्षित है? आचार्यप्रवर संघ के किसी सदस्य की खामी देखते हैं तो उसे दंड प्रायश्चित्त देकर शुद्ध करते हैं। किसी ने अच्छा कार्य किया हो, तो उसे सम्मानित कर उसका उत्साह बढ़ाते हैं। इस अवसर पर साधु-साधवियों की अलग व सामूहिक गोष्ठियों में आचार-विचार की पवित्रता, मर्यादा और अनुशासन की पालना, सामयिक विषय व परिस्थितियों पर प्रकाश डाला जाता है तथा चिंतन व विचार-मंथन चलता है। आम जनता के सामने दार्शनिक, साहित्यिक, आगमिक विषयों पर आचार्यप्रवर व विद्वान साधु-साध्वी भाषण व शिक्षा देते हैं। सप्तमी के दिन बड़ी हाजरी में सबसे साधु-साध्वी खड़े होकर विश्वसनीयता की शपथ लेते हैं। यह दृश्य सचमुच बड़ा आनन्ददायक व मनोहारी होता है। सप्तमी के दिन आचार्यप्रवर स्वामीजी द्वारा लिखित मर्यादा-पत्र का वाचन करते हैं व सामूहिक शिक्षा देते हैं। विभिन्न क्षेत्रों से आये हुए साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका संस्तुति व प्रार्थनाएं करते हैं। मर्यादा-महोत्सव का मुख्य आकर्षण चातुर्मासों की घोषणा होता है। हजारों लोग अपने-अपने क्षेत्रों का भाग्य-निर्धारण सुनने को बहुत आतुर होते हैं। ज्योंही आचार्यप्रवर किसी साधु-साध्वी को अमुक क्षेत्र के चातुर्मास की वंदना करने की घोषणा करते हैं, त्योंही वातावरण प्रसन्नता से खिल उठता है। आचार्यश्री के स्वयं चातुर्मास या आगामी विहार की घोषणा भी इसी अवसर पर होती है। मर्यादा महोत्सव का दिन एक तरह से परीक्षाफल के घोषणा दिन की तरह सबको उत्कंठित बनाये रखता है।

मर्यादा महोत्सव की विधिवत् स्थापना संवत् १९२१ में बालोतरा में हुई। उस वर्ष का पट्टोत्सव पचपदरा मनाया गया व बालोतरा वालों के भक्ति-भरे निवेदन पर मर्यादा-महोत्सव का विशेष कारणों से अलग वरदान बालोतरा को मिला। इस महोत्सव के आकार, प्रकार, कार्यक्रम व गतिविधियों में प्रतिवर्ष अभूतपूर्व वृद्धि होती रही है।

### सेवाकेन्द्र की स्थापना

आपने वृद्ध, रोगी, ग्लान, अपंग साधवियों की सेवा-परिचर्या के लिए एक स्थायी सेवाकेन्द्र की लाडलू में संवत् १९१४ में स्थापना की व प्रतिवर्ष एक सिंघाड़े को मात्र उनकी सेवा के लिए भेजने की व्यवस्था कर दी। इससे संघ के साधवियों की चित्त-समाधि सुस्थिर रहने में बड़ा योग मिला। सेवार्थी साधवियों की संख्या में वृद्धि हो जाने से कुछ वर्षों से दो सिंघाड़े भेजे जाते हैं।

### रहन-सहन, वेशभूषा आदि में निखार

भयंकर प्रतिकूल परिस्थितियों व उग्र विरोध के कारण स्वामीजी का ध्यान रहन-सहन, वेशभूषा में परिवर्तन की ओर नहीं गया और तेरापंथ में स्थानकवासी परम्परा की वेशभूषा आदि ही चलती रही, पर आपने मुंहपति, रजोहरण, चोल-पट्टा, चद्दर, पहनने-ओढ़ने के रीति-रिवाज को कलात्मक रूप देकर संवारा व सुन्दरता प्रदान की, जो निरंतर विकास पाती गई। आज का संघीय रहन-सहन श्रीमद् जयाचार्य द्वारा प्रणीत व प्रेरित है।

### श्रुत साधना

श्रीमद् जयाचार्य ने श्रुत साधना में लगकर जो आनंद प्राप्त किया, वह उन्होंने स्वयं तक ही सीमित नहीं रखा—दूसरों को उदारमना होकर वितरित किया। अपने जीवनकाल में लगभग साढ़े तीन लाख पद्यों की रचना कर उन्होंने एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। साहित्य-सृजन की प्रेरणा उन्हें अप्रत्याशित रूप से मिली। बालवय में एक बार श्री जयाचार्य एक पात्री को स्वयं अपने हाथ से रंग-रोगन करके श्रीमद् ऋषिराय को बता रहे थे कि पास बैठी साध्वीश्री दीपोंजी ने व्यंग्य कसतेक हा, “यह कार्य तो हम-जैसी अनपढ़ औरतें भी कर सकती हैं, आप तो कोई सूत्र सिद्धांत की गवेषणा कर रचना करते तो सारे संघ के लिए उपयोगी होती।” तीर निशाने पर लगा, श्रीमद् जयाचार्य के कृतित्व को दिशाबोध मिल गया। उसके बाद उन्होंने अनेक शास्त्रों का अवगाहन कर उनकी पद्यबद्ध टीकाएं कीं, जिनमें सर्वप्रथम ‘पन्नवणा सूत्र’ की जोड़ रची गई। उस समय आपकी अवस्था मात्र अठारह वर्ष थी। बाद में आगम-मंथन कर कई आगमों की पद्यबद्ध टीकाएं कीं जिनमें ‘भगवती की जोड़’ सबसे बड़ी है। साठ हजार पद्यों में रचित यह ग्रन्थ सरस गीतिकाओं में ज्ञेय होने के कारण अद्वितीय है। आगमों की राजस्थानी भाषा में पद्यबद्ध टीका करने का सर्वप्रथम श्रेय आपको ही है। उनमें आपने अनेक सैद्धान्तिक प्रश्नों का समाधान भी दिया है। जीवन के पिछले वर्षों में संघ-व्यवस्था का कार्य युवाचार्य श्री मधवा को सौंपकर आप अत्यन्त उत्कटता के साथ स्वाध्याय व साहित्य-रचना में लग गए। भगवतीसूत्र के जोड़ की आप रचना करते जाते व गुलाब सती उसे लिपिबद्ध करती जातीं। उन्हें दूसरी बार पूछने की आवश्यकता नहीं रहती। गुलाब सती के अक्षर मोती की तरह सुन्दर, सुडौल व स्पष्ट थे। इस विशालकाय ग्रंथ की रचना सं० १९१६ से १९२४ तक पांच वर्षों की अवधि में हुई। वे रात्रि के समय भी काव्य-रचना करते व पांच संतों को क्रमवार बिठाकर उन्हें पांच-पांच पद कंठस्थ करा देते, जो दूसरे दिन लिपिबद्ध हो जाते। आगमों की टीका के साथ अन्य तात्त्विक ग्रन्थ ‘भ्रम विध्वंसनम्’, ‘संदेह विषोषधि’, ‘जिनाज्ञा



मुख-मंडल', 'कुमति विहंडन', 'प्रश्नोत्तर सार्धं शतक', 'चर्चा रत्नमाला', 'भिक्षु पृच्छा', 'बड़ा-छोटा ध्यान', 'प्रश्नोत्तर तत्वबोध', 'श्रद्धा व जिनाज्ञा की चौपी', 'झीणी चरचा व बोल', 'झीणा ज्ञान', 'भिक्षुकृत हुंडी की जोड़', 'भांगा' आदि की रचनाएं करके आपने साहित्य-भण्डार को विपुलता से भरा। आप द्वारा रचित जीवन-चरित्रों में 'भिक्षु यश रसायण', 'खेतसी चरित्र', 'सतीदास चरित्र', 'ऋषिराय चरित्र', 'हेम नवरसो', 'स्वरूप नवरसो' आदि प्रमुख रचनाएं हैं। आपने लगभग बीस पौराणिक आख्यानों के आधार पर प्रबंधकाव्य रचे। इतिहास की दृष्टि से लघुरास, टालोकरों पर ढाल, हेम चौड़ालियो, शासन विलास, आर्यादर्शन चौपाई आपकी महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं। उपदेशात्मक साहित्य में आराधना, कथाकोष, शिक्षा की चौपाई आदि अनेक ग्रन्थ व संस्मरणात्मक साहित्य में 'भिक्षु दृष्टान्त', 'हेम दृष्टान्त', 'श्रावक दृष्टान्त' आदि ग्रन्थ सुबोध व सुस्मृतिपूर्ण रचनाएं हैं। विधान व स्तुतिपरक रचनाएं भी आपकी उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं। 'पंच संधि व्याकरण' एवं 'नय चकरी की जोड़' एवं 'सिद्धांत सार' बड़ी ही गूढ़ व तलस्पर्शी रचनाएं हैं। आप अकसर वज्रासन में बैठे रहते व इन्द्रियों का निरोध कर एकान्त में स्वाध्याय करते रहते। यही आपके स्थिर योग की सिद्धि का कारण था।

### स्वर्ग-प्रयाण

आपके शासनकाल में ३२६ दीक्षाएं हुईं, जिनमें १०५ साधु व २२४ साध्वियों ने दीक्षा ली। संवत् १६२० में आपने मघवागणि को युवाचार्य बनाकर संघ-व्यवस्था सौंप दी। आपका जीवस सफल आचार्य का जीवन था। जिस ओर आपने ध्यान दिया, उसी कार्य को सफलता से संपन्न किया। आपका जीवन सामान्यतया निरोग रहा, पर वृद्धावस्था में आंख में मोतियाबिंद हो गया, जिसका सफल आपरेशन सं० १६२६ में मुनि कालूजी (बड़ा) द्वारा किया गया। आपके नेत्रों में पुनः ज्योति आ गई। संवत् १६२६ के बाद आपके शरीर में अस्वस्थता रहने लगी। संवत् १६३२-३३-३४ में लाडनू व संवत् १६३५-३६ में बीदासर चातुर्मास करने पड़े। मर्यादा महोत्सव भी अधिकतर लाडनू-बीदासर में ही हुए। जयपुरवासियों के निवेदन पर संवत् १६३६ के चैत सुदि ८ को आप संतों द्वारा संचालित मुखपाल में विराजकर जयपुर पधारे व संवत् १६३७ का चातुर्मास व मर्यादा महोत्सव जयपुर में किया। संवत् १६३७ में आपकी प्रेरणा से मुनि कालूजी (बड़ा) ने सरदारशहर में धर्म-जागृति कर एक साथ सैकड़ों लोगों को समझाकर श्रद्धालु बना दिया। उसी वर्ष ग्रीष्मकाल में आपके गले में गांठ हो जाने से जयपुर से

१. प्रज्ञापुरुष जयाचार्य—आचार्यश्री तुलसी, पृ० ८ के आधार पर। मेरा अपना अभिमत है कि संभवतः यह कैसर था।

विहार नहीं हो सका व संवत् १९३८ का चातुर्मास जयपुर में ही हुआ। चातुर्मास के प्रारम्भ से ही अस्वस्थता बढ़ने लगी। आप लाला भैरूलालजी सींघड की हवेली में विराज रहे थे कि सहसा लालाजी रोगग्रस्त हो गए। जयाचार्य ने उन्हें दो बार दर्शन दिए तथा परिणामों में उच्च भावना भरी, पर रात को वे दिवंगत हो गए। जयाचार्य स्थान बदलकर सरदारमलजी लूणिया की हवेली में आ गए, पर आप स्वयं दुर्बल हो गए व आहार-रुचि कम हो गई। आपने स्वल्प औषधि पानी को छोड़कर स्वाध्याय को अपना संबल बना लिया व आत्म-साधना में पूर्णतः लीन रहने लगे। उन्हीं दिनों आपने साधुओं व श्रावकों को कई अमूल्य शिक्षाएं दीं। फिर आपने सागारी अनशन कर लिया। अनशन की बात फैलते ही देश भर से श्रावक-समाज दर्शनार्थ उमड़ पड़ा। भादवा वदि १२ को भीमराजजी पारख राजगढ़ वालों ने नाड़ी परीक्षा कर आयुष्य की स्थिति का बोध कराया, तब युवाचार्यश्री ने आपको प्रातः ११.२५ बजे तिविहार व सायंकाल ६ बजे लग-भग चौविहार अनशन करवा दिया। थोड़े ही समय बाद दो-तीन हिचकी आयीं व आपने आंखें खोलकर उसी अवस्था में देह-परित्याग कर दिया।

संवत् १९३८ की भादवा वदि १२ को सायंकाल में तेरापंथ के एक तेजस्वी व युग-प्रवर्तक आचार्य का स्वर्गवास हुआ और सारा विश्व भारतीय संत परंपरा के उस तेजोमय नक्षत्र के प्रकाश-पुंज से वंचित हो गया। दूसरे दिन जयपुर राज-घराने से अनुमति प्राप्त कर बैकुंठी में बिठाकर मुख्य बाजारों से होती हुई अजमेरी गेट तक आपकी शव-यात्रा निकाली गई, जिसमें हजारों व्यक्ति सम्मिलित हुए। राज्य की ओर से हाथी, घोड़े, सिपाही, नगाड़े निशान आदि का लवाजमा साथ रहा। दाह-संस्कार सरदारमलजी लूणिया के बाग में हुआ, जहां चबूतरा बनाया गया। अब वह स्थान रामनिवास बाग में है और चबूतरे पर भव्य संगमरमर की छवि का निर्माण हो चुका है। श्रद्धा के अतिरेक में कई जैन-जैनेतर लोग उस छत्री पर अब तक पूजा-अर्चना करते हैं व मनौती मनाते हैं।

### अन्तर्मुखी साधना

श्रीमद् जयाचार्य का समूचा जीवन अंतश्चेतना के जागरण का प्रतीक था। अनेक बार उपसर्ग उपस्थित होने पर उन्होंने अपनी साधना के बल पर ही उसका शमन कर दिया। संवत् १९१३ की माघ शुक्ला पंचमी को उन्होंने सिरियारी में 'भिक्षु भारीमाल ऋषिरायजी, खेतसीजी सुखकारी' स्तुति की रचना की। उसमें पांच प्रमुख तपस्वी संत अमीचंदजी (अ), भीमजी (भी), राममुखजी (रा), शिवजी (शि), कोदरजी (को) का स्मरण किया। कुछ समय बाद जब आप कंटालिया थे, तब सन् १८५७ के गदर के दिनों वहां गोरों की फौज के हमले की

आशंका से समूचे गांव में घबराहट मच गई। आपने उस समय तन्मयतापूर्वक उपरोक्त गीतिका का स्मरण किया। गीतिका पूरी होते ही समाचार मिला कि फौजें पास से होकर आगे निकल गईं। उपद्रव शांत होने पर आपने इस गीतिका की विघ्नहरण के रूप में स्थापना की व 'अ. भी. रा. शि. को.' मंत्र को उपसर्ग शमन का हेतु बनाया। आज भी अनेक भक्तजन इस गीतिका व मंत्र का स्मरण व जाप करके शांति प्राप्त करते हैं। संवत् १९१४ में आपने बीदासर में बैंगानियों की पुरानी पोल में चातुर्मास किया। कार्तिक शुक्ला १० की पश्चिम रात्रि में एक भयंकर उपद्रव हुआ—आकाश से अंगारे बरसने लगे। आपके साथ के सारे संत मूर्च्छित हो गए। उस समय आपने आचार्य भिक्षु, भारीमालजी व संघ-प्रभावक साधु-साधिव्यों का स्मरण कर 'मुणिद मोरा' नामक गीतिका की रचना कर तन्मयतापूर्वक उसे गाया, जिसके परिणामस्वरूप उपसर्ग तो शांत हो गया, पर संत सचेत नहीं हो पाए। दैवयोग से सरदार सती को उपरोक्त घटना का पता लगा तो वे सूर्योदय के पूर्व ही प्रतिलेखन के समय, साधिव्यों को लेकर श्रीमद् जयाचार्य के पास आयी व अचेत साधुओं को उठाकर अन्यत्र ले गईं, जहां वे सचेत हुए। अजेय आत्मबली होने से जयाचार्य पर उपसर्ग का प्रभाव नहीं पड़ा। सरदार सती निर्भीक साधिका होने से उपसर्ग के स्थान पर नि.संकोच चली गई। आज भी 'मुणिद मोरा' गीतिका प्रभावशाली मानी जाती है व श्रावक-श्राविका इसका मंत्र की तरह स्मरण करते हैं। संवत् १९२९ में बीदासर-प्रवास में बड़ी पंचायती के नोहरे में बिराजते समय आपका पेशाब बंद हो गया व घोर वेदना हुई। उस समय आपने 'भिक्षु म्हारे प्रकट्याजी भरत खेतर में' संस्तुति की रचना कर गई और गाते-गाते ज्योंही भाव-विभोर हुए कि वेदना स्वतः शांत हो गई। लोगों में आज भी इस संस्तुति के प्रति अटूट श्रद्धा है। श्रीमद् जयाचार्य को जब भी कोई विघ्न, भय, उपद्रव, उपसर्ग, आधि-व्याधि उत्पन्न होते तो वे आचार्य भिक्षु को सम्पूर्ण श्रद्धा से स्मरण कर गीतिका रचते और उनकी सब विपदाएं दूर हो जातीं। संवत् १९०७ में जोबनेर में व संवत् १८९९ में बीदासर में ऐसे ही प्रसंगों की गीतिकाएं बनीं जिनका उल्लेख 'भिक्षु गुण वर्णन' की ढाल १७ व ७ में दिया गया है।

आप शकुन-शास्त्र के मर्मज्ञ थे। आपको स्वप्न आते व उनमें भी कई घटनाओं का पूर्वाभास हो जाता। आपने अपने महत्त्वपूर्ण स्वप्नों को लिपिबद्ध किया, जिनमें १९०४ मगसिर सुदि पांच संवत् १९०८ आसोज सुदि १३ व संवत् १९१७ फागुन शुक्ला तेरस के स्वप्न महत्त्वपूर्ण हैं। उन स्वप्नों में आचार्य भिक्षु के साक्षात्कार व जिज्ञासा-समाधान का वर्णन है। 'प्रज्ञा-पुरुष—जयाचार्य' पुस्तक के पृष्ठ ५४-५५ पर इसका सम्पूर्ण उल्लेख है। श्रीमद् जयाचार्य ने अन्तर्यात्रा के साथ-साथ बाहर की भी लम्बी यात्राएं कीं। दिल्ली पावस प्रवास में वे जंगल में

घूमकर जब अपने स्थल पर आए, तो एक सामुद्रिक शास्त्रज्ञ ने आपके नंगे पैरों की रेखाएं देखीं और वह दंग रह गया। ऐसी उच्च रेखाओं वाला व्यक्ति नदी किनारे नंगे पैर घूमे, यह बात उसकी समझ में नहीं आयी, क्योंकि ऐसा व्यक्ति तो कोई वैभवशाली राजा ही हो सकता है। वह पदचिह्नों के पीछे-पीछे आपके प्रवासस्थल पर पहुंचा। उसने आपका दीप्तिमान चेहरा व आभामंडल देखा तो लगा कि सबसे बढ़कर धर्मशासन का शास्ता होता है, जिनके चरणों में बड़े-बड़े नृपति भी सिर झुकाते हैं और उसका अनुमान गलत नहीं निकला।

### विरोधों में अडिग

आपकी निर्भीकता व साहस से मनुष्य या पशु विरोध में भी आपका कोई न कोई सहायक बन जाता था व विरोध शांत हो जाता था। संवत् १८८३-८४ में श्रीमद् ऋषिराय के साथ आप झाबुआ (मालवा) के जंगल में विहार कर रहे थे कि सामने से भालू आता दिखाई पड़ा। आप तत्काल श्रीमद् ऋषिराय की रक्षार्थ उनके आगे आ गए पर भालू भी वहां एक क्षण रुककर झाड़ियों में अदृश्य हो गया।

संवत् १९२० में आपने मुनिपतजी को दीक्षा दी। मुनिपतजी के दादा थानजी ने विद्वेषी लोगों के बहकावे में आकर जोधपुर-नरेश तख्तसिंहजी के दीवान विजयसिंहजी मेहता से मिलकर राजा के सम्मुख उचित कार्यवाही करने हेतु प्रार्थना-पत्र दे दिया। महाराज दीवान के कहने पर श्रीमद् जयाचार्य व श्री मुनिपतजी को गिरफ्तारी जारी करने के आदेश दे दिए। जब बादरमलजी भण्डारी जो स्वयं उच्च राज्याधिकारी व मंत्री थे, को इसकी भनक पड़ी, तो वे रात्रि में ही राजमहल गए व अनुनय-विनय कर सारी स्थिति की सही जानकारी देकर, वारन्ट निरस्त करने का आदेश प्राप्त किया व अपने पुत्र किशनमलजी को राज्य कर्मचारियों के साथ रवाना कर वारन्ट जाने के पूर्व लाडनू पहुंचने की व्यवस्था की। इससे प्रसन्न होकर श्रीमद् जयाचार्य ने अपना अगला चातुर्मास (संवत् १९२१) का जोधपुर फरमाया व इसी प्रकार संवत् १९२४ में भूराजी की दीक्षा को लेकर बवंडर मचा, तब भी भण्डारीजी ने उसे शान्त किया व संवत् १९२५ में फिर श्रीमद् जयाचार्य ने जोधपुर चातुर्मास किया।

राजलदेसर के लछीरामजी वैद वहां के राजा से अनबन होने पर लाडनू आए। उन्होंने पहली पट्टी में दो हवेलियां बनवाईं पर बाद में राजाजी से मुलह होने पर वे वापस चले गए। हवेलियां खाली हो गईं, उन हवेलियों में पीरजी का स्थान था। संवत् १९३१ के शेषकाल में श्रीमद् जयाचार्य आठ संतों सहित इन हवेलियों में विराज रहे थे कि रात को पीरजी ने स्थान खाली करने का निर्देश दिया। श्री जयाचार्य अन्यत्र चले गए। रात्रि को पीरजी ने वहां जाकर श्री जयाचार्य से

क्षमा-याचना की व पुनः हवेली में पधारने का निवेदन किया। श्री जयाचार्य पुनः वहां पधार गए। उस हवेली में एक शताब्दी से अधिक समय तक साधु-संतों का प्रवासस्थल रहा है। अब भी पीरजी का चबूतरा है। पर आज तक पीरजी के कारण किसी को कोई कष्ट नहीं हुआ। पांच-पांच आचार्यों के चातुर्मास व वृद्ध रोगी साधवों के सतत स्थिर-वास के उपरांत भी कभी कोई विघ्न उपस्थित नहीं हुआ।

इसी प्रकार संवत् १९०८ में मुनिश्री सतीदासजी को श्रीमद् जयाचार्य ने आचार्यत्वकाल के प्रथम मिलन के समय अपना परम मित्र व सखा होने के कारण जब अपने आसन पर पास बैठाया तो रात्रि में आभास हुआ कि यह परंपरा ठीक नहीं है। कहा जाता है कि किसी साधु को आचार्य द्वारा अपने आसन पर बिठाने का यह सम्मान प्रथम व संभवतः अन्तिम रहेगा।

### विशिष्टताएँ

आपके युग में दीक्षाओं की विशिष्टता व तपस्या के अनेक कीर्तिमान स्थापित हुए, जिनमें कुछ इस प्रकार हैं :

### दीक्षाएं

१. आपने युवाचार्य अवस्था में पंचमाचार्य मघवा गणि को दीक्षित किया। आचार्यकाल में छठे आचार्य माणक गणि को दीक्षित किया। आपके शासनकाल में मुनिश्री हीरालालजी ने सप्तमाचार्य डालगणी को दीक्षित किया।
२. आपने साध्वी गुलाबोंजी व जेठोंजी को दीक्षित किया जो क्रमशः दूसरी व चौथी साध्वीप्रमुखा बनीं।
३. आपके दीक्षित छः साधु-साध्वी, (१) मुनि छबीलजी, (२) सती भूरोजी, (३) साध्वी गंगोंजी, (४) साध्वी जयकुंवरजी, (५) साध्वी किस्तूरोजी, (६) साध्वी जडावोंजी ने आपसे लगाकर वर्तमान आचार्य तक छः आचार्यों का शासनकाल देखा।
४. मुनि अभयराजजी ने वस्त्राभूषण-सहित दीक्षा ली।
५. साध्वी ज्ञानोजी ने ६० वर्ष की परिपक्व अवस्था में, अपनी बहन साध्वी चतरूजी के हाथों, संवत् १९१० में दीक्षा ली।
६. स्थानकवासी आचार्य अमोलक ऋषि की दादी जुहारोंजी सती ने स्थानकवासी संप्रदाय छोड़कर सं० १९२८ में साध्वी चांदकुंवरजी के पास बीकानेर में दीक्षा ली।

### विशिष्ट तपस्याएँ

१. मुनि माड़ेजी ने दो बार छः मासी (१८१-१८५ दिन) की।
२. मुनि खूबजी ने एक बार संवत् १६१२ में १६३ दिन का तप किया।
३. मुनि अनोपचंदजी ने चार बार छः मासी तप किया। एक बार सवा सात मासी (२१८ दिन) तप किया।
४. साध्वी मलूकोंजी ने दो बार छःमासी तप किया व एक बार चार-मासी।
५. साध्वी गेनोंजी ने तीन बार छःमासी व एक बार चारमासी तप किया।
६. साध्वी गंगोंजी ने १३० दिन का तप।
७. साध्वी साहस्तूजी ने १३० दिन व १६३ दिन का तप किया।
८. साध्वी रंभोजी ने १४२ दिन का व दो बार छः मासी तप किया।
९. साध्वी सुन्दरजी ने तीन बार छः मासी तप किया।
१०. साध्वी जेतोंजी ने दो बार छःमासी व एक बार १२५ दिन का तप किया।

### स्फुट तपस्याएँ

१. मुनि पोकरजी ने एक अढ़ाई मासी, तीन दो मासी व अनेक मास खमण किए।
२. मुनि पन्नालालजी ने उपवास से १६ दिन तक तपस्या की।
३. मुनि दीपचंदजी ने उपवास से लेकर १७ दिन तक की लड़ी की।
४. मुनि भीमजी ने १३ वर्ष तक चौविहार तेले किए व अन्य चौविहार तपस्याएं कीं।
५. मुनि दुलीचंदजी ने १६ महीने पंचोले का तप किया।
६. मुनि पृथ्वीराजजी ने ७ वर्ष एकान्तर, १३ माह तेले तेले तप, दूध का त्याग ४७ वर्ष, गुड-खांड का त्याग ४३ वर्ष व पांच विगय का त्याग ११ वर्ष रखा। उपवास से ६ तक चौविहार तपस्या की।
७. मुनि गणेशजी ने उपवास से २० दिन की तपस्या व कई पंचोले किए।
८. मुनि जवानजी ने ३७ दिन की तपस्या व कई महीनों तक एकान्तर तप किया।
९. से २३. साध्वीश्री चनणोंजी ने मासखमण, श्रीजेतोंजी ने पांचमासी, दो छः मासी व एक साढा छः मासी, श्रीवन्नोजी ने मासखमण,

- श्रीमोतोंजी ने ४३ दिन की तपस्या, श्रीझूमोंजी ने चौमासी व छः बार छमासी, श्रीजसोदाजी ने उपवास से १६ तक की लड़ी, श्रीसुबटोंजी ने १७ तक लड़ी, श्रीजेठोंजी ने २२ तक चौविहार लड़ी, श्रीवरजूजी ने २० तक लड़ी, श्रीमोतोंजी ने २१ तक लड़ी, श्रीकिस्तूरोंजी ने १८ तक, श्रीलिछमोंजी ने १९ तक, श्रीवगतोंजी ने १७ तक, दूसरे श्रीकिस्तूरोंजी ने १६ तक लड़ी व अनेक मासखमण की तपस्याएं कीं ।
२४. साध्वी ज्ञानोंजी ने कई मासखमण किए ।
२५. साध्वी किस्तूरोंजी ने प्रतिवर्ष एक माह बेले बेले तपस्या की ।
२६. साध्वीश्री रिद्धुजी ने ४९ दिन की तपस्या व कई मासखमण व थोकड़े किए ।

## आपके दीक्षित प्रमुख साधु-साध्वी

१-२. मुनि माणकलालजी व २. डालचन्दजी का वर्णन अगले पृष्ठों में है ।

### ३. मुनि पृथ्वीराजजी

आपका जन्म संवत् १९०५ में देसूरी (मारवाड़) में जीतमलजी पोरवाल व उनकी धर्मपत्नी लिछमोजी के घर हुआ, पर बाद में आप उदयपुर गोद चले गये । कुछ वर्षों बाद साधुओं की सत्संगति से आपको वैराग्य हो गया । दीक्षा की अनुमति चाही, पर उसमें आपको कई प्रकार की यातनाएं दी गईं । अंत में आपका दृढ़-संकल्प देखकर अनुमति मिली । कानोड़ में मुनि नाथूजी के हाथ संवत् १९२६ की पौह वदि १० को आपने दीक्षा ली । आप आचार-विचार से निर्मल व विनय-व्यवहार में बड़े कुशल थे । आचार्यप्रवर ने आपको उसी वर्ष अग्रणी बना दिया । आपका समूचा जीवन बड़ा त्याग व तपोमय रहा । आप ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय के बिना एक क्षण भी नहीं गंवाते । चार आगम आपको कंठस्थ थे । प्रतिदिन प्रातः आप ४-५ हजार पदों का अर्थ-सहित स्वाध्याय करते । संवत् १९४८ से ७१ तक प्रतिवर्ष आपने भगवतीसूत्र का वाचन किया । आपने ३३ व्यक्तियों को प्रतिबोध देकर दीक्षा के लिए तैयार किया व २२ साधु-साध्वियों को दीक्षा दी । शासन-स्तम्भ मुनि नथमलजी (रीछोड़) को आपने दीक्षित किया था । संवत् १९७२ से १९८५ तक मुनिश्री का गंगाशहर में स्थिरवास रहा । श्रीमद् कालूगणी उनका बहुत सम्मान करते थे । आपका अनुभव-ज्ञान विशाल था । ज्योतिष की आपको अच्छी जानकारी थी । शुभ स्वप्न भी आपको आया करते थे । आपको समय-समय

पर देवताओं के दर्शन व सन्देशों के आभास होते रहते थे। स्वर्गवास होते ही कई साधु-श्रावकों ने आपके देवयोनिसे तुरन्त आकर दर्शन किए, जिनमें देरासर वाले लाभूरामजी चौपड़ा, भींवराजजी बोथरा (पुनरासर वाले) की धर्मपत्नी भीखीबाई, मुनि आनन्दमलजी आदि का नाम लिया जा सकता है। ऐसी जनश्रुति है कि उन्हें वचनसिद्धि प्राप्त थी— जो कहते, वैसा घटित हो जाता।<sup>1</sup> चौदह साल गंगाशहर स्थिरवास में रहकर वहाँ के धर्म-संस्कारों को आपने पुष्ट बनाया। आज भी गंगाशहर की भक्ति व कर्तव्यनिष्ठा के पीछे उनका ही श्रम बोल रहा है। आपका स्वर्गवास संवत् १६८५ के प्रथम श्रावण शुक्ला ६ को प्रभात के समय हुआ। युगप्रधान आचार्य तुलसी ने जयाचार्य निर्वाण शताब्दी पर आपको 'शासन स्तंभ' से उपमित किया।

#### ४. मुनि छबीलजी

आपका जन्म बगड़ी (मारवाड़) में संवत् १६१६ के फागुन सुदि १५ को उम्मेदमलजी कटारिया व उनकी धर्मपत्नी दौलोंजी के घर पर हुआ। शैशवावस्था में भयंकर रोगग्रस्त होने व बचने की आशा न रहने पर, आपकी माता ने बच्चे की भावना होने पर दीक्षा की अनुमति में बाधा न डालने का संकल्प किया। संयोग से आप बच गए। संवत् १६२८ माघ शुक्ला ८ को आपने व आपकी माता ने श्रीमद् जयाचार्य के हाथों दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के बाद चार वर्ष (संवत् २६ से ३२) श्रीमद् जयाचार्य की सेवा में व १४ वर्ष (संवत् १६३३ से ४६) मुनिश्री कालूजी (बड़ा) की सेवा में रहे। बीच में संवत् १६३४ व ३५ में श्रीमद् जयाचार्य के साथ व संवत् १६४० में श्रीमद् मघवा गणिके साथ रहे। कालूजी स्वामीजी के साथ रहकर आपने अद्भुत ज्ञानाराधना की। संवत् १६३६ में श्रीमद् जयाचार्य सुखपाल में बैठकर जयपुर पधारे, तब सुखपाल के कंधे देने वालों में मुनि मयाचंदजी, रामसुखजी, ईश्वरजी के साथ चौथे मुनि आप थे। संवत् १६३७ में आपके प्रयत्न से कालूजी स्वामी व जेठमलजी गधैया के बीच वार्ता हो सकी व उसका वांछित परिणाम हुआ। संवत् १६५० में आप अग्रणी बने। आपकी व्याख्यान-कला बेजोड़ थी। आपने ११ साधु व ३ साधिवियों को दीक्षा के लिए तैयार किया। संवत् १६६० से २००० तक आप चाड़वास में स्थिरवासी रहे। आपने अनेक प्रकार के त्याग तपस्या करके आत्मा को उज्ज्वल बनाया। अन्त में पन्द्रह दिन की तपस्या व १८ दिन का आमरण अनशन कर संवत् २००२ की श्रावण शुक्ला २ को आपने

१. शासन समुद्र, भाग ८ में पृ० १५५-१६० तक वर्णित संस्मरणों के आधार पर।



७६ हे प्रभो ! तेरापंथ

शरीर छोड़ा। तेरापंथ के छः आचार्यों का शासनकाल देखने वाले भाग्यशाली मुनि आप ही एकमात्र हुए।

#### ५. मुनि फौजमलजी (फौजी लाट)

आपका जन्म लाटोती में ओमजी श्री श्रीमाल के यहां हुआ। आपने संवत् १६३० मिंगसर वदि १३ को दीक्षा ली। आपका स्वर्गवास संवत् १६७६ चैत वदि ३० को हुआ। आपको जैनागमों का गहरा ज्ञान था। भाषा, व्याकरणकोष, काव्य, न्याय, छन्द के विज्ञ थे व प्रमुख चर्चावादी थे। आपने शासन की खूब प्रभावना बढ़ाई व आचार्यश्री तुलसी ने आपको 'शासन-स्तंभ' की उपमा दी।

#### ६. महासती गुलाबोंजी

आप पंचमाचार्य मधवागणी की बहन थीं। आपका जन्म संवत् १६०१ कार्तिक सुदी में हुआ। संवत् १६०७ में सरदार संती ने आपके मकान में ठहरकर आपकी विधवा मां को दीक्षा लेने की प्रेरणा दी। संवत् १६०८ में युवाचार्य जीतमलजी के बीदासर चातुर्मास में सेवा-संपर्क बढ़ने से तीनों (भाई, बहन व मां) दीक्षा की तैयारी में लग गए। १६०८ के फागुण वदि ६ को गुलाबकुमारी व बन्नोजी ने श्रीमद् जयाचार्य के हाथों दीक्षा स्वीकार की। जयाचार्य के हाथों यह प्रथम कुमारी कन्या की दीक्षा थी। एक चातुर्मास को छोड़कर वे आजीवन गुरु-सेवा में रहीं। आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। थोड़े ही समय में अनेक दोहे, छन्द, गीतिकाएं आदि कंठस्थ कर लिये। समय-समय पर जब आप सुरीली लय व उन्नत स्वर से अस्खलित रूप से दोहे, छन्द, गीतिकाएं, श्लोक सुनातीं, तो जनता उमड़ पड़ती। संवत् १६१० में रतलाम में आपको चेचक निकल आयी। बाल्यावस्था से आप गुरु-आज्ञा-पालन में बड़ी सगज थीं। एक बार लाडनू में आपको इधर-उधर घूमते देखकर श्रीमद् जयाचार्य ने कहा, "यों कैसे फिर रही हो? जाओ, उस टोड़ीवाला (बड़ा आला) में बैठकर स्वाध्याय करो।" आप जाकर बैठ गईं व घंटों ध्यान, जप, स्मरण करती रहीं और उठें ही नहीं। दोपहर भोजन के समय श्रीमद् जयाचार्य को ध्यान आया और तब उन्होंने आपको बुलाया। आपकी अनुशासन-निष्ठा से वे बहुत प्रसन्न हुए। आचार्यप्रवर के समक्ष भी दोपहर में संतों के ठिकाने आप व्याख्यान देती थीं। आपका व्याख्यान अत्यन्त सरस व प्रभावोत्पादक होता था। साधवी-समाज में सर्वप्रथम संस्कृत व व्याकरण का अध्ययन आपने ही किया। पद्य रचना करने का भी प्रथम श्रेय आप ही को है। आपकी लिपि सुन्दर थी। जयाचार्य 'भगवती री जोड़' व अन्यान्य रचनाएं करते जाते व आप तत्काल लिपिबद्ध करती जातीं। महर्षि वेदव्यास के लिपिकार श्रीगणेश की तरह ही आपने यह कार्य किया। आपने आगम कंठस्थ किए। आपकी शरीर की त्वचा इतनी

कोमल और पारदर्शक थी कि जब आप पानी पीतीं तो वह गले से उतरता दिखाई देता। आपकी सुन्दरता अद्वितीय थी। आपके दर्शन कर पंडितों को लगता कि वे साक्षात् सरस्वती के दर्शन कर रहे हैं। संवत् १६२७ पौह सुदि ८ को आपको साध्वीप्रमुखा नियुक्त किया गया। आपने श्रीमद् जयाचार्य को अन्तिम समय में शुभ भावना बढ़ाने में बहुत सहयोग दिया। साध्वी-समाज आपके स्नेहपूर्ण व्यवहार से श्रद्धावनत रहता था। छाती पर गांठ के घाव से आप अस्वस्थ हो गईं। शारीरिक दौर्बल्य के कारण संवत् १६४२ पौह वदि ६ को जोधपुर में छः प्रहर के सागारी व सवा प्रहर के चौविहार अनशन में आपका स्वर्गवास हो गया।

### ७. महासती जेठोंजी

आप चुरू के सेवारामजी नाहटा व उनकी पत्नी कानकुंवरजी की पुत्री थीं। आपका जन्म संवत् १६०१ में हुआ। लघु वय में आपका विवाह हुआ। कुछ वर्ष बाद पति-वियोग हो गया। संवत् १६१६ की आसाढ़ शुक्ला ३ को १६ वर्ष की आयु में श्रीमद् जयाचार्य ने आपको दीक्षा दी। आपका शरीर सुगठित व शौर्य-सम्पन्न था। आपमें संयम-निष्ठा, संधीय भावना, गुरु-भक्ति, अनुशासनबद्धता, विनय, विवेक, कला-कुशलता, कार्यक्षमता, त्याग-विराग, सेवा-चर्या आदि अनेक गुण थे। संवत् १६५४ आसाढ़ वदि ५ को बीदासर में श्रीमद् डालगणि ने आपको साध्वीप्रमुखा के पद पर नियुक्त किया व उन्हें नाम न लेकर 'महासती' से सम्बोधित करने का संघ को निर्देश दिया। उपालम्भ सहन करने की उनमें अद्भुत शक्ति थी। श्रीमद् डालगणि जैसे तेजस्वी आचार्य का स्नेह व सम्मान इसी कारण वे पा सकीं। श्रीमद् कालूगणि ने भी उन्हें बहुमान दिया। साध्वी-समाज का नेतृत्व उन्होंने अत्यन्त कुशलता से किया। उन्होंने उपवास से २२ दिन (१७ को छोड़कर) तक चौविहार लड़ीबद्ध तप किया। संवत् १६७३ से १६८१ तप आप राजलदेसर में स्थिरवासिनी रहीं।

संवत् १६८१ की कार्तिक शुक्ला ६ को प्रातः ११ बजे आपने शरीर छोड़ दिया।

### श्रीमद् जयाचार्य का दीक्षित साध्वी-समाज

साध्वी जेठोंजी और झूमोंजी ने क्रमशः तीन बार व छः बार छः मासी तपस्या की। साध्वी गुलाबोंजी व जेठोंजी साध्वीप्रमुखा बनीं। साध्वी भूरोंजी, गंगोंजी, जयकुंवरजी, किस्तूरोजी, जडाबोंजी ने छः आचार्यों का शासनकाल देखा। साध्वी रायकुंवरजी व्याख्यानी, चर्चावादी, आगम अध्येता व साहसी अग्रगण्य रहीं। साध्वी जड़ाबोंजी पुरानी रागों की अच्छी गायिका थीं। साध्वी गंगोंजी प्रमुख अग्रगण्या, प्रतिष्ठित चर्चावादी, निर्भीक, दूरदर्शी व महान् प्रेरक साध्वी थीं। इनके

जीवन के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी 'शासन समुद्र, भाग ६' (लेखक मुनिश्री न वरत्नमलजी) से की जा सकती है।

### श्रावक समाज

श्रीमद् जयाचार्य के शासनकाल में श्रावक समाज का बहुत उज्ज्वल इतिहास रहा है। ऐसा लगता था कि समूचे देश में श्रावकगण भी तेरापंथ की धर्मक्रांति को आगे बढ़ाने व उसमें निखार लाने में किसी प्रकार आचार्यों अथवा साधु-साधवियों से पीछे नहीं रहे। उनमें से कतिपय श्रावकों की सूची इस प्रकार है—

१. मयाचन्दजी अग्रवाल — रतलाम निवासी, दृढ़धर्मी, तत्त्वज्ञ व चर्चावादी।
२. लिछमणदासजी खारड़ (जयपुर) — धर्मनिष्ठ, माणकगण के बड़े बाप व प्रेरक।
३. किशनलालजी खंडेलवाल (जयपुर) — धर्मभीरू, विरागी व मृदुभाषी।
४. मन्नालालजी काला (जयपुर) — आशुतोष, चर्चावादी व गीतकार।
५. भोपजी सिधी (भीलवाड़ा) — शासन-हितैषी, श्रद्धालु व एकनिष्ठाशील।
६. पन्नराजजी लूणिया (जयपुर) — श्रीमद् जयाचार्य से सट्टा खेलने का त्याग किया व आजीवन निभाया। अत्यन्त विश्वासी मित्र व सौजन्यशील।
७. सुखराजजी भण्डारी (जोधपुर) — संघ-हितैषी, दृढ़ निष्ठावान व प्रसिद्ध कवि। आचार्यों व साधुओं की संस्तुति में ही काव्य-कला का उपयोग। उनका प्रसिद्ध दोहा है—

‘चाहत सिर स्पर्शन चरण, परश्रुति चाहत बैन,

जीभ जपत गुण जीतरा, दर्शन चाहत नैन ॥

८. रामचंदजी कोठारी (जयपुर) — प्रथम श्रावक, निपुण व्यापारी, जागरूक।
९. सरदारमलजी लूणिया (जयपुर) — सम्मानित समाजसेवी व धार्मिक।
१०. विरधीजी कोठारी (गोगूदा) — निर्भीक, दृढ़-व्रती, शासनसेवी।
११. भैरूलालजी सींघड़ (जयपुर) — नीतिवान, चतुर, सेवाभावी व विश्वस्त। आपकी हवेली में आचार्यों, साधुओं, साधिवों के अनेक चातुर्मास हुए। श्रीमद् जयाचार्य ने वहीं देह-त्याग किया।
१२. गंभीरमलजी सिधी (भीलवाड़ा) — त्यागी, प्रत्याख्यानी एवं विश्वस्त श्रावक।
१३. राहीरामजी अग्रवाल (सिसाय) — हरियाणा के आद्य श्रावक, उत्कृष्ट धार्मिक।
१४. लालचन्दजी पाटणी (लाडनू) — लाडनू के प्रथम श्रावक, तत्त्वज्ञ, संघ-समर्पित।
१५. उत्तमचन्दजी बैगानी (बीदासर) — निर्भीक, सम्मानित एवं गुरुभवत।

१६. हेमजी कच्छावत (गोगुन्दा)— दृढ़ श्रद्धालु, चर्चावादी एवं गहरे संस्कारी ।
१७. ताराचन्दजी ढीलीवाल (चित्तौड़)—सेवानिष्ठ, समाचार-प्रेषक, दानदाता ।
१८. दुलीचंदजी दूगड़ (लाडनूँ)— अगाध निष्ठा, निश्छल, निर्भय, अध्यात्मशील ।  
मुनिपतजी की दीक्षा सम्बन्धी उपसर्ग में शासन-सुरक्षा हेतु अग्रणी श्रावक ।
१९. संतोषचन्दजी सेठिया (रीडी) — राज्य में सम्मानित, व्यवहारकुशल, नीति-निपुण एवं कर्मशील श्रावक ।
२०. नगराजजी बैगाणी (बीदासर)— भविष्यद्रष्टा, सत्परामर्शी, दृढ़धर्मी ।
२१. मेघराजजी आंचलिया (सरदारशहर)— सरदारशहर के सामूहिक श्रद्धा स्वीकरण में अग्रणी, आत्मनियंत्रक, जयपुर से आपके नाम पत्र ने सरदार-शहर का कायापलट कर दिया । टालोंकरों से भ्रमित लोगों ने सामूहिक श्रद्धा स्वीकार की ।
२२. शोभाचंदजी बैगाणी प्रथम (बीदासर)— स्थली प्रांत के प्रथम श्रावक ।  
तेरापंथ प्रचार के प्रेरक । श्रीमद् ऋषिराय के प्रथम चातुर्मास में अनुपम सहयोग । निर्भीक एवं सत्यनिष्ठ श्रावक ।
२३. बहादुरमलजी भण्डारी (जोधपुर)—राज्य के उच्चाधिकारी एवं मंत्री परिषद् के सदस्य । राज्य व्यवस्था में सुधार करने वाले, दृढ़ श्रद्धालु एवं शासन-सेवी । श्री मुनिपतजी की दीक्षा के संबंध में जोधपुर के राजा ने जब श्रीमद् जयाचार्य व श्री मुनिपतजी के नाम वारंट जारी करवाए तब आपने बुद्धि-कौशल व चातुर्य से राजमहल में जाकर रात्रि को राजा को प्रभावित कर वारंट निरस्त करने का आदेश प्राप्त किया । अपने पुत्र के साथ शीघ्रगामी वाहन अंटनी से वारंट पहुंचने के पूर्व उसे लाडनूँ भिजवाया । उनकी इस अद्वितीय सेवा से प्रसन्न होकर श्रीमद् जयाचार्य ने पुरस्कार-स्वरूप अगला चातुर्मास (संवत् १६२१ का) जोधपुर में किया । संवत् १६२४ में साध्वी भूरोंजी की दीक्षा को लेकर विग्रह चला । उसके समाधान में भी भण्डारीजी का सहयोग रहा । इसी कारण संवत् १६२५ का चातुर्मास फिर जोधपुर को मिला । श्रीमद् जयाचार्य से लगाकर श्रीमद् कालूगणिजी तक आचार्यों के छः चातुर्मास आपकी हवेली में हुए । सारे चातुर्मासों में आपकी व आपके वंशजों की पूर्ण सेवाएं रहीं । आचार्यश्री तुलसी के शासनकाल में भी आपके वंशज श्री संपतमलजी भण्डारी व श्री जबरमलजी भण्डारी की अनुपम शासन-सेवाएं रही हैं । जोधपुर में तेरापंथ के उदय और उत्कर्ष का इतिहास बहादुरमलजी भण्डारी व उनके परिवार के उदय व उत्कर्ष के साथ ही जुड़ा है । श्रीमद् जयाचार्य के स्वर्गवास के समय आपके परिश्रम से शवयात्रा के समय जयपुर राज्य ने लवाजमा

८० हे प्रभो ! तेरापंथ

भेजा । आपकी भावना के अनुरूप आपका देहावसान संवत् १६४२ भाद्रवा सुदि १० को हुआ । तब श्री मघवागणि का चातुर्मास जोधपुर में था । अन्त समय तक वे सेवा, दर्शन व अध्यात्म-लाभ देते रहे ।

२४. फौजमली तलेसरा (नाथद्वारा)—महान् श्रावक, गुरुभक्त, राज्य-सम्मानित । आपकी हवेली में संवत् १६०७ से ८७ तक ८१ वर्ष आचार्यों व साधु-साध्वियों के लगातार चातुर्मास हुए । आप महान् गुरुभक्त थे । प्रतिवर्ष गुरु-सेवा में जाते व ठाट-बाट से काफी समय सेवा करते ।

## ४. मर्यादा-अनुशासन का पुष्टिकाल

### पंचमाचार्य श्री मघवागणि

(संवत् १९३८-१९४९)

#### जन्म, वंश-परिचय

मघवागणि का जन्म संवत् १८९७ के चैत्र शुक्ला ११ रविवार को बीदासर में हुआ, इनके पिता का नाम पूरणमलजी बेंगाणी व माता का नाम बन्नोजी था। संवत् १९०१ के कार्तिक माह में आपकी छोटी बहन गुलाब कुंवर का जन्म हुआ, दोनों भाई-बहनों का आकार-प्रत्याकार व सहज सौन्दर्य युगलों (यौगलिक पुरुष) के सदृश था। वे प्रतिदिन चन्द्रकला की तरह वृद्धिगत होने लगे। आपकी अल्पायु में आपके पिता का देहान्त हो गया। एक बार सरदार सती बीदासर आए, तथा उनके स्थान पर ठहरे। उन्होंने धार्मिक संस्कार भरने और तत्त्व ज्ञान कंठस्थ करने की प्रेरणा दी। श्रीमद् जयाचार्य ने स्वरूपचन्द्रजी आदि १२ सन्तों सहित संवत् १९०८ का चातुर्मास बीदासर किया। उस समय बन्नोजी व उनके दोनों पुत्र-पुत्री दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए, पर गुलाब कुंवर के दीक्षा कल्प न आने के कारण उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ी। मघवागणि के बाल साधियों को उनके दीक्षा लेने का पता लगा, तो उन्होंने इसे ही खेल का विषय बना लिया। सब बालक मघराजजी को सम्बोधित करते हुए कहते, 'मत्थेण वंदामि, मघजी स्वामी' एक बालक मघजी का अभिनय कर कहता 'जी' और फिर सब बालक समवेत स्वरों से गाते, 'थारे पातरे में घी, बैठयो ठण्डो पानी पी।' जयाचार्य ने जब यह बात सुनी तो इसे शुभ शकुन मानकर कहा, 'बालक मघवा संघ का महान् प्रभावशाली व पुण्यवान साधु होगा।'।

#### दीक्षा प्रसंग

मघवा की उत्कट अभिलाषा व बन्नोजी की प्रार्थना पर श्रीमद् जयाचार्य ने मगसिर वदि ५ को मघवा को दीक्षा देना स्वीकार किया। अभिभावक जनों ने उत्साहपूर्वक दीक्षा के उत्सव मनाए व मगसिर वदि ५ को मघराजजी अपने चाचा पोमराजजी के साथ भोजन करने के बाद, घोड़ी पर बैठकर, दीक्षा के लिए प्रस्थान

करने लगे, कि रास्ते में किसी व्यक्ति ने उनके चाचा पर व्यय करते हुए कहा 'इस सुन्दर सलोने बालक का पिता मौजूद होता तो क्या उसे इस तरह घर से निकालता, अच्छा है इसके जाने से इस चाचा को घर की पूरी धन-सम्पदा मिल जाएगी, हिस्सा नहीं करना पड़ेगा। चाचा का खुद का बेटा दीक्षा लेता तो इनकी खुशी-नाखुशी का पता लगता।' इतना सुनते ही पोमराजजी के हृदय पर चोट लगी और वे बिना सोचे-समझे, मघवा को घोड़ी से उतार कर, गोद में उठाए वहाँ के जागीरदार के गढ़ में घुस गए। दीक्षा में अकल्पित बाधा आ गई और उस दिन दीक्षा नहीं हो सकी। बालक मघवा को गढ़ में रखा गया और उसका ठाकुर ने हर तरह से परीक्षण किया पर अन्त में उसकी दीक्षा लेने की दृढ़ भावना व अडिग संकल्प देखकर उसे भेज दिया गया। श्रीमद् जयाचार्य तब तक लाडनू पधार गए। श्री मघवा तथा उनकी माता लाडनू गए, पुनः दीक्षा के लिए प्रार्थना की और चाचा के बांधक न बनने की भावना बतलाई। श्रीमद् जयाचार्य ने संवत् १९०८ मगसिर वदि १२ को लाडनू शहर के बाहर पीरजी के स्थान पर हजारों व्यक्तियों की उपस्थिति में मघवा को दीक्षा दी, गुलाब सतो के दीक्षा का कल्प आने पर उन्हें तथा उनकी माता बन्नोजी को संवत् १९०८ फागुण वदि ६ को बीदासर में दीक्षित किया। मघवा की दीक्षा के समय आचार्यश्री ऋषिरायजी रावलियों (मेवाड़) बिराज रहे थे। युवाचार्य द्वारा प्रदत्त दीक्षा की सूचना मिलते ही उन्हें छींक आई, तो उन्होंने कहा, 'लगता है साधु दीपता होगा।' फिर दूसरी छींक आई तब कहा, 'यह अग्रगण्य के योग्य होगा।' इतने में फिर तीसरी छींक आई तो उन्होंने कहा, 'यह तो जीतमल का भार सम्भाल ले, तो आश्चर्य नहीं।' श्रीमद् ऋषिराय का इस दीक्षा के दो माह बाद देहावसान हो गया और वे बाल मुनि को देख भी नहीं सके, पर उनकी भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य निकली।

## शिक्षा

संवत् १९०८ के माघ शुक्ला १५ को श्रीमद् जयाचार्य बीदासर में आचार्य के पद पर आसीन हुए व उनके सान्निध्य में अपने संयम-साधना में दत्तचित्त होकर विद्याभ्यास किया। आपकी बुद्धि प्रबल व स्थिर थी। आपने आवश्यक, दशवैकालिक आचारांग, वृहत्कल्पसूत्र कंठस्थ किए, अन्य आगमों की सैकड़ों गाथाएं सीखीं, अनेक बार बत्तीस आगमों का वाचन किया व सूक्ष्म आगम रहस्यों की जानकारी की। अनेक व्याख्यान, छंद श्लोक, प्रबन्ध कंठाग्र किए। सारस्वत व्याकरण का पूर्वार्ध व चन्द्रिका व्याकरण का उत्तरार्ध सीखकर संस्कृत भाषा के विज्ञ बने। चन्द्र और जिनेन्द्र व्याकरण, जैनागमों की टीका, काव्य, कोश, छंद, न्याय आदि ग्रन्थों का भननपूर्वक अध्ययन किया। उनका ज्ञान व धारणा-शक्ति इतनी विकसित थी कि वे गूढ़ प्रश्नों का तत्काल उत्तर देकर प्रश्नकर्ता को सन्तुष्ट व प्रभावित कर देते।

उनकी चित्तवृत्ति इतनी स्थिर व एकाग्र थी कि दूसरी तरफ उनका ध्यान ही नहीं जाता। एक बार दीवार की ओर मुंह करके वे स्वाध्याय कर रहे थे कि श्रीमद् जयाचार्य ने उनकी स्थैर्यवृत्ति की परीक्षा हेतु एक साधु को, उनकी पीठ पर रेत डालने को कहा। गुरु के आग्रह से, वह पीठ पर रेत डाल कर आ गया। मधवा उठे और शरीर झाड़कर बैठ गये। श्रीमद् जयाचार्य ने पूछा, 'क्या हुआ?' तो आपने कहा, 'धूल गिर गई थी सो पोंछ ली।' श्रीमद् जयाचार्य ने कहा, 'किसने गिराई?' आपने कहा, 'एक साधु निकला था, उसके हाथ से गिर गई होगी?' श्रीमद् जयाचार्य ने फिर पूछा, 'पता तो लगाते वह कौन था?' आपने उसी शान्त भाव से कहा, 'पता क्या लगाना? जानकर तो कोई गिराता नहीं। भूल से गिर गई तो वह भी क्या करता? रेगिस्तान में वैसे ही बहुत आंधियां चलती हैं व रेत गिरती रहती है। उसे झड़का लेते हैं, वैसे ही इसे भी झड़का दिया।' ऐसी थी आपकी समता वृत्ति व चित्त की स्थिरता।

श्रीमद् जयाचार्य का आपके प्रति अत्यन्त वात्सल्य भाव था। संवत् १९११ की मालवायात्रा में, आपको इंदौर में मोतीझरा, हो गया तब आपके अनुग्रह पर श्रीमद् जयाचार्य काफी समय इंदौर ठहरे व आपके कुछ ठीक होने पर, साधुओं से उठवा कर मधवा को इंदौर से उज्जैन तक साथ रखा। इसी प्रकार संवत् १९१३ में कालू गांव में आपको चेचक की बीमारी हुई, तब उस छोटे गांव में श्रीमद् जयाचार्य आहार पानी की कमी के उपरांत भी २७ दिन ठहरे। आप जीवन भर श्री जयाचार्य की प्रतिच्छाया बनकर उनके साथ रहे। संवत् १९१३ में श्रीमद् जयाचार्य विहार कर जैतारण पधार रहे थे तो एक साधु ने पहेली रखी—

“आगे जैतारण, लारे जैतारण, बीच में चालो आपां  
इण आड़ी रो अर्थ बतावें, तिण ने पंडित थांपां।”

मुनि मधवा ने तत्काल अर्थ बताते कहा 'आगे जैतारण गांव है, पीछे जगत को तारणे वाले श्री जयाचार्य हैं और बीच में हम हैं।' तब से साधु जन आपको 'पंडित' कहकर संबोधित करने लगे। कोई संस्कृत विद्वान आता तो श्री जयाचार्य भी उसे आपसे संपर्क करने को कहते। संवत् १९४८ के जयपुर चातुर्मास में पंडित दुर्गादत्तजी को संस्कृत व्याकरण के संबंध में बातचीत करने, आपने सारस्वत का पाठ सुनाया तो उन्होंने पूछा, 'क्या आप अब तक व्याकरण दुहराते रहते हैं?' आपने कहा, 'नहीं, संवत् १९२२ पाली चातुर्मास में, मैंने श्रीमद् जयाचार्य को यह पाठ सुनाया था व २६ वर्ष बाद आज फिर उसे दुहरा रहा हूं, बीच में कभी सुनने-सुनाने का काम नहीं पड़ा।' ऐसी विलक्षण बुद्धि थी आपकी!



## सम्मान

श्रीमद् जयाचार्य ने शासन-व्यवस्था से दण्ड-व्यवस्था को पृथक् करने का प्रयोग किया व पांच संतों का पंचमण्डल दण्ड-निर्धारण के लिए बनाया। मुनि कालूजी (बड़ा) से एक बार गलती हो गई पर उन्हें पंचों से न्याय की आशा नहीं थी, अतः जयाचार्य ने श्री मधवा को उन पांच पंचों पर सरपंच नियुक्त कर दिया। उस समय आपकी अवस्था १४ वर्ष की थी, पर बड़े सन्तो का भी आप पर बहुत विश्वास था। संवत् १९१३ में खैरवा में श्रीमद् जयाचार्य के आंखों में गड़बड़ होने पर उनके आदेश से, आपने हाजरी सुनाई। संवत् १९१९ जेठ वदि १४ को श्री जयाचार्य ने आपकी संघीय सेवा से प्रसन्न होकर, आपको पांती के सब काम व सामूहिक बोझ-भार से मुक्त कर दिया। वैसे भी आपका नाम भावी आचार्य के रूप में श्री जयाचार्य के मानस में उभर रहा था, वे कभी-कभी प्रकट भी कर देते थे। श्रीमद् जयाचार्य को साहित्य-सृजन व स्वाध्याय में निरंतर लगे रहने के कारण, संघ-व्यवस्थाओं के लिए उन्हें उत्तराधिकारी चुनना आवश्यक लगा अतः संवत् १९२० के आसोज वदि १३ को चूरू में मात्र चौबीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने आपको अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। आपने १८ वर्ष तक युवाचार्य रहकर संघ-व्यवस्था का कार्य पूर्ण उत्तरदायित्व व सजगता से निभाया। श्री जयाचार्य सौभाग्यशाली थे कि उन्हें ऐसा शिष्य मिला। वैसे श्री मधराजजी भी कम सौभाग्यशाली नहीं थे कि श्रीमद् जयाचार्य के जीवनकाल में ही, छागजी चतुरभुजजी ने संघ से निकलकर भारी विद्रोह किया जो उनके जीवनकाल में ही शांत हो गया तथा आगे के लिए संघ-व्यवस्था का कार्य प्रशस्त व निष्कंटक हो गया।

आपकी निरभिमानता व लाघव वृत्ति की अनेक घटनाएं इतिहास-प्रसिद्ध हैं। साधु साध्वियों के आहार के बाद या विभाजन करते समय अन्न कण नीचे बिखर जाते, उसे हाथ में बटोरकर बहुधा आप खाया करते। लाडलू में आप वैदों की हवेली के नीचे व्याख्यान दे रहे थे, उसमें कुछ गलती हो गई। श्री जयाचार्य ऊपर बैठे थे। उन्होंने गुलाब सती के निवेदन पर स्वयं प्रवचन हेतु जाकर मधवा को भारी उपालंभ दिया, जो आपने निश्छल भाव से स्वीकार किया। दूसरे दिन श्री जयाचार्य ने पुनः व्याख्यान देने हेतु पधार कर मधवा के सहनशीलता व विनम्रता की सराहना की। आप दोनों दिन निंदा व प्रशंसा में समभाव रहे। आप लिपि कला में बहुत दक्ष थे। आपने हजारों पद्य लिपिबद्ध किए। आपका व्याख्यान-कौशल, प्रतिपादन-शैली एवं भावाभिव्यक्ति से जनता मंत्रमुग्ध हो जाती थी। श्रीमद् जयाचार्य हर नये नियम व मर्यादा का प्रथम प्रयोग आप पर करते थे। संवत् १९३८ भादवा वदि १२ को जयाचार्य के स्वर्ग-गमन के पूर्व तक आपने तन्मयता से उनकी सेवा-सुश्रूषा की।

### आचार्य पद पर

आप संवत् १९३८ के भादवा शुक्ला २ को पट्टासीन हुए पर प्रगाढ़ गुरु भक्ति के कारण आपने जीवन पर्यन्त श्री जयाचार्य के पट्टोत्सव माघ शुक्ला १५ को ही मनाया। अपने पट्टोत्सव का दिन कभी नहीं मनाया। आप पट्टासीन हुए तब संघ में ७१ माधु तथा २०५ साध्वियां थीं। २७ गांवों के हजारों यात्रियों ने मिल कर आपका अभिनन्दन किया। आपने उसी दिन ठठेरे के कुएं के पास वटवृक्ष के नीचे मुनि हरदयालजी को दीक्षित किया, फिर प्रवचन दिया और ताराचन्दजी ढीलीबाल (चित्तौड़) के डेरे जाकर भिक्षा ग्रहण की। आचार्य पद पर भी, आप किसी से सेवा लेना पसंद नहीं करते। गर्मियों में हवा बंद होने पर, रात्रि को पट से नीचे उतरकर, सामान्य माधुओं के बीच स्थान देखकर स्वयं बिछौना कर सो जाते। आपको सारे संघ का अखण्ड विश्वास प्राप्त था। संघ से पृथक् मुनि छोगजी कहा करते थे कि उन्हें मघराजजी से कोई शिकायत नहीं है और वे अकेली स्त्री के निकट एकांत में भी रह जाएं तो उनके विषय में कोई शंका नहीं की जा सकती। पौद्गलिक पदार्थों से वे सर्वथा निस्पृह थे। वर्षा ऋतु में हरियाली या जल-बिंदुओं का स्पर्श हो जाता, तो उनको पसीना आ जाता। उन्होंने अपने जीवनकाल में संस्कृत की स्फुट कविताएं, राजस्थानी भाषा में 'जय सृजस' आदि काव्य ग्रन्थों तथा अन्य स्तुतिकाओं की रचना की। वे परिषद् में 'भरत-बाहबलि' संस्कृत काव्य का ओजस्वी भाषा में वाचन करते तो जनता भाव-विभोर हो जाती। एक बार जनता की मांग पर २० वर्ष पूर्व कंठस्थ किए, हरिवंश के कतिपय प्रसंगों को, आपने दुहरा कर सुना दिया।

### धर्म-प्रचार-प्रसार

जयपुर से आपका प्रथम विहार थली की ओर हुआ व सरदार शहर सबसे पहले पधारे। वहां टालोकरो का संगठन टूटने के बाद श्रावक समाज को संगठित एवं प्रेरित किया। रीड़ी, राजगढ़ आदि क्षेत्रों में जाकर लोगों की जिज्ञासाएं शान्त कीं। वहां से मेवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों में विहार करते संवत् १९४३ का चातुर्मास उदयपुर किया। संवत्सरी के बाद आपने स्थानक में जाकर क्षमायाचना की, चातुर्मास में अच्छी धर्म-जागरणा हुई। चातुर्मास के बाद आप कविराज सांवलदानजी की बाड़ी में कुछ दिन विराजे। कविराजजी राज्य सम्मानित व्यक्ति तथा आपके भक्त थे। कविराजजी की प्रेरणा से महाराणा फतेसिंहजी वहां आपके दर्शन करने आए, पर निश्चित समय के बाद, विलम्ब से आए। लगातार २२ मिनट तक आपका उपदेश सुनते रहे, पर ज्योंही सूर्यास्त हुआ और प्रतिक्रमण का समय आया तो आपने उपदेश देना बंद कर, महाराणाजी को कहा, 'बस समय हो गया।' महाराणा

तत्काल उठे और चल दिए। कविराजजी तथा जनता को आपके इस व्यवहार से चिंता हुई पर महलों में जाकर महाराणाजी ने आपके नियम निष्ठा एवं निस्पृहता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इससे सर्वत्र आपकी तथा धर्मसंघ की महिमा फैली। कविराजजी के विशेष निवेदन पर आपने 'माणकलालजी' को अपना उत्तराधिकारी बनाने का संकेत दिया। उदयपुर से विहार कर गंगापुर आदि गांवों में आपने सामाजिक धड़ेबंदी मिटाकर सौहार्द पैदा किया। रेलमगरा में साध्वी सुन्दरजी तथा दौलतगढ़ में साध्वी रंभाजी को क्रमशः सवा छः-साढ़े छः माह की तपस्या का अपने हाथों पारणा करवाया। संवत् १९४२ में गुलाब सती के निधन पर आपने साध्वी नवलोजी को साध्वीप्रमुखा बनाया। संवत् १९४१ तथा ४५ के चातुर्मास सरदारशहर, १९४२ का जोधपुर, १९४७ का बीदासर और १९४९ का चातुर्मास रतनगढ़ किए। १९४४ का मर्यादा-महोत्सव आपने बीकानेर में किया, वहां १५ संवेगी मुनि एवं यतिगण आपसे चर्चा करने आए, आपने सबको संतुष्ट किया। आप श्री पूज्यजी के उपाश्रय में भी पधारे। आपको रास्ते में स्थानकवासी आर्याएं मिलतीं तो श्रद्धाभक्तिपूर्वक वंदन करतीं। संवत् १९४७ में शीतकाल में आप जयपुर जाते कुचामण पधारे। वहा के ठाकुर केसरसिंहजी को जीवन सुधारने हेतु मद्य-मांस न खाने, शिकार न करने, चतुर्दशी के दिन हरियाली न खाने के संकल्प कराए।

### महाप्रयाण

संवत् १९४९ के रतनगढ़ चातुर्मास के प्रारंभ में आपको प्रतिस्त्राय हुआ जो बिगड़ कर खांसी, ज्वर व वमन में परिवर्तित हो गया, जिससे आपका शरीर दुर्बल हो गया, पर उस स्थिति में भी राजलदेसर, रतनगढ़ होते हुए आपने सरदार शहर में मर्यादा महोत्सव मनाया। आत्मबल से संघ के सारे कार्य यथावत् किए, चतुर्विध संघ को शिक्षाएं दीं। फागुण सुदि ४ को आपने युवाचार्य मनोनयन पत्र लिखकर साध्वी नवलोजी को दिया। आलोचना, हाजरी का काम माणकगणि को सौंप दिया तथा कई बखशीशें भी कीं। चैत्र वदि २ को उपरोक्त पत्र प्रकट करते हुए भरी परिषद् में माणकगणि को विधिवत् युवाचार्य पद दे दिया गया। चैत्र वदि ५ को रात्रि में खांसी का भयंकर प्रकोप रहा, अर्द्ध रात्रि को यकायक खांसी बंद हो गई, आपने माणकलालजी को जगाने को कहा। उस समय कई संत व श्रावक—श्रीसंपतरामजी दूगड़, श्रीचंदजी गधैया आदि पास बैठे थे। आपने माणकगणि को अंतिम शिक्षा फरमाते कहा, 'सब संतों-सतियों की बागडोर तुम्हारे हाथ में है, अतः सबकी लज्जा रखना तुम्हारा कर्तव्य है, सबकी प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर संयम पालने की भावना हो, तब तक निभाना। बहिर्विहारी संतों का पूरा ध्यान रखना, बिना भय व पक्षपात के सबके साथ समान न्याय करना।'

साधुओं को शिक्षा देते हुए आपने कहा, 'आचार्य की आज्ञा में चलने से ही अपनी और संघ की उन्नति संभव है।' शिक्षा देने के बाद विश्राम हेतु आप लेट गए। थोड़ी देर बाद आपको इच्छानुसार सहारा देकर बिठाया गया कि आपको एक उबासी आई और आंखों की पुतलियां फिर गईं। कालूजी स्वामी ने चौविहार संथारा कराया। आपने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया। इतने में आपके प्राण विसर्जित हो गए। शरीर का संस्कार दूसरे दिन किया गया, जिसमें हजारों आदमी एकत्रित हुए। श्रीचंदजी गधैया ने श्री कालूरामजी जम्मड़ की सलाह से आपको अस्वस्थता में ही, जयपुर से ऊंटों द्वारा बैकुंठी की सब सामग्री मंगा ली थी। बीदासर में नगराजजी बैगानी को देव द्वारा तुरन्त आभास होने से, वे ऊंट पर बैठकर दाह-संस्कार के पूर्व पहुंच गए। माणकगणि ने आपके जीवन-चरित्र पर संवत् १६५३ कार्तिक शुक्ला ८ को 'मधवा सुजस' नामक काव्य ग्रन्थ की रचना की। आपने ३६ साधु तथा ८३ साध्वियों को दीक्षित किया। आपके स्वर्गवास के समय ७१ साधु तथा २०५ साध्वियां संघ में थीं।

### उपलब्धियां

आपके दीक्षित साधुओं में मुनि श्री मगनलालजी, कालूजी [छापर] (बाद में अष्टमाचार्य), मातु श्री छोर्गोजी, साधवी कानकुंवरजी तथा साधवी मुखोजी (सरदार शहर) प्रभावशाली सिद्ध हुए। आपके युग में निम्नलिखित विशिष्ट तपस्याएं हुई—

१. मुनि चुन्नीलालजी—२३ वर्ष बेले बेले तप व लघु सिंह निष्क्रीड़ित तप की पहली तीसरी परिपाटी सम्पन्न कर नया कीर्तिमान बनाया।
२. मुनि चौधमलजी—छः मासी तप।
३. सती जेठांजी —१६ दिन का अनशन।
४. सती सुखांजी —दो मासी ५२ दिनों की संलेखना तथा एक दिन संथारा।
५. सती गुलाबोजी —लघु सिंह निष्क्रीड़ित तप की पहली परिपाटी।
६. सती छोर्गोजी —२१ वर्ष एकान्तर, कुल तपस्या ७५६० दिन (२१ वर्ष ऊपर)।
७. सती भीरोंजी —उपवास से १३ तक लड़ी, तीन हजार से अधिक उपवास।
८. सती जड़ावोजी —लघु सिंह निष्क्रीड़ित तप की पहली परिपाटी में ५ दिन अनशन।
९. सती जोतोंजी —तीन हजार से अधिक उपवास, १८ दिन का चौविहार संलेखना संथारा।

१०. सती छगनोंजी — प्रभावक एवं चमत्कारी, ३७ दिन का अनशन, किसी साधु-साध्वी के गलती करने पर दण्ड देते समय आपका हृदय द्रवित हो जाता, आपके मुंह से निकल जाता, 'क्यों तुम गलती करते और क्यों मुझे दण्ड देना पड़ता।' ऐसी कोमलता के धनी थे श्रीमद् मधवा गणि ।

## मधवागणि के दीक्षित प्रमुख शिष्य-शिष्याएं

### १. मुनिश्री मगनलालजी

आपका जन्म संवत् १९२६ श्रावण शुक्ला २ को गोगुन्दा (मेवाड़) में पेमचंदजी भोलावत (पोरवाल) व उनकी धर्मपत्नी धन्ननोंजी के घर पर हुआ। आप जब सात वर्ष के थे, तब आपके पिता मिरगी रोग के कारण हाथी पोल दरवाजा उदयपुर के पास खाई में गिरकर मर गये। आपकी बुद्धि प्रखर व संस्कार सहज सुन्दर थे। आपने दो माह पढ़ाई की जिस पर बारह आना खर्चा हुआ और यदि सोलह आना खर्चा हुआ होता तो आप क्या नहीं कर पाते? छोटी अवस्था में ही आपको कार्य भार व व्यवसाय सम्भालना पड़ा। संवत् १९४२ में आपने कांकरोली में मधवा गणि के दर्शन किए। तभी से उनसे इतने प्रभावित हुए कि दीक्षा की ठान ली। मधवा गणि चातुर्मास के बाद गोगुन्दा पधारे, तब संवत् १९४३ मगसिर सुदि १४ को आपने, पन्नालालजी ने तथा आपकी माता धन्ननोंजी ने दीक्षा ली। दीक्षा के बाद आप आचार्य प्रवर के साथ ही रहे। आपने पांच सूत्र कंठस्थ किए। शासन के इतिहास, मर्यादा व परंपराओं की गहरी जानकारी प्राप्त की। संवत् १९४४ में श्रीमद् कालूगणि की दीक्षा हुई और तब से दोनों जीवन पर्यन्त अभिन्न साथी की तरह रहे। आप योग्य एवं दूरदर्शी परामर्शदाता थे। संवत् १९५४ में यकायक श्रीमद् माणकगणि का स्वर्गवास होने पर आपने अन्तरंग व्यवस्था सम्भाली तथा भावी आचार्य के मनोनयन तक सजग रहे। आपके परामर्श पर मुनि श्रीकालूजी बड़ा ने श्रीडालगणि का चुनाव कर संघ में अभिनव इतिहास बनाया। श्रीडालगणि के कड़े अनुशासन में आप सदा अडिग रहे। श्रीमद् कालूगणि की योग्यता की जानकारी श्रीडालगणि को आपसे ही मिली और उसी से उनके आचार्यत्व की संभावना बनी। श्रीमद् कालूगणि के संवत् १९६६ में पदासीन होने पर आप हर परिस्थिति में उनके सर्वांश सहयोगी रहे। बीकानेर चातुर्मास (संवत् १८७९) में उग्र विरोधी वातावरण में आपकी पीठ पर चाबुक मारा गया, पर आपने क्षमा

भाव का परिचय दिया ।

भिवानी चातुर्मास (संवत् १९७७) में जब बाल दीक्षा विरोध की आड़ में भयंकर विरोध हुआ, तब आपने साहस का परिचय देकर संघ को धैर्य और पराक्रम की प्रेरणा दी । संवत् १९६३ में मात्र २२ वर्ष की आयु में, आचार्य श्रीतुलसी को उत्तराधिकारी के रूप में, श्रीमद् कालूगणि ने, आप द्वारा उन्हें उचित सम्मान देने तथा संघ में उनके प्रति पूज्य भाव भरने के आश्वासन देने के बाद ही नियुक्त किया था । उनकी मनोकामना पूर्ण करने में वे सहायक बने । आचार्यश्री तुलसी के पिता तुल्य होते हुए भी आपने सदा उनको पूज्य एवं गुरु माना तथा स्वयं ने संघ के अन्य साधु-साधिवर्यों से भी उनको अधिक सम्मान दिया । वे हर समय संघ में गुरुनिष्ठा की भावना भरते रहे । देशाटन जाने पर आचार्यश्री आपकी विद्यमानता में सदा निश्चिन्त रहे । संवत् २००१ में आचार्यश्री ने आपको 'मंत्री मुनि' की विधिवत् उपाधि तथा कई बख्शीयें दीं । संवत् २०११ में जब रंगलालजी प्रभृति १२ साधु सैद्धांतिक मतभेद के कारण अलग हुए और लगभग छः माह गण से बाहर रहे, तब आपकी प्रेरणा तथा दोनों पक्षों का आप पर अगाध विश्वास ही उनके संघ में पुरागमन का कारण बना, अन्यथा यह सम्भव ही नहीं था ।

'गुरुकी उदारता व शिष्यों के समर्पण भाव' आपके इस एक घोष ने वातावरण बदल दिया । आप वृद्ध एवं सम्मानित होते हुए भी प्रत्येक कार्य आचार्यश्री से पूछ कर करते । वैसे संवत् १९५५ से ही आचार्यों का भोजन आपके हाथों ही कराया जाता रहा । आप दोनों समय गुरु-चरणों में बैठकर प्रतिक्रमण करते । संवत् १९४६ अक्षय तृतीया से जब तक आप आचार्यों के साथ रहे, तब तक आचार्यों के प्रवचन के पूर्व उपदेश देने का गौरव आप को ही दिया गया । दीक्षार्थियों की प्रथम परीक्षा आप के हाथों होती थी । संवत् २००६ से २०१६ तक मुनिश्री सरदारशहर में स्थिरवास रहे । इस अरसे में आचार्यश्री ने दो चातुर्मास तथा दो महोत्सव वहां कराए । वहां कई विशिष्ट साधु-साधिवर्यों का आना-जाना होता रहा । इन वर्षों में सरदारशहर में आश्चर्यजनक तपस्याएं हुईं, सरदारशहर तीर्थस्थली बन गया । आपके साथ शामन-स्तम्भ मुनि सोहनलालजी (चूरू) व धीर तपस्वी मुनि सुखलालजी अनवरत सेवा में रहे । आचार्यप्रवर जब अन्य प्रदेशों में रहे तब आपको सदा आदर सूचक हृदयग्राही संदेश भेजते रहे । आपका देहावसान संवत् २०१६ माह वदि ६ को यकायक सरदारशहर में हुआ । मुनि श्री हेमराजजी व मुनिश्री कालूजी (बड़ा) की श्रृंखला में तेरापंथ संघ का एक और उज्ज्वलतम नक्षत्र अस्त हो गया । आपकी स्मृति में स्वयं आचार्यप्रवर ने 'मगन चरित्र' प्रबन्ध काव्य की रचना की । शामन समुद्र भाग १० (लेखक मुनि नवरत्नमलजी) के पृष्ठ संख्या ६१ से १७२ तक आपका सविस्तार जीवन-चरित्र दिया हुआ है । युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी ने जयाचार्य निर्वाण शताब्दी पर

६० हे प्रभो ! तेरापंथ

‘शासन स्तंभ’ से उपमित किया ।

## २. श्री कालूगणि

अष्टमाचार्य का जीवन वृत्तान्त आगामी पृष्ठों में दिया जा रहा है ।

## ३. महासती छोगोंजी

आप अष्टमाचार्य श्रीमद् कालूगणिजी की माता थीं । आपका जन्म सवत् १६०१ आसाढ़ वदि १४ को कोडासर (बीकानेर सम्भाग) के नरसिंहदासजी लूणिया व उनकी धर्मपत्नी गोगों देवी के घर हुआ । १६ वर्ष की अवस्था में आपका विवाह ‘ढंढेरू’ गांव के मूलचन्दजी कोठारी के साथ हुआ जो बाद में छापरा आकर बस गए । ३३ वर्ष की अवस्था में आपके मात्र एक संतान पुत्र ‘शोभा चन्द’ (बाद में नाम कालूराम) हुआ । गर्भ में आने के पूर्व ही पुत्र ने मां को रक्षा करने की चेतावनी दे दी थी । जन्म के तीन दिन बाद एक राक्षस ने रात्रि में आकर उत्पात किया पर आपने ‘कालू’ को छाती से चिपटा कर रखा तथा राक्षस को डांट दी, जिससे घबराकर वह अदृश्य हो गया । ‘कालू’ जब मात्र साढ़े तीन माह के थे तब आपको पति वियोग हो गया । आप अपने पीहर कोडासर तथा बाद में श्री डूंगरगढ़ आकर रहने लगीं । संवत् १६४१ में साध्वी श्री मृगोंजी ने पावस प्रवास में आपको पुत्र सहित दीक्षा की प्रेरणा दी, उसी वर्ष आपने सरदारशहर में मधवा गणि के दर्शन किए । आपमें वैराग्य भावना बलवती होती गई । अपने बच्चे तथा बहन की पुत्री कानकुंवर में भी आप वैराग्य भावना भरतीं एवं बढ़ाती रहीं । संवत् १६४४ के आसोज सुदि ३ को आपकी, श्री कालूजी की और श्री कानकुंवर जी की दीक्षा श्रीमद् मधवा गणि के हाथों बीदासर में हुई । फिर आप अधिकांश गुरु कुल वास में रहीं । संवत् १६५५ में कानकुंवरजी के अग्रणी बनने पर उनके साथ रहीं । संवत् १६६६ के भादवा सुदि १५ को श्रीमद् कालूगणि आचार्य पद पर आसीन हुए तब से पांच वर्ष तक आप गुरुदेव के साथ रहीं । गुरुदेव ने काम-काज, बोझ-भार तथा आहार का पांती से आपको मुक्त किया और चार साध्वियां सेवा में दीं । बाहर मारवाड़ मेवाड़ की यात्रा में जाने के कारण, गुरुदेव ने संवत् १६७१ पौह वदि १२ को आपको बीदासर स्थिरवास में रख दिया । गुरुदेव प्रतिवर्ष आपको शेष काल में १-२-४ बार सेवा का लाभ देते । उन्होंने संवत् १६७६, ८२ व ८८ में आपके कारण बीदासर में वर्षावास बीताए । आपके कारण बीदासर में साधु-साध्वियों का अधिक आवागमन रहा जिससे बीदासर तीर्थ बन गया । श्रावक-श्राविकाओं में भी तत्त्व ज्ञान एवं तपस्या की अभूतपूर्व वृद्धि हुई । आप स्वयं उच्चकोटि की तपस्विनी हुईं, आपकी तपस्या के आंकड़े इस प्रकार हैं—

उपवास १/३६१४, २/१५८६, ३/८६, ४/१७, ५/११, ६/१, ११/२०

१४/१, १६/१, १७/१, १९/१, २९/१ = सर्व दिन ७५६० (२१ वर्ष १ माह)। संवत् १९७७ जेठ से आपने जीवन पर्यन्त एकान्तर तप किए। संवत् १९८६ से गुड़ शक्कर चीनी तथा औषध का परित्याग किया, आजीवन २७ निश्चित द्रव्यों का परिमाण किया व प्रतिदिन ११ द्रव्य से अधिक नहीं लेतीं। पारणे में ठण्डा खींचडा या छाछ प्रहर दिन बाद लेतीं। आप तपस्या के साथ-साथ स्वाध्याय, स्तवन, जाप, स्मरण करती ही रहीं।

संवत् १९९३ भादवा सुदि ६ को आपके पुत्ररत्न श्रीमद् कालूगणि के स्वर्गवास का समाचार सुनकर आप शान्त व स्थिर रहीं। आचार्यश्री ने शीघ्र आकर आपको दर्शन दिए। संवत् १९९६ का चातुर्मास आपके पास बीदासर किया। संवत् १९९७ में आपकी रुग्णता के समाचार सुनकर आचार्यश्री पुनः बीदासर पधारे, महाव्रतों का पुनरावर्तन और आलोचना करवाई। चैत वदि ७ को सायंकाल ४ बजकर ४० मिनट पर आजीवन तिविहार अनशन करवाया। चैत वदि ११ को प्रातः आपने स्वर्ग प्रयाण कर दिया। इस प्रकार एक सुदीर्घ यशस्वी तपोमय जीवन का अंत हुआ।

#### ४. महासती कानकुंवरजी

आपका जन्म संवत् १९३० भादवा सुदि ९ को सालासर में लछीरामजी मालू व उनकी धर्मपत्नी चंदनाजी के घर हुआ। अपनी मौसी छोगोंजी के साथ ही आपमें वैराग्य भावना जागृत हुई और उनके साथ ही आपकी दीक्षा हुई। आपने ५ आगम, अनेक तात्त्विक ग्रन्थ, १५ थोकड़े, ८ बड़े व्याख्यान, ४ संस्कृत ग्रंथ तथा अनेक गीतिकाएं कंठस्थ किए। संवत् १९५५ में आप अग्रगण्य बनीं। संवत् १९६६ में श्रीमद् कालूगणि ने आपको सब काम और बोझ बखशीश करके अपने साथ रखा। आप उस युग की विदुषी, प्रवचनकार साध्वी थीं। दोपहर में सन्तों के स्थान पर कई वर्षों तक आपने व्याख्यान दिया। संवत् १९८१ में आपको साध्वीप्रमुखा के पद पर नियुक्त किया गया। आप साहसिक साध्वी थीं तथा आपको वचनसिद्धि थी। संवत् १९८७ में आपको मोतियाबिंद हो गया जिसका सफल ऑपरेशन साध्वी सन्तो कोंजी ने किया साध्वी छगनोंजी २७ वर्ष आपकी सेवा में रहीं। संवत् १९९० से तीन वर्ष तक अस्वस्थता के कारण आप राजलदेसर स्थिरवास में रहीं। संवत् १९९३ के भादवा वदि ५ की रात्रि में आपका स्वर्गवास हो गया। श्रीमद् कालूगणि का वियोग आपको देखना नहीं पड़ा। आप पांचवीं साध्वीप्रमुखा थीं।



## अन्य विशिष्ट साधु साध्वी

### ५. महातपस्वी चुन्नीलालजी (सरदारशहर)

उच्चकोटि के साधक तथा महान् तपस्वी—संवत् १९४३ से ६ वर्ष एकान्तर तप, बाद में प्रतर तप जिसमें ५ पंचोले, ६ चोले, ४ तेले, ५ उपवास किया। संवत् १९४९ से २३ वर्ष बेले-बेले तप करने का कीर्तिमान स्थापित किया और लघुसिंह निष्क्रीडित तप की तीन परिपाटी पूरी कर दूसरा कीर्तिमान बनाया। समग्र तपस्या इस प्रकार रही—

उपवास १/९००, २/३६, ३/३६, ४/४४, ५/२५, ६/३, ७/२, ८/१, ९/१, १०/३, ११/२, १२/१, १३/१, १४/१२, १५/१, १६/१, १७/१, १८/१, (समग्र ३४ वर्षों में २२ वर्ष तपस्या)

### मुनि चौथमलजी (पुर)

संवत् १९५६ में आपने आछ के आगार छः मासी (१८७ दिन) तपस्या की। आपके पुत्र रणजीतमलजी ने संवत् १९६३ में दीक्षित होकर संवत् १९६८ में छः मासी तप किया।

### ३. तत्त्वज्ञ मुनि पूनमचन्दजी (पचपदरा)

संवत् १९६८ से १९९६ तक जयपुर में स्थिरवास, श्रावक समाज को तत्त्व ज्ञान की सतत एवं गहन शिक्षा, विशिष्ट व्यक्तियों से प्रभावोत्पादक मिलन, अंतिम वर्षों में भारी संलेखना तप व संधारे में पंडित-मरण।

### ४. शास्त्र वेत्ता मुनि डायामलजी (हरनावा) [१९४६ से १९८३]

तत्त्व की गहरी धारणा वाले शास्त्रवेत्ता, चर्चावादी, भांगा तथा गणितानुयोग के विशेष अध्येता।

### ५. न्यायविद् मुनि भीमराजजी (आमेट) [१९४८ से १९९९]

संस्कृत के प्रकांड विद्वान, विशिष्ट तत्त्वज्ञ, कुशल चर्चावादी, ज्योतिष काव्य कोष, व्याकरण, तर्क शास्त्र व न्याय के गहन अध्येता। निरभिमानी, गंभीर व अंहरज्ञा के धनी। युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी द्वारा 'शासन स्तंभ' उपाधि से स्रुपमित।

### ६. साध्वी लिछमांजी

मधवा गणि की प्रथम शिष्या—विदुषी व प्रवचनकार।

**७. साध्वी जेठोजी**

अंतिम संलेखना १६ दिन ।

**८. साध्वी अणचौजी (झूगरगढ़)**

धर्म प्रचारिका, कच्छ गुजरात में २ चातुर्मास ।

**९. साध्वी अभोजी (सरदारशहर)**

तपस्विनी, सेवाभावी, अग्रगण्या ।

**१०. साध्वी गुलाबोजी (सदरदार शहर)**

उत्कट तपस्विनी, अग्रगण्या, लघुसिंह निष्क्रीडित तपस्या की पहली परिपाटी में दिवंगत ।

**११. साध्वी मीरोजी**

लघुसिंह निष्क्रीडित तपस्या की पहली परिपाटी में दिवंगत ।

**१२. साध्वी छगनोंजी**

अन्तिम शिष्या—३६ दिन का तिविहार अनशन । उपरोक्त साधु-साध्वियों के अलावा सर्व साध्वीश्री कुनणोजी, सुखोजी, चंपोजी, हीरोजी, छोंगाजी, सेरोजी, जोतोजी आदि भी उग्र तपस्विनी साध्वियां श्रीमद् मघवागणि के शासनकाल में हुईं ।

श्रीमद् मघवागणि के शासनकाल में दीक्षित साधु-साध्वियों का सम्पूर्ण विवरण शासन समुद्र भाग १० व ११ (लेखक मुनि श्री नवरत्नमलजी) में उपलब्ध है ।

# छठे आचार्य श्रीमद् माणकगणि

(संवत् १९४९ से १९५४)

## जन्म एवं वंश परिचय

श्रीमद् माणक गणि का जन्म संवत् १९१२ भादवा वदि ४ को जयपुर नगर में श्री हुक्मीचन्दजी जौहरी एवं उनकी धर्मपत्नी छोटोंजी के घर पर हुआ। आपकी माता का देहान्त शिशुवय में हो गया। दो वर्ष बाद आपके पिता का भी देहान्त गदर के समय डाकुओं की लूट-पाट में दुर्घटनाग्रस्त होने से हो गया। आपका लालन-पालन व अध्ययन आपके पिता के बड़े भाई लाला लक्ष्मणदासजी की देखरेख में हुआ। लालाजी अत्यन्त स्नेहिल, उदार, तत्त्वज्ञ एवं धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। जवाहरात का व्यापार होने के कारण वे बंबई, सूरत आदि नगरों में जाते तथा समय मिलने पर धर्म-चर्चा चलाते। सूरत में उन्होंने आनन्द भाई वकीलवाला (मगन भाई के दादा) के परिवार के अनेक व्यक्तियों को समझाया था और वस्तुतः सूरत, बंबई, गुजरात, महाराष्ट्र में तेरापंथ के बीज-वपन में उनका प्रमुख हाथ था। उनके अभिभावकत्व में रहने से बालक माणक के हृदय में धर्म-संस्कारों के प्रति अच्छी रुचि एवं अभिवृद्धि हुई।

## शिक्षा-दीक्षा

संवत् १९२८ में श्रीमद् जयाचार्य का जयपुर में चातुर्मास हुआ व उस समय आचार्यप्रवर के प्रेरणादायी प्रवचन सुनकर व उनकी सेवा परिचर्या करने से 'माणक' के हृदय में विरक्ति के भाव जगे। आपने श्रीमद् जयाचार्य को अपनी दीक्षा लेने की भावना प्रकट की। श्रीमद् जयाचार्य ने आपको कहा कि इसमें लालाजी की अनुमति लेनी अनिवार्य है। अतः अनुमति मिलने तक साधना का अभ्यास तथा तत्त्व ज्ञान का अध्ययन चालू रखो। चातुर्मास के पश्चात् श्री जयाचार्य दो महीना घाट दरवाजे तथा सरदारमलजी लूणिया के बाग बिराजे। उसके बाद मर्यादा महोत्सव संपन्न कर उन्होंने फागुण वदि १ को लाडनू की ओर प्रस्थान किया। लाला लक्ष्मणदासजी सपरिवार, 'माणक' सहित, मार्ग में सेवा में रहे।

रास्ते में श्री जयाचार्य ने उचित अवसर देखकर लालाजी को कहा, 'यदि माणक दीक्षा ले तो लब्ध-प्रतिष्ठता साधु होगा।' लालाजी ने प्रत्युत्तर में कहा, 'यह हमारे लिए सौभाग्य होगा, पर उनकी इच्छा हो तभी साधुत्व आ सकता है।' श्री जयाचार्य ने फिर कहा, 'यदि उसकी इच्छा हो तो आपको अनुमति देने में तो आपत्ति नहीं होगी।' लालाजी अपने लाड़ले के बिछोह को सहन नहीं कर सकते थे, पर श्री जयाचार्य के आगे इनकार करने का भी उन जैसे शासन एवं गुरुभक्त श्रावक के लिए साहस जुटाना सुगम नहीं था। अतः उन्होंने विषयान्तर करते हुए कहा, 'यह शहर में रहने वाला है, इसका शरीर कोमल है, मैंने लाड़-प्यार से पाला-पोसा है। अतः इसके लिए पैदल चलना, साधुत्व की कठोर परिचर्या पालन करना तथा परीषह सहना कैसे सम्भव होगा?' श्री जयाचार्य के हृदय में माणक के प्रति आकर्षण पैदा हो चुका था। अतः उनके मुंह से सहज भाव से निकल गया, 'इसकी चिन्ता तो हम करेंगे। माणक रजोहरण तो उठा ही लेगा। मेरा उत्तरदायित्व तो मधजी संभाल लेंगे, उनका भार संभालने वाला भी तो चाहिए।' श्री जयाचार्य के अनुग्रह भरे शब्दों को सुनकर लालाजी भाव-विभोर हो गए व उन्होंने तत्काल अनुमति दे दी। नांवा में श्री जयाचार्य ने 'माणक' को प्रतिक्रमण सीखने का आदेश दे दिया। आपके बड़े भाई किस्तूरचन्दजी ने आपको दीक्षा की अनुमति दे दी। लाडलू में लालाजी का पूरा परिवार, जयपुर में दीक्षोत्सव की पूर्ण तैयारी करके, गुरु-चरणों में उपस्थित हो गया। श्रीमद् जयाचार्य ने लाडलू में प्रवेश करते ही दक्षिण दरवाजे के बाहर पीरजी के स्थान पर, फागुण सुदि ११ को पुष्य नक्षत्र में 'माणक' को दीक्षा प्रदान की। आसपास के सैकड़ों लोग तथा लाडलू के ठाकुर श्री बादर सिंह जी वहां उपस्थित थे। संयम ग्रहण करते ही माणक मुनि ने साधना के साथ-साथ सैद्धान्तिक ज्ञानार्जन में अपने को पूर्णतः लगा दिया। अपने प्रथम तीन चातुर्मास (१९२९, ३०, ३१) श्रीमद् जयाचार्य के साथ किए। संवत् १९३१ में आपको अग्रणी बनाया गया। संवत् १९३२ से १९४६ तक पन्द्रह वर्ष आप अग्रणी के रूप में जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, बालोतरा, पचपदरा आदि स्थानों पर विराजे तथा श्रमनिष्ठा से अध्यात्म का अपूर्व आलोक फैलाया। संवत् १९४३ में जयपुर में आपने संस्कृत की सिद्धान्त चंद्रिका व्याकरण का पूरा अध्ययन किया। संवत् १९३८ में श्रीमद् मधवा गणि पट्टासीन हुए। उनका भी आपके प्रति पूर्ण वात्सल्य भाव रहा। श्री मधवागणि ने संवत् १९४३ में कविराजजी सांवलदानजी को बहुत पहले ही आपके भावी आचार्य होने का संकेत दे दिया था। संवत् १९४५ में राजलदेसर में साध्वी तीर्जोजी को दीक्षा देने आपको भेजा। संवत् १९४६ में जोधपुर में आपके पैर में 'कीड़ी नगरा' हो गया पर उस भयंकर बीमारी में भी आपने विहार कर श्री मधवा गणि के बीदासर में दर्शन किए, जहां केवलचंदजी यतिके औषधोपचार से आपका रोग शांत हो गया, पर तब से आप श्री मधवा

गणि के जीवन पर्यन्त साथ ही रहे व उनके हर कार्य में सहयोग देते रहे ।

### आचार्य पद पर

श्रीमद् मधवा गणि ने संवत् १६४६ का मर्यादा महोत्सव सरदारशहर में किया । चातुर्मास के समय से उनका शरीर अस्वस्थ चल रहा था । बाद में बीमारी बढ़ती गई और शक्ति क्षीण होती गई । बड़े कालूजी स्वामी तथा मोतीजी स्वामी के निवेदन पर चिंतन करके आपने भावी शासन-प्रबन्ध के विषय में व्यवस्था की । १६४६ फागुण सुदि ४ को 'माणक मुनि' के नाम युवाचार्य का नियुक्ति-पत्र लिख कर महासती नवलोजी को दे दिया, पर प्रकट नहीं किया । चैत वदि २ को आम जनता में माणक मुनि युवराज घोषित किए गए तथा उन्हें सम्मानित किया गया । चैत वदि ५ को श्री मधवा गणि ने आपको, साधु-सतियों को तथा श्रावक समाज को संघ-हित में संघ की मर्यादाओं और गुरु की आज्ञा पालन करने को प्रेरित किया । कुछ समय बाद स्वर्ग प्रयाण कर दिया । चैत वदि ६ को आपका पट्टाभिषेक हुआ, उस समय ७१ साधु २०५ साध्वियां संघ में थीं ।

आपकी आकृति सुन्दर तथा कदलम्बा था, पर प्रकृति इतनी कोमल थी कि सर्दों के प्रकोप में कभी १-२ लौंग या काली मिर्च लेते तो शरीर पसीना-पसीना हो जाता । आपका कंठ मधुर, सुरीला था व आपके ओज भरे व्याख्यान से जनता बहुत प्रभावित होती थी । आप स्वभाव से दयालु थे । साधु साध्वियों की सुख-सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे । आपकी वृत्ति में संघ के हर मदस्य के प्रति उदार एव सौजन्य भावना थी । आपको देशाटन की बहुत रुचि थी, १३-१४ मील (२०-२२ किलोमीटर) का विहार आपकी सामान्य प्रवृत्ति थी । संवत् १६५० में सरदारशहर चातुर्मास कर आप हरियाणा प्रदेश पधारे, हांसी में मर्यादा महोत्सव किया तथा पैर में कांटा लगने व एड़ी में मवाद हो जाने से हिसार में २७ दिन विराजे । हरियाणा प्रांत में तेरापंथ के आचार्य का प्रथम पदार्पण था । संवत् १६५२ में आपका जयपुर चातुर्मास अत्यन्त प्रभावक रहा, २० हजार यात्रियों ने वहां आपके दर्शन किए ।

### सुरलोक गमन और चिन्ता

संवत् १६५४ का चातुर्मास आपने सुजानगढ़ में किया, वहां अकस्मात आसोज सुदि २ को आपको तेज बुखार व दस्तों की शिकायत हो गई । अनेक उपचार करने पर भी लाभ नहीं हुआ । शारीरिक दुर्बलता बढ़ती गई । यति केवलचन्दजी ने भी आपकी हालत चिन्ताजनक बताई । सारे संघ में उदासी छा गई । गुरुकुलवासी श्री मगनलालजी स्वामी आदि ने विनयपूर्वक भावी प्रबन्ध के लिए निवेदन किया, पर आपको ज्योतिष पर अधिक विश्वास था । आपकी जन्म कुण्डली में ६२ वर्ष

की आयु का योग, आपको लगता था, अतः आपको यह बीमारी खतरनाक नहीं लगी और आपने किसी के निवेदन पर ध्यान नहीं दिया। चाहते तो गुप्त रूप से किसीके नाम नियुक्ति-पत्र लिख देते तथा स्वस्थ होने पर उसे फाड़ देते व किसी को उसका पता भी नहीं लगता पर भावी को टालना किसी के बलबूते की बात नहीं है और इसलिए आपको किसी की बात जंची नहीं। आसोज का पूरा महीना रुग्णावस्था में बीता, शरीर धीरे-धीरे अशक्त हो गया। कार्तिक वदि ३ को प्रातःकाल ऐसा दस्त लगा कि आप मूर्च्छित हो गए। रात को ग्यारह बजे मूर्च्छावस्था में ही तीन हिचकियों के साथ आपके प्राण-पखेरू उड़ गये। सारे संघ में असमय में आचार्यप्रवर के देहावसान से शोक छा गया तथा भावी आचार्य के मनोनयन के अभाव में जबरदस्त चिन्ता हो गई। तेरापंथ की सारी व्यवस्था ही आचार्य केन्द्रित है, उनके केन्द्र की धुरी टूट जाए तब व्यवस्था का डगमगाना सहज है और यही स्थिति सारे संघ की बन गई। तेरापंथ के लिए एकसाहस भरी चुनौती सामने आई पर संघ के अनुशासित एवं मर्यादा निष्ठ, नीतिवान् साधु-साध्वियों ने उसका अत्यन्त सुन्दर ढंग से मुकाबला कर समाधान निकाला जिसका विवरण हम आगे के पृष्ठों में पढ़ेंगे। श्रीमद् माणकगणि के यकायक देहावसान से लगता है कि एक सुन्दर सुरम्य सुवासित सुमन अधखिला ही मुरझा गया, काल की प्रचण्ड आंधी ने उसे डाल से नीचे पटक दिया।

# सप्तमाचार्य श्रीमद् डालगणि

(संवत् १९५४ से १९६६)

## विशिष्टता

आप तेरापंथ के एकमात्र ऐसे आचार्य हैं, जिन्हें गुरु की कृपा के कारण आचार्यत्व पद प्राप्त नहीं हुआ बल्कि जो मात्र अपने पुरुषार्थ के कारण, तत्कालीन परिस्थितियों में प्रखर अनुशास्ता की आवश्यकता को दृष्टिगत रखते, सारे संघ के सर्वमान्य आचार्य निर्वाचित हुए। यह सचमुच आश्चर्य का विषय है कि आपकी प्रखरता व तेजस्विता प्रारम्भ से ही मुखरित होने तथा श्रीमद् माणक गणि से आयु एवं दीक्षा पर्याय में बड़े होने पर भी पूर्वाचार्यों की दृष्टि शासन-भार संभालने के लिए आप पर न टिक सकी और मात्र पांच वर्ष में ही सारे संघ को इस पद को संभालने के लिए आपका ही विकल्प रह गया।<sup>१</sup>

## जन्म एवं वंश-परिचय

आपका जन्म संवत् १९०९ के अषाढ़ शुक्ला ४ को मालवा प्रदेश की प्राचीन राजधानी तथा भारत के सांस्कृतिक नगर उज्जैन में श्री कनीरामजी पीपाड़ा और उनकी धर्मपत्नी जड़ावोंजी के घर हुआ। आपकी छोटी अवस्था में आपके पिता का देहान्त हो गया, उससे आपकी माता का मन संसार से विरक्त हो गया। आपकी मात्र ग्यारह वर्ष की आयु में, उन्होंने अपने परिजनों की अनुमति लेकर, आपकी सार संभाल उन्हें संभलाकर, संवत् १९२० अषाढ़ सुदि १३ को पेटलाबाद में साध्वी श्री गोमांजी के पास दीक्षा ले ली। माता की दीक्षा के बाद आपके हृदय में धार्मिक भावना जगी, तीन वर्ष पश्चात् इन्दौर में पावस प्रवास में बिराजे हुए मुनिश्री हीरालालजी के पास जाकर, आपने तत्त्व-ज्ञान सीखा। संवत् १९२३ भादवा वदि १२ को उनके पास दीक्षा स्वीकार ली। मुनिश्री ने आपको थली प्रदेश पधारकर श्रीमद् जयाचार्य को सौंप दिया। एक साल (संवत् १९२४) मुनिश्री के साथ जयपुर चातुर्मास कर फिर चार वर्ष (१९२५ से २८) तक आपने श्रीमद्

१. तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर मेरा अभिमत।

जयचार्य के साथ रहकर ज्ञानाराधना की। फिर आप संवत् १६२६ में मुनि दुलीचन्दजी के साथ ब्यावर तथा संवत् १६३० में मुनि कालूजी (बड़ा) के साथ उदयपुर चातुर्मासिक प्रवासों में रहे। संवत् १६३० के शीतकाल में आप अग्रणी बने। आपके जीवनकाल में अनेक उतार-चढ़ाव आए पर आपने समभाव से साहस एवं निर्भीकतापूर्वक उनका सामना किया। आप बात के पक्के, धुन के धनी, सिद्धांतवादी तथा स्पष्टवक्ता थे। ये गुण आपकी प्रगति में कभी बाधक, कभी साधक बने।

### तेजस्विता का विकास

श्रीमद् डालगणि में सैद्धान्तिक ज्ञान का प्राचुर्य था। वक्तृत्व कला व तार्किक प्रतिभा के बल पर वे चर्चावाद में निष्णात थे, चर्चा-प्रसंग में किसी का हस्तक्षेप सहन नहीं करते थे। देवरिया (मेवाड़) में जैन मुनि प्रतापजी से चर्चा-वार्ता में, उनके अनुयायी नायब हाकिम पन्नालालजी हिरण ने बीच-बीच में बोलकर प्रतापजी का पक्ष प्रबल करना चाहा, तो आपने डांटते हुए कहा, 'हाकिम साहब यहां आपकी हुकूमत नहीं चलेगी, जैनागमों के प्रमाण ही सत्यासत्य के निर्णायक होंगे।' हाकिम साहब और मुनिजी दोनों निरुत्तर हो गए, वार्ता समाप्त हो गयी। संवत् १६४३ में आप श्रीमद् मघवागणि के साथ उदयपुर में चातुर्मास बिता रहे थे। वहां के उग्र विरोध को देखकर आचार्यप्रवर ने सब साधुओं को मौन रहने का निर्देश दे दिया था पर आप एक बार ज्योंही बाजार से निकल रहे थे कि कुछ लोको ने पीछे से चिल्लाना शुरू किया, 'महाराज, पानी में से पानी नीचे सड़क पर टपक रहा है, ध्यान नहीं रखते।' बार-बार चिल्लाने से भीड़ इकट्ठी हो गयी, श्रीमद् डालगणि उसी समय एक दुकान की चौकी पर चढ़कर बोले, 'भाइयो! देखो, झूठ की भी हद होती है, मेरी पानी में तो पानी ही नहीं है, फिर क्या, कैसे टपक रहा है?' इतना कहकर झोली में से साफ सूखा पात्र निकालकर भीड़ में उसे औंधा कर दिखा दिया। भीड़ को लगा कि लोग द्वेषवश झूठी बकवास कर रहे हैं। आपने ठिकाने आकर श्री मघवागणि को जानकारी दी तो उन्होंने आपकी सराहना करते हुए कहा कि ऐसी परिस्थिति में तो स्पष्टीकरण होना ही चाहिए था। स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य हुकमचन्दजी के शिष्य चौथमलजी ने उदयपुर, रेलमगरा आदि स्थानों पर चर्चा कर आपस में बलेश बढ़ाने को प्रोत्साहन देना चाहा, जिस पर महाराणाजी को आदेश देना पड़ा कि जहां तेरापंथ के आचार्य हों, वहां चौथमलजी न जाएं, ताकि शान्ति भंग न हो।

### कच्छी पूज्य

आपने अग्रणी काल में कच्छ की तीन यात्राएं की तथा इतना प्रभाव छोड़ा कि



## १०० हे प्रभो ! तेरापंथ

आप कच्छी पूज्य कहलाने लग गए । संवत् १६४१ में आपने कच्छ की प्रथम यात्रा की, बेला में चातुर्मास सम्पन्न कर फतेहगढ़ अंजार होते हुए भुज पधारे । वहां नान्ही पक्ष (स्थानकवासी सम्प्रदाय की शाखा) के शास्त्र-मर्मज्ञ एवं प्रतिष्ठित श्रावक बीरचंद भाई ने आपसे अनेक जिज्ञासाएं कीं तथा संतोषप्रद समाधान प्राप्त किया । उन्हें तेरापंथ के विधि-विधान तथा मान्यताओं की भी जानकारी दी गई, जिससे वे बहुत प्रभावित हुए । उन्होंने अपने गुरु मुनि बीजमलजी से श्रीमद् डालगणि से हुई चर्चा का जिक्र किया । फिर बीरचंद भाई के प्रयत्न से मुनि बीजमलजी और डालगणि के बीच कुछ विषयों पर जैनागमों के आधार पर चर्चा हुई । उसमें मुनि बीजमलजी ने आगम प्रमाण से अपनी मान्यताओं का खण्डन होते देखकर मौन रहना श्रेयस्कर समझा । बीरचंद भाई ने सारी स्थिति भांप ली । तत्काल श्रीमद् डालचन्दजी स्वामी को सारी जनता के सामने अपना गुरु स्वीकार कर लिया । वहां से विहार कर आप माण्डवी पधारे, आगे का चातुर्मास फतेहगढ़ किया । दो माह कच्छ देश में और भ्रमण कर आप आचार्यश्री के दर्शन करने मारवाड़ पधारे ।

दूसरी यात्रा आपने संवत् १६५० में की । आप मारवाड़ से आबू पर्वत होते हुए अहमदाबाद पधारे । आबू पधारे, उस दिन २४ मील का विहार हुआ परन्तु अन्न-पाणी नहीं मिला । अहमदाबाद में तीन घंटों की खोज के बाद, धर्मशाला में एक कमरा मिला । वहां से बढवाण, मोखी होते हुए कच्छ पधारे, जहां आपने दो संतों को दीक्षा दी तथा बेला में चातुर्मास किया । वहां अभूतपूर्व धर्म-जागृति रही । चातुर्मास के बाद मधवागणि का स्वर्गवास हो जाने से, आपने चूरु पधारकर नये आचार्य माणकगणि के दर्शन किए । तीन वर्ष बाद फिर संवत् १६५३ में आपने पंचपदरा से जालोर होकर कच्छ पदार्पण किया । जालोर में आप एक महीना बिराजे और जनता को प्रभावित किया । फिर बाव, राधनपुर होते हुए आपने फतेहगढ़ जाकर चातुर्मास किया व इसके पूर्व व बाद में एक-एक दीक्षा दी । चातुर्मास के बाद आपने सौराष्ट्र में प्रवेश किया । सर्वप्रथम मोखी पधारे जहां ठहरने की व्यवस्था दुकानों में हुई और प्रवचन जिनशाला में होता । प्रवचन का आकर्षण दिन-दिन बढ़ने लगा । वहां अन्य सम्प्रदायों की तरह साध्वियां थीं, वे वृद्ध होने से जिनशाला की ऊंची सीढ़ियों पर चढ़ नहीं सकती थीं और व्याख्यान सुनने का लाभ लेने को लालायित थीं, अतः उनके निवेदन पर आपने लगभग १५ दिन वहां ठहरकर स्थानक में व्याख्यान दिया । अनाथी मुनि के सरस आख्यान तथा जैन साधु के आचार-विचारों का विशद विवेचन किया । विदाई में सैकड़ों लोग व जैन साध्वियां नगर के बाहर तक पहुंचाने आईं । वहां से टंकारा, राजकोट, जूनागढ़ होते हुए गिरनार पर्वत पर पधारे । बिना किसी पूर्व आग्रह के दिगंबर मंदिर में ही ठहरे । फिर भाव नगर होते हुए आप सिहोर पधारे जहां साम्प्रदायिक द्वेष के कारण न

तो उचित स्थान मिला और न पूरा आहार-पाणी ही उपलब्ध हुआ। फिर २४ मील यानी ४० किलोमीटर का विहार कर पालीताणा पधारे, पर शहर में स्थान न मिलने से धर्मशाला में ठहरना हुआ। शत्रुंजय पर्वत पर चढ़ते मुनि शांतिसागर मिले। उन्होंने व्यंग्य में कहा—‘सिद्धक्षेत्र में आए हो, यात्रा ठीक करना, यहां एक बार आने से ही जीव सिद्धगति में चला जाता है।’ आपने उनसे पूछा, ‘आप कितनी बार आए?’ प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा, ‘अनेक बार।’ श्री डालगणि ने विनोद में कहा, ‘अनेक बार आकर आप सिद्ध नहीं बन सके, इससे ही आपकी असत्यता प्रकट होती है, हम तो पर्वत मानकर आए हैं।’ वहां से लीबड़ी पधारे। वहां बिराजित १० स्थानकवासी मुनियों के अनुरोध पर स्थानक में पधारे। जहां आपका भव्य स्वागत हुआ। आपने भी जैनधर्म व तेरापंथ का परिचय देते हुए ओजस्वी प्रवचन दिया। बाद में नान्हीं पक्ष के साधुओं की प्रार्थना पर आपने उनके स्थानक में व्याख्यान दिया।

### अमरसी ऋषि से मिलन

वहां से बढवाण होते हुए आप धांगध्रा पधारे। कुछ लोगों ने आपको वहां जाने से इस कारण से रोकना चाहा कि धांगध्रा में ‘अमरसी ऋषि’ रहते थे, जो मंत्र-तंत्र के ज्ञाता थे। उनकी इच्छा के प्रतिकूल कोई साधु वहां जाता, तो उसे कष्ट उठाना पड़ता, पर आप तो निर्भीक थे। आपने धांगध्रा पहुंचकर प्रवचन करने तथा भोजन लेने के बाद अपने सहयोगी संत श्री नाथूजी को अमरसी जी से मिलने भेजा। संत से जानकारी प्राप्त कर अमरसीजी ने श्री डालगणि से मिलने की इच्छा प्रकट की तथा अपने स्थान पर आने का निमंत्रण दिया। आप वहां पधारे तो श्री अमरसीजी ने वहां ठहरने का आग्रह किया। आपसे बातचीत कर, तेरापंथ के आचार-विचार की जानकारी प्राप्त कर उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई। मिलन की इस शुभ बेला की स्मृति में उन्होंने आपको एक विशिष्ट रेशमी डोरों का रजोरहण भेंट करना चाहा पर आपने निस्पृहतापूर्वक भेंट स्वीकार करने में विवशता प्रकट की और कहा कि निरन्तर काम में लेने से यह रजोरहण अधिक चल नहीं सकेगा इसकी सुरक्षा नहीं होगी। अमरसी जी का वह विशिष्ट रजोरहण था। वे जब धांगध्रा नरेश को मंगल पाठ सुनाने जाते तभी उसे साथ रखते, अन्यथा उसे खूंटी पर ही टांगकर रखते थे। फिर अमरसीजी ने लोट पात्र (चित्र युक्त) लेने को कहा, पर आपने उसे टालते हुए फरमाया, ‘हम तीन पात्र से अधिक रख नहीं सकते और लें तो इसे प्रतिदिन प्रयोग में लेना पड़ेगा, जिससे चित्र नष्ट हो जाएंगे।’ अमरसीजी ने फिर अपने पास के बहुमूल्य रेशमी चद्दर आदि वस्त्र लेने का अनुरोध किया पर उसे भी आपने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि उन्हें आवश्यकता नहीं है। अमरसी जी ने ३१ पन्नों की सुन्दर प्रति, जिसमें अनेक आगम सुन्दर व

सूक्ष्म अक्षरों में लिखे हुए थे, देना चाहा, पर आपने आवश्यकता नहीं कह उसकड़े भी स्वीकार नहीं किया। अमरसी ऋषि ने आश्चर्यचकित होकर कहा, 'आप जैसा निलोभी व निस्पृह साधु मैंने आज दिन तक नहीं देखा।' अब तो अमरसी का आत्मीय भाव और श्रद्धा आपके प्रति बहुत अधिक हो गई, काफी देर तक दोनों में बातें हुईं। अमरसी ने उन्हें यह भी बताया कि उनका शिष्य हत्या के आरोप में निरपराध फंस गया और दण्डित हुआ। वे उसे अपने सारे प्रभाव के उपरांत बचा नहीं सके, इसका उन्हें बहुत दुःख है। अमरसीजी ऋषि से सम्मान पाना आपके जीवन की व कच्छ, सौराष्ट्र में आपके धर्म प्रचार की असाधारण सफलता कहा जा सकता है। धांगधरा से विहार कर आप कच्छ में पुनः आए, श्री-किस्तूरचंदजी को दीक्षा देकर संवत् १६५४ का चातुर्मास ६ संतो से बेला में किया। इसी चातुर्मास काल में सुजानगढ़ में आचार्य माणकगणि का एकाएक देहावसान हो गया। आपने चातुर्मास के बाद थली प्रदेश की ओर विहार कर दिया। आपकी कच्छ-सौराष्ट्र की यह अंतिम यात्रा थी फिर वर्षों तक उस क्षेत्र की सुधि भी नहीं ली गई।

### संघ द्वारा चुनाव

तेरापथ की शासन-व्यवस्था में भावी आचार्य को मनोनीत करने का अधिकार आचार्य को ही है। संयोग से आचार्य बिना मनोनयन किये स्वर्गस्थ हो जाएं तो आचार्य का निर्वाचन कैसे हो? इसके बारे में विधान में कोई प्रावधान नहीं है। श्रीमद् माणकगणि का एकाएक बिना मनोनयन किए, स्वर्गवास हो जाने से ऐसी स्थिति बनी जिससे सारा संघ चिन्तातुर हो गया, लोग तेरापथ के विघटन की कल्पनाएं करने लगे। पर बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा नहीं। गुरुकुलवास में रहने वाले मुनि श्री मगनलालजी, मुनिश्री कालूजी (छापर) (बाद में श्रीमद् कालूगणि) आदि १४ साधुओं ने निर्णय किया कि चातुर्मास के बाद सब साधु लाडनूं में एकत्रित हों, वहीं भावी आचार्य की व्यवस्था की जाए। निर्वाचन न हो, तब तक अंतरिम काल के लिए आज्ञा धारणा का अधिकार दीक्षा ज्येष्ठ मुनि भीमजी का रहे। इस तरह सारा कार्य सुचारु रूप से चलता रहा। बड़े कालूजी स्वामी वय-स्थिवर होने के साथ दूरदर्शी, चतुर एवं परम संघ-हितैषी साधु थे। उन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से संघ को अमूल्य सेवाएं दी थीं। आप उदयपुर चातुर्मास करके लाडनूं पहुंचे। वहां सारा मंच आपकी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहा था। आपने लाडनूं पहुंचते ही संघ के प्रभावक साधुओं से परामर्श किया तथा सायंकाल आचार्य के निर्वाचन हेतु सभा रखी गयी। सभा में मुनिश्री कालूजी ने खड़े होकर संतो से कहा, 'संघ को आचार्य चाहिए अतः यह भार किस पर डाला जाए, इस पर सोचें।' वातावरण में हलचल मची, सभी संतो ने मुनि कालूजी-

के अनुभव एवं दूरदर्शिता के गुणों से प्रभावित होकर, उन्हीं पर इस ऐतिहासिक-निर्णय का दायित्व दिया तथा आश्वस्त किया कि वे जो भी निर्णय देंगे, वह सर्व-सम्मति से स्वीकार्य होगा। मुनिश्री कालूजी ने संघ के साधुओं के अविचल विश्वास के प्रति आभार प्रकट करते हुए संघ के गौरवपूर्ण इतिहास तथा मर्यादाओं का उल्लेख किया। संतों की भावनाओं को दृष्टिगत रखते मुनिश्री डालचंदजी (डालगणि) को तेरापंथ का सातवां आचार्य घोषित किया। मुनि डालचंदजी दूर कच्छ से वहां अभी पहुंचे नहीं थे। साधुओं के प्रवास-स्थल के बाहर अनेक श्रावक उत्सुकता से निर्वाचन का परिणाम जानना चाहते थे। ज्योंही उन्होंने निर्णय सुना, जनता हर्ष से झूम उठी व तेरापंथ धर्मसंघ की नीतिमत्ता और आत्मसाधना की अमित छाप जम गयी। स्थान-स्थान पर लाडलू संतार द्वारा सूचना दी गई, लोगों ने आनन्द मनाया। मिठाईयां बांटी गयीं तथा दीवाली मनाई गई।

श्री डालमुनि थली पधारते सर्वप्रथम फतहगढ़ आए तथा मृगशीर्ष वदि ६ को मुनि तेजमालजी को दीक्षित किया। वहां साध्वी अणचौजी विराज रही थीं, वहां से दोनों सिधाड़ १२ ठाणों से बाव पहुंचे। बाव के दीवान डूंगरभाई मेहेता ने स्वागत करते अनायास ही कह डाला, 'अब तक आप कच्छ के पूज्य थे, अब लगता है आप सारे संघ के पूज्य बन जाएंगे।' वहां से विहार करते सांचोर के पास आडेल गांव पधारे, जहां पचपदरा के श्री 'बनजी चन्दोणी' व्यापार करते थे। उन्होंने आपके गुणगान में एक श्लोक रचकर सुनाया जो आज भी कई लोगों को कंठस्थ है। जसोल पधारते रास्ते में 'सोन चिड़ी' के शकुन होने पर श्री हिन्दूजी जोधाणी ने कहा, 'आप शीघ्र ही आचार्य बनेंगे, ऐसा शकुनों से लगता है।' जसोल में कोठारी परिवार की अग्रगण्य श्राविका कसूंबो बाई (लेखक की दादी) ने भी अन्तःप्रेरणा से यही बात कही। भविष्य के शुभ कार्य का कभी-कभी अनायास ही आभास होने लगता है। क्रमशः सात संतों से विहार करते आप जोधपुर से १० किलोमीटर दूर 'चौपासणी' गांव पधारे, एक तिबारी में विराजे। श्री डालगणि के निर्वाचन का तार जोधपुर पहुंचने पर वहां के श्रावकजन तेरापंथ के नव-निर्वाचित आचार्य का प्रथम स्वागत करने को लालायित थे। 'चौपासनी पहुंचने की सूचना होने पर, वहां के प्रमुख राज्याधिकारी एवं वरिष्ठ श्रावक भण्डारी किशनमलजी, लिछमणदासजी आदि घोड़ों पर सवार होकर चौपासनी पहुंचे। उस दिन पौ वदि ५ थी। श्री डालमुनि हाथ में रूखी-सूखी बाजरे की रोटी लिये, आहार कर रहे थे, तिबारी पर पर्दा लगा हुआ था कि एकाएक भण्डारीजी ने ऊंचे घोष और समवेत स्वरों से वंदना करते हुए 'खमाघणी अन्नदाता, पूज्य परमेश्वर भगवान् ने घणी खमा' कहकर आपकी प्रशस्ति प्रारम्भ की। श्री डालगणि ने टोकते हुए उन्हें इन शब्दों के प्रयोग के लिए उलाहना दिया तो उन्होंने तार बताते हुए निवेदन किया, 'आचार्य का निर्वाचन तो दो दिन पहले ही हो चुका है और आप ही चार तीर्थ के स्वामी

बने हैं।'

श्री डालगणि समाचार सुनकर सन्न रह गए, उनके मुंह से निकल गया, 'संतों ने इतनी शीघ्रता क्यों की, मेरी प्रतीक्षा तो करते।' पर अब तो सब कुछ घोषित हो चुका था व सारे देश में खबर प्रसारित हो चुकी थी। जोधपुर में आपका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। वहां स्थिरवासिनी साध्वी किस्तूरीजी ने आपके मना करने पर भी आचार्य की गरिमा के अनुरूप बहुत भाव-भक्ति से संस्तुति की। जोधपुर से आप नागौर पहुंचे, जहां मुनि गणेशजी तथा छबीलजी पांच संतों से अगवाणी में पहुंच गये थे। लाडनूं पहुंचने पर श्री कालूजी स्वामी (बड़ा) सहित सभी संत, हजारों भाई-बहन और वहां के ठाकर आनन्दसिंहजी नगाड़ा निशान लेकर बड़े आडम्बर के साथ सामने पधारे। आपने लछीरामजी बैद की हवेली के बाहर उच्चासन पर विराजकर प्रथम प्रवचन दिया तथा जनता को अध्यात्म-प्रेरणा दी। डालगणि ने अपने सर्व-सम्मत मिर्वाचन पर विस्मित होकर एक दोहे से अपनी अभिव्यक्ति दी, जो इस प्रकार है—

‘कुण्ड कुण्ड रो न्यारो पाणी,  
तुण्ड तुण्ड री न्यारी वाणी।  
था सगलों री मति सरिखी होई,  
आ तो बात अजब मैं जोई॥’

माघ वदि २ को पट्टोत्सव मनाया गया। साधु सतियों ने आपकी हार्दिक अभ्यर्थना की। आपने योग्य साधुओं को सम्मानित किया।

### आचार्य पद पर

श्रीमद् डालगणि एक महान् तेजस्वी आचार्य, कुशल व्याख्याता एवं चातुर्य के धनी थे। अग्रणी जीवन में ही उन्होंने अपने प्रखर व्यक्तित्व की संघ पर छाप डाल दी थी। आचार्य बनने के बाद तो उनकी तेजस्विता इतनी निखर गई कि साधु वर्ग ही नहीं, श्रावकगण भी उनके निकट जाने में संकोच करते थे। रात-दिन सम्पर्क में आने वाले भी सहसा उनके चरण-स्पर्श करने का साहस नहीं जुटा पाते। उनका अनुशासन बहुत कड़ा था। वे अक्सर कहा करते कि 'न तो गलती करो, न उलाहना मिले, न भयातुर रहना पड़े।' वे दृष्टान्त देकर कहते कि 'यदि नाग देवता को प्रसन्न रखना है तो उसके पूंछ पर पैर मत रखो। यदि पैर रख दिया तो फिर सर्प फुफकार करेगा ही।' वे भैक्षव शासन को 'सोलह हाथ की सोड़' कहते, जिसका तात्पर्य था कि अनुशासन और मर्यादा में रहने वाला निश्चित होकर रहे, सुख की अनुभूति करे, गर्मी व सर्दी का उस पर प्रभाव ही न पड़े पर यदि उसने गफलत की, तो फिर उसे क्षमा नहीं किया जा सकता। वे अपने शरीर की कभी परवाह नहीं

करते थे। कष्ट सहने की उनकी क्षमता अद्भुत थी। उनका शासनकाल संवत् १९५४ से १९६६ बारह वर्ष तक रहा। वे अनेक ग्राम, पुर, नगरों में पधारे, सर्वत्र अच्छा उपकार हुआ। अनेक भाई-बहनों ने दीक्षा ली। आपके युग के अनेक मधुर संस्मरण हैं।

संवत् १९५४ असाढ़ में साध्वी-प्रमुखा नवलोजी का स्वर्गवास होने पर आपने साध्वी-प्रमुखा पद पर श्री जेठोजी की नियुक्ति की। संवत् १९५६ में श्रीचंदजी गधैया के पुत्र श्री वृद्धिचंदजी को पानीझरा निकल गया। उन्हें उपचार में औषधि के स्थान पर अफीम का अर्क दे दिया गया, जिससे वे मरणासन हो गए, पर पूरे प्रयास करने पर उनका बचाव हो गया, तब श्रीमद् डालगणि ने वहां पधार कर गधैया परिवार को सेवा का अवसर दिया। भक्त के वश में भगवान् की कहावत चरितार्थ हुई। सं० १९५७ मृगशीर्ष में, डालचंद बोरणा (उदयपुर), जो अचक्षु था, तेरापंथ की प्रशंसा में प्राचीन ग्रंथ की उपलब्धि का किस्सा गढ़कर श्रावकों से रुपये ऐंठना चाहता था। उसकी कपट-क्रिया का आपने पर्दाफाश किया। संवत् १९५८ में मुनि चिरंजीलालजी की सेवा परिचर्या में उपेक्षा भाव बरतने के कारण 'तिरखाराम' को आपने गण से बहिष्कृत किया। संवत् १९५९ का चातुर्मास आपने भण्डारी परिवार की विशेष प्रार्थना पर जोधपुर किया। चातुर्मास के बाद बालोतरा, पचपदरा, जसोल में मात्र दो-दो रात बिराज कर आप पाली पधारे।

बालोतरा में स्थानकवासी आचार्य श्री जवाहरलालजी से शास्त्रार्थ का आयोजन रखा गया। आपने दो दिन चर्चा प्रारम्भ कर पीछे मुनि मगनलालजी, कालूजी छपर आदि ११ संतों को चर्चा के लिए छोड़ दिया पर फिर उनकी तरफ से कोई चर्चा करने नहीं आया। पाली पधारने पर आपको 'पानीझरा' निकल आया। वहां पर १७ दिन विराजना पड़ा। थली के श्रावकों के आग्रह भरे निवेदन पर आपने मेवाड़ का स्पर्श कर थली में चातुर्मास की घोषणा कर दी। शारीरिक अस्वस्थता में मात्र मनोबल के आधार पर सादड़ी, घाणेराव, राणकपुर होते हुए मेवाड़ प्रवेश किया। मेवाड़वालों ने उदयपुर महाराणा के माध्यम में उदयपुर चातुर्मास की प्रार्थना करवाने का निश्चय किया पर आपकी थली में ही चातुर्मास करने की दृढ़ भावना देखकर वे शांत रहे। गोगुंदा में माह वदि १० को आपने दो भाई व चार बहन—कुल छः दीक्षाएं एक साथ दीं। तेरापंथ संघ में इतनी दीक्षाएं एक साथ होने का यह प्रथम अवसर था। उस वर्ष मर्यादा महोत्सव उदयपुर मनाया गया। वहां मारवाड़ के मुसाहिब आला मुसद्दी श्री बछराजजी सिंधी ने आपके दर्शन किए और तेरापंथ के आचार-विचार तथा मर्यादाओं से प्रभावित होकर वे श्री डालगणि के प्रति श्रद्धालु बन गए। बाद में भुवानी में सिंधीजी ने आपके पुनः दर्शन किए तथा विनोदभाव से कहा, 'आप ज्वर से पूरे मुक्त ही नहीं हुए, पर आपने विहार कर दिया। इस प्रकार शरीर की उपेक्षा कर आप कष्ट सहन करते हैं, तब

लगता है कि यदि हमारी 'खाओ पीओ और मौज करो' की मान्यता सही निकली तो आपकी सारी कष्टदायक साधना व्यर्थ व निष्फल हो जायेगी।' श्रीमद् डालगणि ने उसी विनोद भावना से प्रत्युत्तर देते हुए कहा, 'सिधीजी, आप ठीक कहते हैं, पर यदि हमारी पुनर्जन्म व कर्मों के फल की मान्यता सही निकल गई तो आपका क्या होगा ? हमारी साधना व्यर्थ जाने में हानि तो है ही नहीं।' सिधीजी स्पष्टवक्ता थे। उन्होंने कहा, 'महाराज ! आपकी मान्यता सही हुई, तो हमारे सिर पर इतने जूते पड़ेंगे कि धरती भी झेल नहीं सकेगी।' आप जब देवगढ़ पधारे तो पुर, भीलवाड़ा आदि क्षेत्रों के ५०० व्यक्तियों ने आकर उनसे क्षेत्र स्पर्शना की जोरदार अर्ज की। आपकी अस्वस्थता, थली की ओर लंबा विहार, गर्मी का मौसम, इन सारी स्थितियों में उन क्षेत्रों को स्पर्श करना भारी कष्टदायक होता पर भक्ति भरी भावना से आप द्रवित हो उठे तथा उन क्षेत्रों का स्पर्श किया। इस तरह आप कठोरता व कोमलता के अद्भुत संगम थे। आप पर वज्र की तरह कठोर तथा कुसुम की तरह कोमल वाली कहावत चरितार्थ होती थी।

### धर्म-प्रचार-प्रसार

संवत् १९६० का चातुर्मास आपने सुजानगढ़ फरमाया तथा चातुर्मास हेतु आसाढ़ वदि १ को ही पधार गए। उन दिन 'ज्वालामुखी' योग था। श्रावकों ने योग बदलने के लिए आपको गांव बाहर पधार कर पुनः प्रवेश का निवेदन किया, पर आप तो महान् आत्मविश्वास के धनी थे। वह मुहूर्त आदि में विश्वास ही नहीं करते थे। आपने फरमाया 'शुभ मुहूर्त के लिए सुविधाजनक स्थान को छोड़कर पहले अन्यत्र जाने का कष्ट करूँ तब अच्छा मुहूर्त क्या काम आएगा ? वे वहीं रहे व यह चातुर्मास सभी दृष्टियों से बड़ा आह्लादकारी रहा। संवत् १९६० का मर्यादा महोत्सव बीदासर में सम्पन्न कर श्रीचंद जी गधैया के युवा पुत्र उदयचंदजी के दुःखद अवसान का समाचार जानकर आप फागुण वदि ४ को सरदारशहर पधारे। गधैयाजी को अध्यात्म लाभ दिया। संवत् १९६१ का चातुर्मास आपने चुरू किया, जहां रायचंदजी सुराणा के मित्र पण्डित घनश्यामदासजी ने संतों को संस्कृत पढ़ाने की भावना व्यक्त की। मुनि कालूरामजी (छापर) ने व्याकरण पढ़ना प्रारम्भ किया। संवत् १९६२ में सरदारशहर मर्यादा महोत्सव के बाद आप राजलदेसर पधारे। संयोग से उसी समय सरदारशहर के सुप्रसिद्ध सेठ सम्पतमलजी दूगड़ के पुत्र सुमेरमलजी की बारात राजलदेसर के जैसराजजी बैद के पुत्र जयचंदलालजी के यहां आई हुई थी। बारात में दोनों पक्ष संपन्नशाली होने से १५०० बाराती, एक हथिनी, पांच सौ पच्चीस ऊंट, अस्सी घोड़े, अस्सी बैलगाडियां और चार बधिघियां थीं। विवाह के अवसर पर १८०० सेवकों को प्रत्येक को, नौ-नौ रु० दान में दिए गए। समूचे कस्बे में प्रति घर मिठाई का एक-एक थाल व पगड़ी बांटी गई। जैसराजजी

बैद व संपतमलजी दूगड़ दोनों परिवारों ने ऐसे अवसर पर श्रीमद् डालगणि की सेवा का भरपूर लाभ लिया। मर्यादा महोत्सव के बाद साधु-साध्वी लगभग डेढ़ माह तक गुरुदेव की सेवा में रहे। चैत वदि ७ को श्रीमद् डालगणि ने बहिर्विहारी सभी साधु-साध्वियों को उपकरण सहित बुला लिया। सभी सिंघाड़ों के चातुर्मास एक साथ फरमाकर तथा शेष काल विचरने की पर्चियां देकर तत्काल विहार करा दिया। तेरापंथ धर्मसंघ के अनुशासन और समर्पण भाव की यह विरल घटना है। सीकर का गुलाबखां बंगाल में नौकरी करता था, उसे सांप काट गया। अनेक उपाय किए पर सब व्यर्थ गए। कर्मचन्दजी दूगड़ बीदासर वालों के कहने पर उसने 'डालगणि' के नाम की माला फेरनी शुरू की, भाग्य से उसका विष दूर हो गया और वह स्वस्थ हो गया। दूगड़जी ने उसे बीदासर में डालगणि के दर्शन करने की प्रेरणा दी। उसने बीदासर आकर डालूजी महाराज के देवरे (मंदिर) का पता पूछा, पर पता नहीं लगा। उसे आश्चर्य हुआ कि इतने चमत्कारी देवता का मन्दिर कैसे छिपा रह गया? बाद में उसने लोगों को सारी बात बताई तो उसे श्रीमद् डालगणि के दर्शन कराए गए। वह बहुत प्रसन्न हुआ, उसने तत्त्व समझकर गुरु धारणा की। उसके समूचे परिवार ने मद्य-मांस का त्याग कर दिया और वह प्रतिवर्ष गुरु-दर्शन करने आता रहता था। आपके समय में रीणी के धूड़जी छाजेड़ बड़े दृढ़व्रती, धर्म के मर्मज्ञ तथा मनोबली श्रावक थे। एक बार वे सामायिक में ध्यानस्थ थे, तब उनके शरीर पर से होकर एक काला नाग निकल गया पर वे अविचल रहे। अपने बीस वर्षीय इकलौते पुत्र के आकस्मिक निधन पर उन्होंने व्यथा को समभाव से सहन किया तथा अपने कृत कर्मों का फल जानकर आंसू तक आंख से नहीं निकाले।

### अस्वस्थता

कहा जाता है कि आपके उपयोग में आने वाले उपकरणों का वजन लगभग ११ सेर था। आप छः-छः बाजोटों की जोड़ों पर बैठते थे, जो दिन में प्रायः तीन-तीन बार बिछानी पड़ती थी। आसन में एक सलवट रहता भी आपको असह्य होने जाता था। आचार्यों की महिमा-गरिमा जितनी आपके समय में बढ़ी, उतनी पहले कभी नहीं बढ़ी। संवत् १९६४ में बीदासर से सरदारशहर की ओर प्रस्थान करते चार मील की दूरी पर 'कालों की ढाणी' पधारे तो बहुत थकावट आ गई व समय काफी लगा। साथ में गधैयाजी ने जब यह हालत देखी तो सरदारशहर पधारने का अवसर नहीं होना मानकर लंबा विहार स्थगित करने की सलाह दी। फिर आप एक माह सुजानगढ़ बिराज कर संवत् १९६४ के पौह वदि १० को लाडनू पधार गए। आपका स्वास्थ्य क्रमशः बिगड़ने लगा, अन्न अरुचि, श्वास-वृद्धि और शक्ति क्षीण होने लगी। लाडनू में लछीरामजी बैद की हवेली में फिर आपका जीवन के



अंतिम समय तक स्थिरवास रहा। भयंकर रुग्णावस्था में भी प्रतिदिन आप दो घंटा व्याख्यान अवश्य देते। धाराप्रवाह, ओजपूर्ण भाषा में व्याख्यान सुनकर कोई उनकी अस्वस्थता का अंदाज ही नहीं लगा सकता था। उस समय में गंगाजी में मृतक के फूल डालने, मृतक के पीछे पृथक् रूप से रोने आदि अनेक कुरुद्वियों पर आपने प्रहार किए और जनता को रूढ़िमुक्त किया। अस्वस्थता के कारण विहार करने की इच्छा होते हुए भी आपको रुकना पड़ा।

### युवाचार्य का गुप्त-पत्र

विक्रम संवत् १९६६ की असाढ़ शुक्ला १४ को आपने उपवास किया व पारणे में केवल काली मिर्च व पतासा की उकाली ली। शक्ति अधिक क्षीण होने से प्रातः-कालीन प्रवचन श्री मगनलालजी स्वामी तथा मध्याह्न में मुनि कालूजी (छापर) प्रवचन देने लगे। आपका ध्यान बहुत समय से उत्तराधिकारी की खोज में लगा हुआ था पर आपसे निकट सम्पर्क के अभाव में आपकी दृष्टि में कोई जम नहीं पाया। आपके आचार्य मनोनयन के कुछ समय बाद एक बार आपने मुनिश्री मगनलालजी को बुलाकर इधर-उधर की चलाते हुए पूछा था, 'आपने मेरी सहमति के बिना मुझे आचार्य चुन लिया पर उस समय मैं यदि इनकार कर देता तो आपने विकल्प में क्या व्यवस्था सोची थी?' मुनि मगनलालजी इतने दक्ष और गहरे थे कि उनसे किसी बात को निकलवाना बहुत कठिन काम था। उन्होंने कहा, 'आपके इनकार करने का प्रश्न ही नहीं उठता, यह तो संघ की सेवा का काम था, किसी दूसरे को आचार्य बनाते तो आपकी सहमति लेते, पर आपको बनाने में आपकी सहमति की क्या आवश्यकता थी।' श्रीमद् डालगणि मोद्देश्य पूछ रहे थे, सम्भवतः मंत्री मुनि भी भांप गए पर वे निरन्तर प्रश्न पूछे जाने पर भी उत्तर टालते रहे। अंत में जब श्रीमद् डालगणि ने उन्हें स्पष्ट उत्तर देने को विवश किया, तो उन्होंने कहा, 'आप मना करते, यह संभव ही नहीं था, पर यदि ऐसा हो ही जाता तो हमारा ध्यान मुनि कालूजी (छापर) पर केन्द्रित था।' उत्तर सुनते ही श्रीमद् डालगणि स्तंभित रह गए और बोले, 'मैंने भी दृष्टि तो बहुत दौड़ाई पर इस पर दृष्टि न टिक सकी।' आपने नाम का पता लगने के बाद बात को इस प्रकार समाप्त कर दिया जैसे कोई बात हुई न हो, पर मंत्री मुनि ने तो शुभ संकेत पा ही लिया। श्रीमद् डालगणि तब सेही उत्तराधिकारी की खोज कर चुके थे। मंत्री-मुनि जैसा गम्भीर-चेता परामर्शदाता पाकर वे निश्चिन्त हो गए थे। कृशकाय, श्याम वर्ण, श्रमशील, बाह्य प्रदर्शन में अछूते, गंभीर, एकान्तप्रिय, अपनी आत्म-साधना में लीन, 'कालू मुनि' सचमुच 'गुदड़ी के लाल' थे। किसी सामान्यजन की दृष्टि में भी उनकी असाधारण मेधा और अजेय आत्म-शक्ति की ज्योति किरणें उस समय तक टिक एवं प्रकट नहीं हो पायीं।

आपके क्रमिक दौर्बल्य को देखकर चतुर्विध संघ में चिन्ता छा गई। सरदारशहर के श्री कालूरामजी जम्मड़ ने दर्शन कर आग्रहपूर्वक आपको भावी व्यवस्था करने का निवेदन किया पर आपने 'देखा जाएगा' कहकर टाल दिया तो उन्होंने तीसरी बार अधिक स्पष्टता से निवेदन करते कहा, 'यह काम तो आपको ही करना है, चाहे अभी करें या बाद में। किसी को दीक्षित कर आचार्य के योग्य बना पाएं इतना समय अब नहीं है, इन्हीं साधुओं में से चुनाव करना है तो फिर विलम्ब क्यों? बारह वर्ष पहले संघ की परीक्षा हो चुकी है, ऐसा अवसर फिर न आए, यही हमारी चिन्ता है।' उसके बाद श्री मगनलालजी स्वामी व साध्वीप्रमुखा जेठोंजी ने भी निवेदन किया। प्रथम श्रावण वदी प्रतिपदा थी। श्रीमद् डालगणि ने उसी समय सुजानगढ़ के श्रावक शिरोमणि श्री रूपचंदजी चेठिया को याद कर उनके दर्शन करने पर उनसे परामर्श किया। फिर संतों को स्याही, पत्र व कलम लाने को कहा और एकान्त में बैठकर युवाचार्य-पत्र लिखा तथा उसे लिफाफे में बंद कर अपने पुठे में रख दिया। उसके बाद सायंकाल गुरुकुल-वास के सब संतों को बुलाकर कहा, 'मैंने आप सबको चिन्ता से मुक्त कर दिया है, आप में से किसी एक का नाम युवाचार्य-पत्र में लिख दिया है, वह बंद लिफाफा पुठे में डाल दिया है। नाम प्रकट करना मैं नहीं चाहता।' इसके बाद गुरु शिष्य व संघ के सदस्यों के आपसी व्यवहार के बारे में आपने गहरी शिक्षाएं फरमायीं। बाद में भी समय-समय पर आप शिक्षाएं देते रहे। पर आपने चुनाव को रहस्यमय बनाए रखा। जिसे चुना गया, उसे भी अपनी ओर से इसका आभास तक नहीं दिया। जिसने अपने गुरु से ममता और वात्सल्य का अमृत जल न पाया हो और जो जीवन भर प्रखरता की आंच में तपता रहा हो, वह भला किसी को ममता और वात्सल्य का जल कैसे दे पाता? उसके पास तो शक्ति और ऊर्जा की आग थी, जो वह दे सकता था, पर उसमें तपना और खपना ही पड़ता था, मधुरता नहीं फूट सकती थी। लाडलू के ठाकुर आनन्दसिंह जो अत्यन्त श्रद्धालु एवं विश्वसनीय थे। अतः उनके आग्रह पर मुनि कालूजी को बुलाकर उन्हें दिखा दिया तथा संकेत मात्र से ही भावी आचार्य को बता दिया। मन्त्री-मुनि पूर्व-वार्ता के संदर्भ में मन ही मन युवाचार्य की कल्पना निश्चित कर चुके थे।

### सुरलोक वास

उस वर्षावास में प्रथम सावन में ही उदर-शोथ, अरुचि व श्वास-प्रकोप बढ़ गया। आपको लगा कि स्वामीजी का चरमोत्सव (भादवा सुदी १३) मनाना सम्भव नहीं होगा। शरीर की शक्ति टूटती गई, साधु-साध्वी तन्मयता से सेवा करते रहे। मुनि कालूजी (छापर) दोनों समय प्रतिक्रमण सुनाया करते थे। दो सावन बीत गए। भादवा सुदि १० को आपने बैदों की हवेली में चार बहनों को

११० हे प्रभो ! तेरापथ

दीक्षा दी व समारोह में दो घण्टे बैठे । भादवा सुदि १२ को श्वास भारी हो गया । आपने मन्त्री मुनि को कहा, 'कल का दिन नहीं देख सकूंगा, आप पक्का ध्यान रखना ।' श्वास बढ़ता ही गया, सायंकाल इतना तीव्र हो गया कि उसकी आवाज दूर तक सुनाई देने लगी । प्रतिक्रमण सुनने के बाद आपको सहारा देकर सुलाया गया, किन्तु सोते ही आपने आंखें फेर दीं । मन्त्री मुनि ने चार आहारों का त्याग कराकर ऊंचे स्वर से शरण आदि सुनाए । देखते-देखते आपने नश्वर शरीर त्याग दिया । १६६६ के भादवा सुदि १२ को एक मुहूर्त रात्रि गए तेरापथ धर्मसंघ का सिंह-पुरुष चिर निद्रा में सो गया । काल के आगे तेजस्वी पुरुष को भी हार माननी पड़ी । दूसरे दिन परंपरागत ठाट-बाट से आपकी शव-यात्रा निकली व तुलसीरामजी खटेड़ के नोहरे में दाह-संस्कार हुआ । जुलूस में स्वयं लाडनू ठाकुर सम्मिलित हुए । आपके शासनकाल में ३६ साधु व १२५ साध्वियों की दीक्षा हुई । आपके दीक्षित अनेक साधुओं ने संघ को अमूल्य सेवाएं दीं तथा संघ को पल्लवित पुष्पित किया । युग प्रधान आचार्यश्री तुलसी ने श्रीमद् माणकगणि तथा आपके जीवन और कृतित्व पर क्रमशः 'माणक-महिमा' व 'डालिम चरित्र' प्रबन्ध काव्यों की रचना की जो न केवल इतिहास या तत्त्व ज्ञान की दृष्टि से बल्कि साहित्यिक लालित्य व गेयात्मकता की दृष्टि से भी बेजोड़ ग्रन्थ हैं ।

श्रीमद् माणकगणि व श्रीमद् डालगणि का शासनकाल स्वल्प रहा पर आपके कई दीक्षित साधुओं तथा साध्वियों ने संघ की प्रभावना में अभूतपूर्व वृद्धि की । जिनमें से कुछ प्रमुख दीक्षित शिष्य-शिष्याएं इस प्रकार हैं—

## माणकगणि के युग के प्रमुख शिष्य-शिष्याएं

### १. मुनि दुलोचंदजी (पचपवरा)

संयम पर्याय १६५० से १६८२ तक महान तपस्वी—आंकड़े इस प्रकार हैं—

५/२, ६/१, ७/१, ८/१, ९/१, १०/१, ११/१, १२/१, १३/१, १४/१, ३१/१, ३६/१.

### २. मुनि खेमचंदजी (बरार)

संयम पर्याय संवत् १६५१ से १६८८ तक महान तपस्वी—आंकड़े इस प्रकार हैं—

१/१०००, २/२७, ३/६, ४/१०, ५/१०, ६/३, ७/२, ९/१, १७/१, २१/१

३१/२, ४५/१.

अन्तिम तपस्या (संलेखना) ५४ दिन की व अनशन नौ घण्टे का आया ।

### ३. मुनि तेजमालजी—(फतेहगढ़ कच्छ)

संयम पर्याय १९५४ से १९६५ तक संघ के स्वामी-भक्त एवं प्रख्यात अग्रणी व प्रखर व्यक्तित्व । संवत् १९६५ में डालगणि ने मुनि लीलाधरजी ठाणा ३ तथा आपको तीन ठाणों से कच्छ में चातुर्मास हेतु भेजा । चातुर्मास पश्चात् लीलाधरजी और तीन अन्य संत साकरजी, कल्याणजी, किस्तुरजी की संघ-विरोधी गतिविधियों के कारण आपने उनका संघ से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया । वे सभी तथा आप स्वयं कच्छ के थे ।

## श्रीमद् डालगणि के युग के प्रमुख शिष्य शिष्याएं

### १. मुनि नथमलजी (रौंछेड़)

संयम पर्याय १९५६ से १९६६ तक, शास्त्रों के विशेषज्ञ, पाप भीरु, फक्कड़ व प्रभावक अग्रणी । अन्त में ५४ दिन की संलेखना व १४ दिन का अनशन । युगप्रधान आचार्यश्री तुलसीद्वारा 'शासन स्तंभ' उपाधि से उपमित ।

### २. मुनि हीरालालजी (आमेट)

संयम पर्याय (१९६० से २००८ तक) । आचार्यों के कृपा पात्र, ध्यानी, सेवाभावी—वर्षों तक आचार्यों की सतत सेवा की तथा संवत् १९६७ में अग्रणी बने । सुघड़ शरीर, अवधूत वृत्ति, जप-तप-ध्यान में सतत सजगता ।

### ३. मुनि सागरमलजी (भिवानी)

संयम पर्याय संवत् १९६१ से २००६ तक । आगम, गणित, चित्रकला, लेखनकला में निष्णात व प्रख्यात अग्रणी ।

### ४. मुनि बछराजजी (मोखुणदा)

संयम-पर्याय संवत् १९६१ से २०१२ तक । अग्रणी शासन भक्त, निरपेक्ष वृत्ति के धनी, तपस्वी, आत्मार्थी तथा प्रमुख अग्रणी—अन्त में ५२ दिन का दीर्घ अनशन करके समाधि-मरण प्राप्त किया ।

११२ हे प्रभो ! तेरापंथ

#### ५. मुनि चम्पालालजी (राजनगर)

संयम पर्याय (संवत् १९६२ से २०२९ तक) शासन के इतिहास के विशिष्ट प्रस्तोता मधुर व्याख्यानी एवं गण-गणि की संस्तुति में श्रद्धा भरे मधुर उद्गारों के कारण उन्हें 'मीठिया महाराज' से जनता सम्बोधित करने लगी। प्रभावक अग्रणी—दूर प्रदेशों में विहरण—जबलपुर जाते मार्ग में दो बबर्ची शेर मिले पर स्वामीजी के नाम-स्मरण से वे स्वतः पास में होकर निकल गए। कोर्ट में आपको साक्षी में बुलाया गया पर बाद के संघ की चेष्टा से यह स्थिति पैदा नहीं हुई। आचार्यश्री ने उन्हें शासन-निष्ठ, विनय-निष्ठ आदि विशेषणों से सम्मानित किया। अन्त में १६ दिन का अनशन किया। युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी द्वारा शासन स्तंभ उपाधि से उपमित।

#### ६. मुनि कुन्दनमलजी (जावद)

संवत् १९६२ से २००२ तक संयम पर्याय। लेखनकला, चित्रकला, सिलाई, रंगाई आदि अनेक कलाओं में पारगामी, सूक्ष्म लिपि में (एक पोस्टकार्ड साईज पत्र में २५०० श्लोक) आपने कीर्तिमान स्थापित किया। नव-दीक्षित साधुओं में संघीय और धार्मिक संस्कार भरने तथा दीक्षार्थियों को प्रेरणा देने में विशेष कुशल। युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी द्वारा 'शासन स्तंभ' उपाधि से उपमित।

#### ७. मुनि रणजीतमलजी (पुर)

संयम पर्याय १९६३ से ८९ तक। उग्र तपस्वी। १८ बार मास खमण, शेष तपस्याओं के आंकड़े इस प्रकार हैं—

४५/१, ५२/१, ६०/१, १०१/१, १८२/१, अन्त में ६० दिन का संलेखना तप।

#### ८. मुनि चौथमलजी (जावद)

संयम पर्याय संवत् १९६५ से २०१७ तक—वर्षों तक श्रीमद् कालूगणि तथा आचार्य प्रवर के अंगरक्षक और संघ संघपति के प्रति पूर्णतया समर्पित। संस्कृत व्याकरण के निर्माता व 'भिक्षु शब्दानुशासन' व 'कालू कीमुदी' के रचनाकार, विभिन्न कलाओं में निष्णात। संघ सेवा में जीवन भर संलीन रहे। श्रीमद् कालूगणि से अपूर्व स्नेह व आचार्यश्री से अद्वितीय सम्मान प्राप्त किया। आचार्यश्री ने उनकी प्रशस्ति में निम्नलिखित उद्गार प्रकट किए :

‘शासन रो सेवग सजग, चेतस्वी मुनि चौथ,  
कालू तुलसी सेव में प्रतिपल ओत-प्रोत ।  
कुणसी बा गण री कला, जिणमें दखलनजास,  
कालू स्वमुख प्रशंसियो, खास जास आयास ॥’

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी ने आपको ‘शासन स्तंभ’ उपाधि से—उपमित किया ।

आप द्वारा दीक्षित मुनि सक्तमलजी व रंगलालजी वर्षों तक संघ की सेवा में रहे पर सक्तमलजी ने वृद्धावस्था में भारी दोष सेवन किया व गण से बहिष्कृत किए गए व रंगलालजी को नवीन परिवर्तनों में सैद्धान्तिक शिथिलता का भ्रम हो गया । इसी ऊहापोह के कारण वे गण से अलग हो गए । श्री रंगलालजी आगमों के गहन अध्येता, आवार विचार में जागरूक, पाप भीरु, चर्चावादी विनम्र श्रद्धावान थे ।

## ५. नवयुग का उदय व विकास

### अष्टमाचार्य कालगण

(संवत् १६६६ से १६६३)

#### जन्म एवं वंश-परिचय

विक्रम संवत् १६३३ फाल्गुन शुक्ला द्वितीया के पुष्य दिन शुभ मूर्हत व शुभ बेला में थली प्रदेश के छापर गांव में मूलचंदजी कोठारी एवं उनकी धर्मपत्नी छोगांजी के घर एक पुष्यवान शिशु का जन्म हुआ। मूलचंदजी पहले ढंढेरू रहते थे। ठाकुर से अनबन के कारण संवत् १६१८ में छापर आकर बस गए। आपके जन्म के नव माह पूर्व छोगांजी सो रही थीं तब उन्हें ऐसा आभास हुआ कि एक शिशु उनकी चारपाई के पास खड़ा कह रहा है, 'मां, मैं तुम्हारी कुक्षि में आना चाहता हूँ पर उसमें खतरा भी है, तुम्हारी कसौटी हो सकती है, पर मेरा विश्वास है कि तुम्हारे साहस से खतरा पार हो जाएगा और सब कुछ ठीक होगा।' छोगांजी ने दृढ़ता से कहा, 'तुम निश्चिन्त रहो, मैं तुम्हारे लिए हर खतरा झेल लूंगी।' बातचीत समाप्त हो गई तथा शिशु अदृश्य हो गया। इस घटना के नव महीने बाद आपका जन्म हुआ। जन्म के तीसरे दिन आधी रात को छोगांजी के शयन-कक्ष में सरसराहट हुई। उन्होंने दीये के प्रकाश में देखा—'एक भीमकाय दानव सामने खड़ा शिशु को ले जान की चेष्टा में आगे हाथ बढ़ा रहा है।' छोगांजी ने आपको छाती से चिपका कर गोद में ले लिया, मां की ममता जाग उठी, रोम-रोम में शौर्य फूट पड़ा, वह साक्षात् दुर्गा बन गई। उसने दानव के हाथ को झटका दिया। दानव उस तेज को सहन नहीं कर सका और तत्काल अदृश्य हो गया। ३३ वर्ष की अवस्था में छोगांजी के एकमात्र सन्तान आप ही हुए और उनके आंखों का तारा बन गये। उस समय श्रीमद् जयाचार्य बीदासर बिराज रहे थे। नगराजजी बैंगानी वहां के प्रमुख श्रावक थे। उन्हें अपने किसी इष्ट से भावी की बातों का पता चल जाता था। उन्होंने जयाचार्य के प्रवचन में खड़े होकर कहा, 'आज पूर्व दिशा में आठ मील की सीमा में एक भाग्यशाली शिशु का जन्म हुआ है जो तेरापंथ का आचार्य होगा।' आपको जन्म कुंडली आपके दादा बुधसिंहजी कोठारी ने बनवाई तो ज्योतिषी ने कहा, 'यह जातक योगिराज होगा, यह घर में नहीं रहेगा, तैतीसवें वर्ष इसके द्वार पर हाथी

बंधगा, यह राजाओं का राजा होगा।' आपके बारे में सारी भविष्यवाणियां सही निकलीं। जन्म राशि के अनुसार आपका नाम 'शोभाचन्द' रखा गया पर परिवार में 'काला भैरू' का इष्ट होने तथा आपका वर्ण श्याम होने से आपका 'कालू' नाम ही प्रचलित हुआ, कालांतर में यही नाम लाखों लोगों की आस्था का प्रतीक बन गया। आपका वर्ण श्याम, छरहरा बदन, सुडौल आकृति तथा शरीर सर्वांग सुन्दर था। अपनी माता का स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन, श्रमशील जीवन आप में सुसंस्कार भरने के लिए वरदान बन गया। मात्र तीन माह की आयु में आपके पिता का देहावसान हो गया और छोर्गांजी की सारी आशा, आकांक्षाएं आप पर केन्द्रित हो गईं। छोर्गांजी के पिता नरसीगदासजी लूणिया संवत् १९४० में कारोबार छोड़कर श्री डूंगरगढ़ में आकर बस गए, वे बहुधा अपने पीहर रहने लग गईं, जहां उन्हें साधु-साधिव्यों की सेवा का सुयोग सहज हो गया। पांच वर्ष की अवस्था में बालक कालू की आंखें दुखनी आ गईं, १५ दिन तक कष्ट रहा तभी अचानक एक योगी घर पर आया। उसने कहा, 'माताजी फरोस की लकड़ी घिसकर बच्चे की आंख में आंज दो, आंखें ठीक हो जाएंगी।' माता ने ऐसा ही किया तो आंखें ठीक हो गईं। उन दिनों अध्यापक बच्चों की पिटाई बहुत करते थे, इस डर में छोर्गांजी ने आपको पढ़ने के लिए स्कूल नहीं भेजा। आपने मामा के पास ही स्वल्प अध्ययन किया। खेल कूद में चोट न लग जाए, इस आशंका से माता आपको खेलकूद में जाने नहीं देती, मां की प्रगाढ़ ममता में ही आपका बचपन बीता।

### दीक्षा व शिक्षा योग

संवत् १९४१ में साध्वी मूर्गांजी ने डूंगरगढ़ चातुर्मास किया व उनके सत्संग से छोर्गांजी में वैराग्य भावना जागृत हुई। कालूजी अभी छोटे थे, माताजी का मन था कि दोनों साथ ही दीक्षित हों ताकि उसके पुत्र को उससे दूर रहकर व्यापारार्थ प्रदेश न जाना पड़े, उसे विरह वेदना सहनी न पड़े। माता ने मन की बात बालक से की तो उसने सहज भावना से जीवन भर साथ रहने तथा एक-दूसरे से विछोह न होने का उपाय पूछा। माता ने कहा, 'यदि हम दोनों दीक्षित हो जाएं तो श्रीमद् मघवागण की सेवा में एक गांव में रह सकते हैं। दूसरे गांव भी रहना पड़े तो कष्ट नहीं होगा और मिलते रहेंगे।' बालक कालू के हृदय में यह बात बैठ गई। शिक्षावय में ही आपने साध्वी मूर्गांजी से पच्चीस बोल प्रतिक्रमण, आदि तत्त्वज्ञान सीखकर कंठस्थ कर लिया। संवत् १९४१ में मां-पुत्र दोनों सरदारशहर श्रीमद् मघवागण के दर्शन करने गये, साथ में आपकी मौसी की पुत्री कानकुंवरजी भी थी, वह भी दीक्षित होना चाहती थी। मघवागण के दर्शन कर तीनों ने दीक्षित होने की भावना रखी। मघवागण इसके बाद डूंगरगढ़ या छपर साधु-साधिव्यों को भेजकर तीनों की भावनाओं को बराबर बलशाली बनाने का प्रयास करते रहे।



संवत् १९४४ में बीदासर चातुर्मास में श्रीमद् मघवागणि के समक्ष फिर तीनों ने दीक्षा लेने की भावना रखी। संवत् १९४४ के आसोज सुद ३ को बीदासर में जीतमलजी हुगड़ के नोहरे में बालक कालू (भावी आचार्य) माता छोगांजी तथा कानकुंवरजी को भव्य समारोह में आचार्य प्रवर ने दीक्षा दी।

मुनि कालू में विनय और विवेक का मणिकांचन योग था। उनकी बुद्धि तेज थी, वे चरित्र की अनुपालना में बहुत जागरूक थे। श्रीमद् मघवागणि संस्कृत के बहुश्रुत विद्वान थे। उन्होंने मुनि कालू की विशेषताओं से आकर्षित होकर उन्हें आगम ग्रन्थों का अध्ययन कराया, अपना लिपि कौशल सिखाया। सारस्वत का पंचसंधि प्रकरण कंठस्थ कराया, पर आपको दीक्षित हुए पांच ही वर्ष हुए कि मघवागणि का स्वर्गवास हो गया। मुनि कालू श्रीमघवागणि की प्रतिकृति ही थे, व उनका ही भाव चिंतन, रुचि, जीवन और क्रम आप में था। आपके लिए श्री मघवागणि आदर्श थे। उनका प्रभाव सदा आपके मानस-पटल पर अमिट रहा। आचार्य बनने के बाद भी जब वे श्री मघवागणि का स्मरण करते तो उनकी आंखें प्रेमाश्रुपूरित हो जातीं। आपने श्री मघवागणि के प्रति समर्पित होकर ही उनका विश्वास प्राप्त किया था, आप सदा प्रति-लेखन और प्रतिक्रमण आचार्यवर के पास ही करते। एक बार भयंकर सर्दी में मुनि कालू ने प्रतिलेखन के लिए ओढ़ने के सारे वस्त्र उतार दिए, तो उनका शरीर कांपने लगा। श्रीमद् मघवागणि ने तत्काल अपनी पछेवड़ी उन्हें ओढ़ा दी। संघ परम्परा में यह अपूर्व घटना थी और संभवतः शुभ-सूचक भी। मातु श्री छोगांजी भी आपके जीवन-निर्माण पर पूरा ध्यान रखती थीं। मुनि मगनलालजी तो आपके दीक्षित होने के बाद से अभिन्न सखा और पथ-प्रदर्शक मित्र बन गए। जीवन भर यह अभिन्नता प्रगाढ़ बनी रही। अपनी छोटी अवस्था में ही मुनि कालू श्री मघवागणि के लिए सहारा बन गए। उनके आदेशानुसार व्याख्यान देने लग गए, जिसके लिए लय और अर्थ स्वयं आचार्यवर बताते।

### निसृष्टता

श्रीमद् माणकगणि के शासन काल में वे गण और गणपति की गरिमा के अनुकूल व्यवहार करने में सदा सजग रहे। माणकगणि के यकायक बिना भावी व्यवस्था किए देहावसान हो जाने से संघ की नौका समस्या के तूफानी समुद्र में पड़ गई। सारे संघ पर गंभीर दायित्व आ गया। मुनिश्री मगन तथा श्री कालू दायित्व का भली-भांति निर्वाह कर रहे थे। एक बार एक मुनि ने अपने लिए समर्थन जुटाने के प्रयास में आपसे पूछा, 'कालूजी, अपना आचार्य कौन बनेगा?' आपने दो टूक उत्तर देते हुए कहा, 'मुझे नहीं मालूम, पर तुम और मैं दो तो आचार्य नहीं बनेंगे।' एक दिन मुनि कन्हैयालालजी ने आचार्य के अभाव की व्यथा को प्रकट करते हुए श्री मगन मुनि को कहा, 'मगनजी, धर्मसंघ की सारसंभार अभी आपके हाथ में है,

मुनि कालू को आचार्य पद पर बिठा दो सब कुछ ठीक हो जाएगा। वे सर्वथा आचार्य पद के योग्य हैं, वे श्रीमद् मघवागणि के विश्वासपात्र रहे हैं। आचार्य की नियुक्ति में विलंब होने से उलझने बढ़ जाएंगी।' मगन मुनि को अपने साथी की क्षमता के बारे में प्रशंसा सुनकर विस्मय और प्रमोद हुआ, पर वे भावना में बहने वाले नहीं थे। मुनि कन्हैयालालजी ने केवल अपने मन की ही नहीं, अनेक मुनियों के मन की बात कही थी। अतः मगन मुनि इस पर गहराई से चिंतन अवश्य करने लग गए। आपको ज्योंही मगन मुनि के चिंतन का पता लगा तो आपने उनको स्पष्ट कह दिया, 'आचार्य पद संभालने योग्य मेरी तैयारी नहीं है। मेरे लिए आचार्यत्व की बात असामयिक है। अवस्था, अनुभव तथा समय परिपक्व नहीं हुआ है, आप मेरा चिंतन बिल्कुल नहीं करें।' इतनी विरल निस्पृहता की बात सुनकर मगन मुनि को ही नहीं, गुरुकुल वास के सभी संतों को आश्चर्य हुआ। सत्ता की होड़ में अवसर मिलने पर भी पीछे सरकने वाला आप जैसा आत्मार्थी साधु बिरला ही मिलेगा।

संवत् १९५४ पौष कृष्णा ३ को मुनि कालूजी (बड़ा) उदयपुर से चातुर्मास कर लाडनू पधारें, जहां सारा संघ उनकी अतीव उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रहा था, क्योंकि ऐसे अवसर पर वे ही एक ऐसे समर्थ और क्षमताशील साधु थे, जो समाधान दे सकते थे। उन्होंने आते ही सारी स्थितियों का अवलोकन कर, उसी दिन मुनिश्री डालचंदजी को संघ का भावी आचार्य घोषित कर दिया। श्रीमद् डालगणि का व्यक्तित्व बहुत तेजस्वी था। उनसे हर कोई बात करने का साहस ही नहीं कर पाता अतः उन्हें संघ के सारे साधुओं को गहराई से जानने का अवसर भी नहीं मिल पाता था। उन्होंने भी माणक गणि के संभावित उत्तराधिकारी की खोज पर ध्यान दिया और दृष्टि दोड़ाई पर वे कोई निर्णय नहीं कर पाए। बाद में उन्होंने मगन मुनि को बुलाकर बार-बार आग्रह करके पूछा कि यदि वे आचार्यपद नहीं संभालते तो उन्होंने विकल्प में किसका नाम सोचा था? मन्त्री मुनि जब उत्तर देने के लिए विवश किए गए तो उन्होंने बता दिया कि विकल्प में उनके सामने मुनि कालूजी (छापर) का नाम था। डालगणि निश्चिन्त हो गए। एक बार श्रीमद् डालगणि ने आपको बुलाकर पूछा, "अन्तरिम काल में व्यवस्था कैसी रही और तुम्हारा चिन्तन किसे आचार्य बनाने का था?" आपने भांप लिया कि किसी ने उनके विरुद्ध आरोप लगाया है कि वे डालगणि के समर्थन में नहीं थे। आपने स्पष्ट उत्तर दिया, "मैं मघवागणि का शिष्य हूँ, वे मेरे आदर्श हैं तथा उनके पदचिह्नों का अनुकरण करना मेरा धर्म है। माणकगणि की भी मैंने उसी निष्ठा से सेवा की है। व्यक्तिशः मैं आपका अनुगामी कभी नहीं रहा, पर मैं गण और गणि के प्रति सदा समर्पित रहा हूँ और रहूँगा तथा आप आचार्य हैं इसलिए मैं आपका सदा सेवक बन कर रहूँगा। चिकनी चुपड़ी बातें करना, लंबे-लंबे हाथ जोड़ना, चापलसी करना मझे कभी पसंद नहीं रहा है।' इतने स्पष्ट उत्तर ने डालगणि जैसे:

तेजस्वी व्यक्तित्व के मानस में आपकी प्रखरता की स्थायी छाप जमा दी। माणक-गणि के स्वर्गवास के बाद आलोचना आदि के लिए दीक्षा स्थविर भीमजी स्वामी को स्वीकार किया गया। पाक्षिक क्षमायाचना के लिए परम्परा के अनुसार साध्वी प्रमुखा जेठांजी साध्वियों सहित वहां उनके पास पधारीं, तो आपने उनको स्पष्ट कहा कि 'यह विधि आचार्य की उपस्थिति में ही हो सकती है। अतः आचार्य की नियुक्ति तक यह परम्परा स्थगित रहेगी। आचार्य के सिवाय अन्य किसी की सन्निधि में साधु-साध्वी एकत्रित नहीं हो सकते। उनकी बात सभी को ठीक लगी और महासती जेठांजी जैसे आई वैसे ही लौट गई। वे श्रीमद् डालगणि, श्री भीमजी और साध्वी श्री जेठांजी के प्रति भी निरपेक्ष रहने तथा अपना स्वाभिमान कायम रखने का अप्रतिम साहस रखते थे।

### आचार्य पद पर

संवत् १९६० में बीदासर में वहां के ठाकुर हुकमसिंहजी ने श्रीमद् डालगणि को एक संस्कृत श्लोक भेजकर अर्थ जानना चाहा पर कोई उसका अर्थ नहीं बता सका। इस घटना ने आपको संस्कृत का पुनराभ्यास करने की प्रेरणा दी। चूरू में श्री रायचन्दजी सुराणा के सहयोग से पण्डित घनश्यामदासजी से आपने संस्कृत पढ़ना शुरू किया। कट्टर ब्राह्मण और संस्कारगत जैन संस्कृति के विरोधी होने के उपरान्त भी पण्डितजी ने अपने आपके व्यक्तित्व से आकर्षित होकर अवैतनिक अध्ययन कराना प्रारम्भ किया। चूरू से विहार होने पर भी अध्ययन का क्रम चालू रहा, बीच-बीच में पण्डितजी का योग मिलता रहा। संवत् १९६६ में श्रीमद् डालगणि अस्वस्थ हो गए। संघ की भावना देखकर उन्होंने आचार्य नियुक्ति-पत्र लिखा पर उसे लिफाफे में बन्द कर गुप्त रखा, किसी साधु-साध्वी को आचार्य के बारे में आभास तक नहीं हो सका। श्रीमद् डालगणि का संवत् १९६६ भादव सुदि १२ को स्वर्गवास हो गया। नियुक्ति पत्र खोला गया तो उसमें आपका नाम पाकर सर्वत्र प्रसन्नता की लहर छा गई, आपके जय घोष से वातावरण गूँज उठा। मुनि मगनलालजी ने चद्दर ओढ़ाकर अभिषेक किया और वे उनके जीवन पर्यन्त स्वतः सिद्धहस्त मंत्री और निर्लिप्त परामर्शदाता बन गए।

आचार्य बनने के बाद साध्वीश्री कानकुंवरजी के साथ मातृश्री छोगांजी ने बीकानेर चातुर्सास की सम्पन्नता पर मुजानगढ़ में आपके दर्शन किए, तब से दोनों आप के साथ रहने लगीं। श्रीमद् कालूगणि को, जो संघ सम्पदा विरासत में मिली, वह अनुपम थी, पर आपने उसमें विकास के नये आयामों का बीजारोपण किया। प्रथम मर्यादा-महोत्सव पर ही आपने अपने पास मात्र १६ साधु रखकर साधुओं के ७ तथा साध्वियों के ३ कुल १० नये सिंघाड़े बनाकर धर्म प्रचार को आगे बढ़ाया। ३७ वर्ष की आयु में संवत् १९७० के छपर प्रवास में आपने संस्कृत

का अध्ययन पुनः चालू किया तथा एकान्त में बैठ कर सिद्धान्त, चन्द्रिका के पाठ कंठस्थ किए। प्रौढ अवस्था और आचार्य के दायित्व के मध्य विद्याध्ययन के लिए उनकी कार्यशीलता और संकल्प अत्यन्त सहायक बने, संस्कृत विद्या के अध्ययन की व्यापक सम्भावना साकार बन गई। आपको एक स्वप्न आया कि उनकी आंखों के सामने सूखा वृक्ष लहलहा उठा है तथा फूलों से आकीर्ण होकर फलों से भरा पूरा हो गया है। स्वप्न का आपने फलितार्थ किया कि संघ में संस्कृत विद्या का सूखा वृक्ष पुष्पित पल्लवित और फलदायक बनकर शतशाखी बन जायेगा। फिर आपको एक स्वप्न आया कि गाय के सफेद बछड़े-बछड़ियां चारों तरफ फैल रही हैं जिसका फलितार्थ आपको लगा कि संघ में श्वेत वस्त्रधारी उनके बाल व तरुण साधु-साधवियां होंगी। इतिहास साक्षी है कि उनके दोनों स्वप्न साकार बने।

### विकास युग का उदय

आप जागृत अवस्था में भी सदा संघ-विकास के स्वप्न लेते रहते थे। आप स्वयं अनेक साधुओं को सारस्वत और सिद्धान्त चन्द्रिका पढ़ाने लगे। मुनिश्री मगनलालजी व कई श्रावकों के प्रयास से यतिओं के भण्डारों से अनेक हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त हुए, जिसमें 'सारकौमुदी' की एक प्रति प्राप्त हुई। बाद में मुनि चंपालालजी को भादरा में रावतमलजी पारख के पास यतिवर विशालकीर्तिगणि द्वारा निर्मित 'शब्दानुशासन अष्टाध्यायी' की प्रति मिली, जिसे पाकर आचार्यप्रवर बहुत प्रसन्न हुए। श्रीमद् कालूगणि सौभाग्यशाली थे कि उन्हें समर्पित एवं गतिशील संघ मिला। आचार्यवर संवत् १९७४ में सरदारशहर चातुर्मास सम्पन्न कर चूरु-पधारे, जहां यति रावतमलजी, जो संघ के प्रति अनुरागी थे, ने आपके समक्ष एक तरुण उद्भट संस्कृत विद्वान की चर्चा की। उस विद्वान को श्रीमद् कालूगणि का परिचय दिया। यतिजी के प्रयास से दोनों का मिलन हुआ, तरुण विद्वान पण्डित रघुनन्दनजी शर्मा थे। प्रथम मिलन में आचार्यवर ने जैनधर्म और तेरापंथ धर्मसंघ के बारे में फैली भ्रान्त धारणाओं का समुचित निराकरण किया। पण्डितजी इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने तेरापंथ धर्मसंघ की सेवा को ही अपनी नियतिमान लिया। वार्ता के आधार पर तत्काल साधु-चर्या पर संस्कृत में शतक की रचना कर आचार्यवर को भेंट दी। आचार्यवर उनकी ग्रहणशीलता, आशुकवित्त्व और विद्वत्ता से बहुत प्रभावित हुए और फिर दोनों व्यक्तित्व जीवन-पर्यन्त सात्विक स्नेह और श्रद्धा के सूत्र में बंध गए। तब से साधुओं का संस्कृत अध्ययन और सुगम हो गया। संवत् १९७८ में लाडनूं में जयचन्दलालजी बरमेचा के यहां 'हिम शब्दानुशासन' का प्रकाशित संस्करण उपलब्ध हो गया, जो सर्वांग सम्पूर्ण व्याकरण था। उसके प्रथम अध्ययेता सर्वश्री मुनि भीमराजजी, सोहनलालजी (चूरु), कानमलजी व नथमलजी (बागोर) बने। यह ग्रंथ कठोर तथा क्लिष्ट होने से आचार्यवर के मन में सरल

शब्दानुशासन बनाने की कल्पना जागी। मुनिश्री चौथमलजी की सतत कार्यशीलता और पंडित रघुनन्दनजी के सहयोग से 'श्री भिक्षु शब्दानुशासन' ग्रंथ का निर्माण हुआ, जो परिभाषा की जटिलता से मुक्त व कोमल सूत्र युक्त है। इसके प्रथम अध्येता आचार्यश्री तुलसी, श्री धनमुनि और श्री चंदनमुनि हुए। बाद में मुनि श्री चौथमलजी ने प्रक्रिया ग्रंथ के रूप में 'कालूकौमुदी' की रचना की जिसके प्रथम अध्येता युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ, मुनिश्री बुद्धमलजी आदि हुए। इस प्रकार देखते-देखते महाव्याकरण सर्वांग रूप से परिपूर्ण हो गया। अब तो संस्कृत विद्वानों से भी खुलकर चर्चा होने लगी। संवत् १६७० में रतनगढ़ में पंडित हरिनन्दनजी ने वार्ता में गर्वोक्ति के साथ कहा कि भट्टजी रचित 'सिद्धांत कौमुदी' की सानी का कोई ग्रंथ नहीं है तो आपने उक्त कौमुदी के द्वारा 'तुच्छ' शब्द की सिद्धि करने को कहा। पंडितजी ने घंटों प्रयास किया पर वे शब्द सिद्धि नहीं कर सके तब आचार्यवर ने कहा कि इस जगत् में सभी कुछ अपूर्ण है, अतः पूर्णता का गर्व किसी को नहीं करना चाहिए। संवत् १६७६ में भीनासर के कनीरामजी बांठिया आदि सूत्रकृताग आगम की टीका का अर्थ करने के लिए बीकानेर के पंडित गणेशदत्तजी को साथ लेकर आये पर उन्होंने टीका का पाठ पढ़कर वही अर्थ किया, जो आचार्यवर ने किया था, तो कनीरामजी निरुत्तर हो गए। आपका निश्चित मत था कि जो अपनी पूर्व धारणा की पुष्टि के लिए ही तत्त्वचर्चा करना चाहे, उससे चर्चा करना कभी सार्थक नहीं होता।

### उफान व तूफानों के बीच

श्रीमद् कालुगणि सौम्य प्रकृति के धनी थे। उनका ध्यान सदा सृजनात्मक प्रवृत्तियों में रहता था। आचार्यवर के नेतृत्व में तेरापंथ के प्रगति एवं विकास की धाराओं को फूटते देखकर कुछ लोग स्पर्धाविश उनका विरोध करने पर तुल गये। उस समय तक चुरू जिले में तेरापंथ का पर्याप्त प्रचार हो चुका था पर बीकानेर क्षेत्र में विशेष आवागमन साधु-साध्वी या आचार्यों का तब तक नहीं हो पाया था। संवत् १६४४ में श्रीमद् मघवागणि ने बीकानेर मर्यादा महोत्सव किया। उसके बाद संवत् १६७६ में आप ही आचार्य के रूप में यहां पधारे। सारे तेरापंथ समाज को इससे आनन्दानुभूति हुई पर दूसरे समाजों में आश्चर्य, सन्देह, स्पर्धा और विद्वेष के भाव जाग उठे। संवत् १६७६ का चातुर्मास आपने बीकानेर में किया। दूसरे विद्वेषी लोगों ने आपके विरुद्ध गालियों की बौछार की। भद्दी और अश्लील पुस्तकें प्रकाशित कीं, पर यह सब एक पक्षीय था, आपने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की और वहां के समाज तथा साधुओं को मौन और शान्त रहने का आदेश दिया। विरोधी लोग इससे और बौखला उठे। मुनि मगनलालजी के शौच स्थान (जंगल) से वापस आते वक्त पीठ पर जानबूझकर चाबुक मारा गया। मुनि

चांदमलजी व श्रावक सुमेरमलजी बोथरा इस प्रकार के निम्न स्तरीय व्यवहार से क्षुब्ध हो उठे पर आपने उन्हें उत्तेजित नहीं होने दिया। एक बार आचार्यवर स्वयं मिट्टी के ढूँहों की खोखाल में शौचार्थ पधारे कि एक अज्ञात क्रूर व्यक्ति हाथ में पिस्तौल तान कर उनके सामने अप्रत्याशित रूप से खड़ा हो गया। पर ज्योंहि उसने आचार्यवर की तेजोमय मुद्रा देखी कि उसके हाथ से पिस्तौल गिर पड़ा और उसने आपके चरणों में पड़कर क्षमा-याचना की और बताया कि वह किसी के बहकाने से हत्या करने आया था, पर आचार्यवर के पवित्र आभावलय को देखकर यह जघन्य पाप करने का दुस्साहस न कर सका। इतने में अन्य साधु भी वहाँ पहुँच गए पर गृहस्थों से किसी ने इसकी चर्चा तक नहीं की। षड्यन्त्रकारियों को पता लगते ही उन्हें सांप सूँघ गया और भण्डाफोड़ हो जाने के डर से उन्होंने विरोध और उग्र बना दिया।<sup>१</sup> अन्त में ऐसे विषाक्त वातावरण की सूचना बीकानेर राज्य के युवराज तथा गृहमन्त्री शार्दूलसिंहजी को मिली। महाराजा गंगासिंहजी विदेश में थे। अतः उनके आने के पूर्व पारस्परिक वैमनस्य मिटाने के लिए उन्होंने मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और तेरापथी समाज के प्रमुख व्यक्तियों (कनीरामजी बाँठिया, लिखमीचन्दजी डागा, पूनमचन्दजी कोठारी और सुमेरमलजी बोथरा) के बीच लिखित समझौता करवाया कि वे तेरापथियों के विरुद्ध व्यक्तिगत द्वेष या आक्रमण नहीं करेंगे, न ऐसी सामग्री प्रकाशित करेंगे। इस समझौते से उग्रपंथी लोग शान्त न हो सके और उन्होंने 'पूज्य कालूरामजी की ढोल में पोल लीला' एक भद्दी व झूठी अश्लील पुस्तक छपाकर समझौता भंग कर दिया। विरोध पर लगभग एक लाख चालीस हजार रुपया उस जमान में खर्च किया गया, जिसकी जानकारी खर्च का चिट्ठा, कलकत्ता में गंतव्य पर न पहुँचकर, अन्यत्र पहुँच जाने से हुई। उस विरोध में एक उच्च राज्याधिकारी भी सम्मिलित था। बीकानेर महाराजा गंगासिंहजी को इन सब बातों का पता लगने पर उन्होंने राजपत्र में दिनांक ३१-१०-२३ में आज्ञा प्रसारित कर सारी प्रकाशित सामग्री जब्त की, कनीरामजी बाँठिया, लिखमीचन्दजी डागा, मंगलचंदजी मालू से हजार-हजार के मुचलके लेकर लिखित इकरारनामा शांति बनाए रखने का लिया। मुनि मगनसागर (जयपुर) व आनन्दराज सुराणा को बीकानेर से निष्कासित किया तथा जनता को ऐसे प्रकाशनों से अलग रहने का आग्रह किया गया। इस आदेश से विद्वेष का गढ़ ढह गया। किसी जैन साधु को लिखित राज्याज्ञा से निष्कासन का पहला अवसर था। श्रीमद्. कालूगणि संवत् १६८३ व ८७ में फिर गंगाशहर चातुर्मास कर बीकानेर पधारे पर तब तक विरोध की आंच मंद पड़ चुकी थी, बुझ गई थी।

संवत् १६६२ में आचार्यप्रवर ने मालवा की यात्रा की। जावरा में कुछ

१. तेरापंथ का इतिहास : मुनि बुद्धमलजी।

श्वेतांबर बंधुओं ने कालूगणि के विरोध में अवांछनीय पर्वे छपवाकर बांटे। तेरापंथ की विचारधारा से वहाँ बहुत कम लोग परिचित थे। अतः पर्वों ने जिज्ञासा व उत्सुकता पैदा कर दी। आचार्यवर के पधारने से हजारों लोग प्रवचन सुनने पहुंचे, आपने संघ के विरुद्ध फैलाई गई उन तमाम भ्रांतियों का स्पष्ट निराकरण किया जिससे विद्वेषीजनों द्वारा फैलाया गया जहर साफ हो गया। वहाँ से विहार कर आप रतलाम पहुंचे तो वहाँ भी विद्वेषीजनों ने उसी तरह की प्रचार सामग्री वितरित की पर आपकी ओर से उसके पक्ष या विपक्ष में कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की गई। तीन दिन बाद कुछ बुद्धिजीवी आपके सम्पर्क में आए व उनके अगुवा एक डॉक्टर ने निवेदन किया—‘महाराज, हम दो दिन से आपके विरुद्ध विरोधी भाषण और पर्वे सुन, पढ़ व देख रहे हैं, आपकी प्रतिक्रिया की हमने प्रतीक्षा की पर कोई उत्तर न पाने के कारण हमको लगा कि आप जहर को पचाने वाले आशुतोष हैं, और इसी कारण हम आपके प्रति श्रद्धा व्यक्त करने आए हैं।’ तेरापंथ का प्रचार वस्तुतः विद्वेषीजनों के उग्र विरोध और उस पर किसी प्रकार की प्रतिक्रिया न करने के कारण ही स्थायी एवं प्रभावी बना है। संवत् १९७२ में आपके उदयपुर चातुर्मास में अनेक विरोधी पर्वे बंटे पर कोई उत्तर नहीं दिया गया। महाराणाजी ने हीरालालजी भुरड़िया से इन पर्वों को उत्तर न देने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि हमारे संघ में विरोध का उत्तर सृजनात्मक कार्य से ही दिया जाता है। विरोध या पर्वेबाजी से नहीं। महाराणाजी का उत्तर सुनकर सुखद आश्चर्य हुआ। कुछ दिनों बाद एक पर्वी प्रकाशित हुआ, जिसमें लिखा था, ‘पंचायती नोहरे की भट्टी में एक गाय जलकर मर गई, तेरापंथ के पूज्य कालूगणिजी वहाँ चातुर्मास कर रहे हैं। तेरापंथी श्रावक उस समय मौजूद थे, पर किसी ने गाय को नहीं बचाया।’ यह पर्वी आग फैलाने वाला था। अतः महाराणाजी ने भुरड़ियाजी को बुलाकर स्पष्टीकरण देने को कहा ताकि जनता में झूठी भ्रांति न फैले और वातावरण विषाक्त न बने। भुरड़ियाजी ने इस सुझाव को आचार्यवर के समक्ष रखा तथा मंत्री मुनि को बताया, दोनों की सहमति से स्पष्टीकरण प्रकाशित किया गया कि ‘चातुर्मास में पंचायती नोहरे में कोई जीवनवार नहीं होता, कोई भट्टी नहीं जलती अतः गाय जलने की और न बचाने की बात सर्वथा मिथ्या है, वह द्वेष फैलाने के कारण गढ़ी गई है।’ इस स्पष्टीकरण से भ्रम निरस्त हो गया और तनाव नहीं बढ़ा। संवत् १९७३ और १९६१ में जोधपुर चातुर्मास के समय वर्षा विलंब से होने के कारण यह बात प्रचारित की गयी कि आचार्यवर तथा उनके साथियों ने वर्षा बंद कर दी है। इससे अज्ञेन लोगों में बड़ा भ्रम फैला पर संयोग से बाद में इतनी वर्षा हुई कि जनता तृप्त हो गई और भ्रम का कुहासा स्वतः समाप्त हो गया।

## दीक्षा में अवरोध

इसी तरह का विरोध तेरापंथ की दीक्षा प्रणाली को लेकर भी हुआ। संवत् १९७७ में आपके भिवानी चातुर्मास में चार दीक्षाएं होने वाली थीं। तेरापंथ के विरोधी लोगों ने धामक प्रचार कर जनता को भ्रान्त किया और दीक्षा को रोकने का संकल्प लेकर दीक्षा के पूर्व रात्रि में एक सभा का आयोजन किया गया। सभा में आग भड़काने वाले भाषण चल रहे थे कि यकायक सबको लगा कि सफेद भारी वस्तु आकाश से तेजी से नीचे गिरती आ रही है। उसे देखकर लोग भय भ्रान्त हो गए तथा अपनी-अपनी जान बचाने की फिक्र में भाग गए। सभा समाप्त हो गई। दूसरे दिन प्रातः निर्विघ्न दीक्षाएं हुईं। विरोध करने वाले हतोत्साह हो चुके थे। संवत् १९९१ में जोधपुर चातुर्मास में श्रीमद् कालूगणिजी ने अपने जीवनकाल की सर्वाधिक २२ दीक्षाएं एक साथ दीं। वहां भी दीक्षा के पूर्व विद्वेष के कारण दीक्षा का विरोध रचा गया पर सर्वश्री माणकचन्द जी भण्डारी, उम्मेदराजजी भण्डारी, हणूतमलजी सिंधी ने महानिरीक्षक पुलिस को सही स्थिति बताई। राजकीय व्यवस्था, सुरक्षा और सतर्कता के कारण स्थिति जटिल नहीं बनी। वहां के प्रमुख एवं प्रख्यात श्रावक प्रतापमलजी मेहता एडवोकेट ने प्रधानमंत्री को जाकर चुनौती भरे शब्दों में कहा कि 'दीक्षा हर हालत में होगी और राजा की ओर से हस्तक्षेप करने का प्रयास किया गया तो सरकारी तोपों व गोली का पहला शिकार वे होंगे।' अत्यन्त विनम्र एवं प्रतिष्ठित वकील के मुंह से ऐसी बात सुनकर प्रधानमंत्री ने उन्हें आश्वासन दिया कि दीक्षाओं में किसी प्रकार का अवरोध किसी ओर से नहीं होगा। संवत् १९९२ उदयपुर चातुर्मास में वहां के कोठरी परिवार के दस वर्षीय सुन्दर, समझदार, सहज विरक्त एवं भावुक बालक 'मीठालाल' की दीक्षा को लेकर बड़ा होहल्ला मचाया गया कि 'श्रीमद् कालूगणिजी उसे जबरदस्ती दीक्षित कर रहे हैं, उसके माता-पिता सात दिन से निराहार हैं, रो रहे हैं और उन्हें दीक्षा की अनुमति देने के लिए मजबूर किया जा रहा है।' आचार्यवर पंचायती नोहरे में ठहरे हुए थे। वहां उपद्रव करने की योजना थी पर ईश्वरचन्दजी चोपड़ा की सतर्कता के कारण वैसा नहीं हो सका। दीक्षा महाराणा भूपाल कालेज में होने वाली थी, पुलिस में दंगा होने की रिपोर्ट की गयी। दीक्षा का समय आ गया। हजारों यात्री एकत्रित हो गए। पुलिस अधिकारी वहां आए और आचार्यवर के दर्शन कर स्थिति की जानकारी की। मीठालालजी और उसके माता-पिता से वार्ता कर उनकी स्वेच्छा का पता लगाया। दीक्षा पद्धति देखकर पुलिस अधिकारी संतुष्ट हो गए, ठाठ बाट से दीक्षा हुई। महाराणा भूपालसिंहजी को स्थिति की जानकारी दी गई, तो वे प्रसन्न हुए और सोचा कि सुनी बात पर यदि कार्यवाही की जाती, तो अनर्थ हो जाता।



दीक्षा के विषय में तेरापंथ का दृष्टिकोण यह है कि योग्य दीक्षा होनी चाहिए, चाहे वह बालक, युवा या वृद्ध ही क्यों न हो। बालक को स्थायी धार्मिक संस्कार ढालना में सुगम होता है। कुछ लोग बाल दीक्षा का विरोध करने में थे। मारवाड़ (जोधपुर राज्य) में नाबालिग दीक्षा विरोधी बिल रिजेन्सी कौंसिल में २८-२-१४ को पेश हुआ था। श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा ने इसके विरोध में ज्ञापन दिया। मारवाड़ राज्य के मुख्य न्यायाधीश ए० डी० सी० बार ने अन्य राज्यों में ऐसे बिल के कानून बन जाने और उसके परिणामों को देखने तक इस बिल को पास करने की कार्यवाही स्थगित कर दी। यू० पी० कौंसिल में सन् १९१४ में मुजफ्फरनगर के लाला सुखवीरसिंहजी ने नाबालिग दीक्षा विरोधी बिल पेश किया। उन्हें भी इलाहाबाद में तेरापंथ का शिष्टमण्डल मिला व ज्ञापन दिया। लालाजी ने ३१-१२-१४ को त्यावर में श्रीमद् कालूगणिजी के दर्शन किए तथा दीक्षा समारोह देखा। उन्होंने भावना रखी कि उनका बिल तेरापंथ दीक्षा पर लागू न हो, ऐसी व्यवस्था वे उसमें करेंगे। बाद में युद्ध छिड़ जाने से बिल पास न हो सका। बीकानेर स्टेट विधान सभा में भी १८-१२-२९ को ऐसा प्रस्ताव आया पर तेरापंथ समाज की सतर्कता के कारण प्रस्ताव पास नहीं हो सका। धारा सभा बड़ौदा में १९-१२-२९ को ऐसा ही बिल आया, जिसके विरुद्ध भी ज्ञापन दिया गया। चार दीक्षाधियों को बड़ौदा ले जाकर सभा के सदस्यों से मिलाया गया और वार्ता कराई गयी। बड़ौदा महाराजा को भी ज्ञापन दिया गया। तेरापंथ की दीक्षा प्रणाली से सभी प्रभावित हुए तथा बिल पास होने से रुक गया। इस तरह आपके आशीर्वाद व मंत्री मुनि की सलाह से श्रावक समाज सभी जगह सफल हुआ।

### समाज में भूचाल

आचार्यवर ने समाज के उफान और तूफान को भी शांति से झेला। आपकी निरपेक्षता, तटस्थ वृत्ति और शान्ति ने बड़ी समस्या को लघु बना दिया। संवत् १९७३ में विदेश यात्रा को लेकर थली प्रदेश (बीकानेर डिवीजन) का ओसवाल समाज 'श्री संघ और विलायती' दो घड़ों में बंट गया। आपस में खान-पान, शादी-विवाह, आने-जाने तक का व्यवहार बंद हो गया। परस्पर गाली-गलौच और निम्न स्तरीय आलोचना का खुलकर प्रयोग होने लगा। विशुद्ध सामाजिक विवाद होने पर भी धर्मसंघ या संघपति अप्रभावित रह सकें, यह संभव नहीं था। तेरापंथ का मुख्य विहार क्षेत्र उस समय थली था। सारे समाज की आचार्यवर में अगाध श्रद्धा थी। आपने विवाद रोकने का प्रयत्न किया पर अहं के आवेग में श्रद्धा भी गौण बन जाती है। आपने साधु-साधिवियों को दिशा-निर्देशन देते हुए कहा, 'इस समय थली का समाज दो पक्षों में बंटा हुआ है, आवेश में वे

वास्तविकता समझ नहीं पा रहे हैं, दोनों पक्ष हमारे श्रावक हैं। अतः हम सबके प्रति समान व्यवहार रखें, किसी का पक्ष न लें तथा किसी से सामाजिक विवाद के बारे में कोई बात नहीं करें, न सुनें।' आचार्यवर की इस शिक्षा का परिणाम अत्यधिक सुन्दर रहा, समाज की धार्मिक एकरूपता पूर्ववत् बनी रही। कुछ लोगों ने इस विवाद से लाभ उठाने हेतु धर्मसंघ में विघटन करने की योजना बनाई। स्थानकवासी आचार्यश्री जवाहरलालजी को थली में बुलाया। वे संवत् १९८४ में थली आए। स्थान-स्थान पर शास्त्रार्थ होने लगे। इन चर्चाओं में मुनिश्री हेमराजजी, भीमराजजी, घासीरामजी, सोहनलालजी, चंपालालजी, कानमलजी, नथमलजी, रंगलालजी, ऋषिरायजी ने बड़ी तत्परता से भाग लेकर आचार्यश्री जवाहरलालजी की आपत्तियों का सफलतापूर्वक निरसन किया। सरदारशहर में नेमनाथजी सिद्ध, जैन दर्शन, न्याय तथा तेरापंथ के सिद्धान्तों के कुशल ज्ञाता और प्रवक्ता थे। उनकी तर्क-शक्ति प्रखर थी। उन्होंने अनेक शास्त्रार्थों में तेरापंथ के सिद्धान्तों का सफलता से प्रतिपादन किया। आचार्यवर को अपनी साधना और संघ की निष्ठा पर पूरा विश्वास था, वे कहते 'चिंता क्या है? जिसकी पतली है, उसकी फूटेगी। हमारा तो आधार बहुत मजबूत है, उसे कौन हिला सकता है?' वस्तुतः यह विवाद तूफान बना, आचार्य जवाहरलालजी के आने से बवण्डर हो गया, पर उसकी भयंकरता स्वतः समाप्त हो गई, तेरापंथ का तिनका भी न हिला।

मुनि ऋषिरामजी उस समय प्रभावशाली अग्रणी थे। उन्होंने लाडनू व्याख्यान में तेरापंथ की परम्परा के विरुद्ध कुछ बातें कह दीं जिस पर आचार्यवर ने उन्हें परिषद् के सम्मुख उलाहना और प्रायश्चित्त दिया। संवत् १९८६ में उनके पिता मुनि लछीरामजी के प्रमादाचरण करने व प्रायश्चित्त न लेने के कारण उन्हें गण से अलग कर दिया गया। ऋषिरामजी को आवेश आ गया और वे अंतसंत बकने लगे। तब आचार्यवर ने उनको गंभीर चेतावनी दी, इस पर वे शान्त हो गए। संवत् १९९० के पंचपदरा चातुर्मास में ऋषिरामजी ने कलुषित भावना से संघ और संघपति के प्रति दुष्प्रचार प्रारम्भ कर दिया। समदड़ी के वृद्धिचंदजी जीरावला की जांच करके सूचना पर आचार्यवर ने वहां के श्रावकों से उन्हें गण से बहिष्कृत करा दिया। संवत् १९९० के मर्यादा महोत्सव के अवसर पर मुनि दयारामजी, फतेचंदजी, चिरंजीलालजी, हरियाणा के अग्रवाल जाति के नाम पर दलबंदी की और नया पंथ चलाने की योजना बनाई जिसकी जानकारी आचार्यवर को दीक्षार्थी जालीराम से मिली। आचार्यवर ने उन तीनों को बुलाकर भरी परिषद् में संघ से बहिष्कृत कर दिया। संवत् १९८९ में सरदारशहर में आचार्यवर व स्थानकवासी मुनि केशरीचंदजी का चातुर्मास था। एक बार श्री केशरीचंदजी आचार्यवर को शौचार्थ जाते मार्ग में मिले और चर्चा वार्ता करनी चाही। आचार्यवर ने उपयुक्त स्थान व समय न देखकर वार्ता करने से मना कर दिया तो उन्होंने कहा, 'आप आगे

जाएंगे तो आपको भीखणजी की आण है, सब आचार्यों की आण है।' आचार्यवर उसकी उपेक्षा कर शहर में आ गए। पीछे कुछ श्रावकों ने उपहासपूर्वक केशरीचंदजी को कहा कि 'ऐसी आण से कोई फायदा नहीं, यदि हम आपको आगे जाने के लिए आचार्य जवाहरलालजी की आण दिला दें तो आप आगे नहीं जाएंगे क्या?' केशरीचन्दजी को तो संघर्ष का बहाना भर चाहिए था और वे वहीं बैठ गए। स्थानकवासी समाज में रोष जाग उठा तथा विरोध के स्वर गूंजने लगे। बीकानेर महाराज गंगासिंहजी ने अपने गृहमन्त्री को भेजकर कठोरता से कार्य करने का निर्देश दिया। उन्होंने केशरीचन्दजी को श्रीमद् कालूगणि से क्षमा-याचना करने और श्रावकों को श्री केशरीचन्दजी से क्षमा-याचना का आदेश देकर मामले को सुलझाया। इस प्रकार आपके शासन काल में जो भी तूफान और उफान आए, वे आपके पुण्य प्रभाव से स्वतः तिराहित हो गए।

### सौभाग्यशाली

पूज्य कालूगणि अत्यन्त भाग्यशाली थे। हरियाणा यात्रा में उन्होंने जन-जन में हार्दिक भक्ति और श्रद्धा का अतिरेक पाया। बीकानेर महाराजा गंगासिंहजी का आपसे घनिष्ठ भक्ति-सम्बन्ध था, संवत् १९९२ में उदयपुर महाराणा भूपालसिंहजी ने आपके दर्शन किए व उपदेश सुना। बाव (गुजरात) में राणाजी ने आपके दो बार दर्शन किए तथा उनके आग्रह से बाव में साधु-साधिवियों के चातुर्मास प्रारम्भ हुए। चारण कवि लिखमीदानजी आपके श्रद्धालु भक्त थे। आचार्यप्रवर के जीवन काल में कई नये प्रयोग और नयी दिशाओं के द्वार खुले। वे मानसिक या स्नायविक तनाव-मुक्ति के लिए स्वाध्याय का प्रयोग करते तो उन्हें नींद आ जाती। कभी-कभी किसी विषय पर चिंतन करते उन्हें नींद आ जाती तथा अवचेतन मस्तिष्क में उस विषय का स्वतः समाधान मिल जाता मानो श्री मघवा गणि ने ही उनको समाधान दिया हो। उनके हाथ से लिखे पन्नों पर सरस्वती मंत्र के उल्लेख से लगता है कि विद्याविकास की भावना से उन्होंने मंत्र-अराधना की हो। आचार्यवर दग्धाक्षर की आशंका से अच्छे कवि होने पर भी कविता नहीं लिखते पर कभी-कभी शिक्षा हेतु सुन्दर दोहा या छंद अवश्य रच लेते थे। संवत् १९९१ फाल्गुन सुदी ६ को आपने मुनि तुलसी को संकेत कर एक सोरठा कहा जो इस प्रकार है—

‘सीखो विद्या सार, परहरो परमाद ने।

बधसी बहु विस्तार, धार सीख धीरज मने ॥’

फाल्गुन वदि ६ को एक और सोरठा आपने फरमाया जो इस प्रकार है—

‘शिशु मुनिवर सुविसेख, क्रिया नित्य निर्मल करो ।  
रंच न चूको रेख, देख देख पगला धरो ॥’

इन पदों में अपने भावी उत्तराधिकारी को उन्होंने कितनी गहरी शिक्षा दे दी । अपने प्राणघाती व्रण की भयंकर वेदना में वे प्रतिदिन भक्तामर का पाठ करते । सिलाई, रंगाई, रजोहरण की कला का आपके युग में बहुत विकास हुआ । आपने संवत् १६८७ में मुनि घासीरामजी को खानदेश, बरार, हैदराबाद, संवत् १६८९ में मुनि सूरजमलजी को बम्बई, संवत् १६९० में मुनि चंपालालजी को जबलपुर, संवत् १६९२ में मुनि कानमलजी को बम्बई, पूना, अहमदनगर आदि अनेक सुदूर प्रदेशों में ज्ञान, दर्शन, चरित्र की वृद्धि हेतु भेजा । इस प्रकार तेरापंथ का प्रचार क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया । आपके शासनकाल में श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा और तेरापंथी विद्यालय की स्थापना हुई, कई सामयिक प्रवृत्तियों ने जन्म लिया । आचार्यवर के समय में यह निश्चित हो गया कि ज्ञान, दर्शन, चरित्र की जहां वृद्धि हो, वे सभी प्रदेश आर्य क्षेत्र हैं और वहां साधु जा सकते हैं । आपके समय में श्रीमद् जयाचार्य कृत, ‘भ्रम विध्वंसनम्’ नामक वृहद् तात्त्विक ग्रंथ का मुनि चौथमलजी और पण्डित रघुनन्दनजी ने सम्पादन किया एवं ईसरचंद जी चोपड़ा ने उसे प्रकाशित करवाया । इसी तरह श्रीमद् जयाचार्य के अन्य ग्रंथ ‘प्रश्नोत्तरं तत्त्व बोध’ को गुलाबचंद जी लूणिया ने संपादन कर प्रकाशित करवाया । आपने अनेक आगम ग्रंथों को संस्कृत टीकाओं के माध्यम से पढ़ना प्रारम्भ किया । संवत् १६७० में जर्मनी के प्रसिद्ध जैन साहित्य अध्येता डॉ० हर्मन जैकोबी जैन साहित्य सम्मेलन में जोधपुर आए । केशरीचंदजी की कोठरी (चूरू) के निवेदन पर उन्होंने आचार्य-वर से मुख्यतः प्राकृत एवं संस्कृत में बातचीत की । तेरापंथ के संगठन, आचार-शीलता और नेतृत्व से वे बहुत प्रभावित हुए । उन्होंने एक युगल (हुलासमलजी तथा उनकी पत्नी मालूजी) को दीक्षित होते देखा । आचार चूला के एक पाठ (मच्छं वा मसं वा) पर विस्तृत चर्चा की और सही अर्थ समझा । जूनागढ़ में उन्होंने इस यात्रा को ‘भगवान् महावीर’ की साकार साधना देखने और आचार चूला का सही अर्थ समझने वाली यात्रा बताया । इटालियन विद्वान् डॉ० एल० पी० टसीटोरी, प्रो० गेल्सी, जयपुर के रेजिडेंट पिटरसन, आबू के ए० जी० जी०, जी० आर० हालेण्ड और उदयपुर के रेजिडेंट आदि कई पाश्चात्य विद्वानों ने आपके दर्शन कर आध्यात्मिक आह्लाद प्राप्त किया ।

आचार्यवर अपने मातृश्री छोगांजी के प्रति श्रद्धावन्त थे और उनकी भावना का आदर करते । वे चातुर्मास के बाद उनके स्थिरवासी स्थान बीदासर पधार कर उनको सेवा का पूरा-पूरा अवसर देते । उनसे तथा मंत्री मुनि से वे विनोद में भी बात कर लेते, मातृश्री भी उनके आने का समाचार जानकर एकदम स्वस्थ हो जातीं पर

इतना होते हुए भी शासन व्यवस्था में उनका हस्तक्षेप स्वीकार नहीं था। छोगांजी ऋजु, सरल, तपोमय और जागरूक व्यक्तित्व की धनी थीं और आप महान् माता के महान् पुत्र थे। मंत्री मुनि मगनलालजी को भी वे अनुशासन की पालना के लिए, कभी-कभी उलाहना दे देते थे। पर इसके उपरांत भी वे उनका अत्यधिक सम्मान करते थे। जीवन के अंतिम दिनों में मंत्री मुनि ने शिक्षा फरमाने को कहा तो आपने कृतज्ञ भाव प्रकट करते हुए कहा कि 'उन्होंने जो शिक्षा दी उससे दोनों ने बड़ी-बड़ी घाटियों को लांघा है।' सरदारशहर में एक बार श्रीचंदजी गधैया और बालचंदजी सेठिया के बीच मनमुटाव होने पर आपने वहां साधु-साध्वी न भेजने की बात कही, तो दोनों ने तत्काल आपस में क्षमा-याचना की। संवत् १९८१ में भयंकर सर्दी में भी आचार्यवर ने अपने भक्त श्रावक श्रीचंदजी गधैया के आग्रह पर बीदासर से संघ सहित विहार कर सरदारशहर में मर्यादा महोत्सव मनाया। आचार्यवर समय-समय पर अपने शिष्यों (मुनि तुलसी सहित) की गेय रागिनियों के विषय में, संस्कृत विभक्ति या संधि विच्छेद, उच्चारण, स्वाध्याय, तपस्या आदि के बारे में परीक्षा लेते और प्रोत्साहन देते। अंतिम वर्षों में आपने मुनि तुलसी को साधुओं को अध्ययन कराने का काम सौंपा और उनके विद्या-अभ्यास का स्वयं ने पूरा ध्यान रखा। आप श्रावकों और सामान्य जन के, सभी के लिए भक्त-वत्सल थे। संघ के हर कार्य में आप सजग रहते। मुनि शिवराज जी आपके दैनिक कार्यों में हर सम्भव सहयोग करते, ताकि संघ के हर सदस्य के प्रमाद का परिमार्जन हो जाए।

### अस्वस्थता

संवत् १९९३ ग्रीष्मकाल में आचार्यप्रवर मालवा की यात्रा सम्पन्न कर, थली प्रदेश जाने की भावना लिये मेवाड़ पधार रहे थे, कि जेठ वदि १० के दिन जावद शहर के पास आपके बाएं हाथ में एक छोटी-सी फुंसी उठी, जिसमें चुभन की पीड़ा लगने से कांटे की आशंका से उसे मुनि चौथमलजी ने कुरेदा, तो कांटा तो नहीं मिला, पर पीड़ा बढ़ गई और व्रण निकल गया। चित्तौड़ तक आते-आते व्रण का विस्तार हो गया, वेदना बढ़ गई, शोथ अधिक हो गया और समूची हथेली में फैल गया, आटे की पुलटिस बांधी तो वह पीप से भर गयी। हाथ में टीस होने लगी। गर्मी की परेशानी में आहार की रुचि और नींद में कमी हो गयी। चलना, उठना, बैठना, सोना सभी कुछ बोझिल हो गए। रात्रि का व्याख्यान तुलसी मुनि देने लगे। गंगापुर के श्रावकों की प्रार्थना पर आपने गंगापुर चातुर्मास फरमाया। पुलिस अधीक्षक भीलवाड़ा मदनसिंहजी मुरड़िया के निवेदन पर आपने भीलवाड़ा पधारने का निश्चय किया। मार्ग में मंडपिया गांव में आषाढ़ कृष्णा १ को डॉक्टरों का दल पहुंचा और परीक्षा करके कहा, 'व्रण का तत्काल ऑपरेशन होना जरूरी है।' आचार्यवर ने गृहस्थों को ऑपरेशन कराने व अपने लिए दवाई लाने की आशंका से

ऑपरेशन कराने से मना कर दिया व जीवन के प्रति अनासक्त भाव प्रकट किया। आपके दृढ़ संकल्प के कारण, मुनि चौधमलजी ने चाकू से त्रण का ऑपरेशन किया, मवाद निकाला व गृहस्थ के यहां से मलहम लाकर पट्टी बांधी, जिससे कुछ आराम मिला। आसाढ़ वदी ३ को आप भीलवाड़ा पधारे तथा डॉ० नन्दलालजी की देख-रेख में विधिवत् उपचार प्रारम्भ हुआ। आचार्यवर की अस्वस्थता का समाचार जानकर सर्वत्र चिन्ता व्याप्त हो गयी। डॉ० अश्विनीकुमार कलकत्ता से और डॉ० विभूति-भूषण लाडनू से भीलवाड़ा आए। वे संघ के प्रति परमश्रद्धावान तथा आचार्यवर के अनन्य भक्त थे। उदयपुर के वरिष्ठ श्रावक भंवरलालजी डोसी के पुत्र मालमसिंह जी ईंडर में डॉक्टर थे, वे भी पता लगने पर भीलवाड़ा आ गए। चारों डॉक्टरों ने विचार-विमर्श कर उपचार प्रारम्भ किया पर मूत्र परीक्षा से मधुमेह की बीमारी का पता लगने से घाव भरना संभव नहीं रहा। अश्विनीकुमार ने मधुमेह की औषधि देनी चाही पर आपने शंका के कारण नहीं ली। रोग बढ़ता गया और एक दिन डॉक्टर अश्विनीकुमार ने आंखों में आंसू भर कर मंत्री मुनि को कह दिया, 'रोग के लक्षण देखने से लगता है कि आचार्यवर स्वस्थ नहीं होंगे, शरीर नहीं रह पायेगा, आगे का आप सोच लें।' डॉक्टर ने अन्य किसी को यह अप्रिय बात नहीं कही। आचार्यवर भीलवाड़ा १४ दिन बिराजे, शरीर की शक्ति घटती गई पर वचनबद्ध होने के कारण अत्यन्त कष्टसाध्य होने पर भी गंगापुर के लिए प्रस्थान कर दिया। २५-३० मील का रास्ता एक सप्ताह से अधिक समय में तय हुआ। केवल मनोबल के आधार पर वे चले, वरना शरीर तो कभी का उत्तर दे चुका था। गंगापुर पधार कर श्री रंगलालजी हिरण के मकान में बिराजे, वहां आपने ५० मिनट तक धाराप्रवाह प्रवचन दिया। उस समय आपके साथ २४ साधु और २७ साधिव्यां थी। संघ की प्रगति की अनेक संभावनाएं बन रही थीं, पर आपका स्वास्थ्य दिन पर दिन चिन्तनीय बन रहा था। अब तक लीवर विकृत हो चुका था, सारे शरीर में शोथ फैल चुका था, ज्वर सतत रहने लगा, खांसी सताने लगी तथा अन्न की अरुचि हो गई। केवल देखने वाले या सर्वज्ञ भगवान ही जानते हैं कि उस भयंकर बीमारी से आप अविचल योद्धा की तरह निडर होकर कैसे जूझ रहे थे या जिन कल्पिक मुनि की तरह उसे कैसे समभाव से सहन कर रहे थे? आयुर्वेदाचार्य व आपके परम भक्त श्रीरघुनन्दनजी पण्डित भी आ गए। उन्होंने भी निदान कर उपचार प्रारम्भ किया पर रोग शांत नहीं हुआ। उन्होंने जयपुर के अनुभवी वैद्य लछीरामजी को २१ पद्यों का संस्कृत भाषा में पत्र लिखा और रोग निदान तथा चिकित्सा का वर्णन कर परामर्श चाहा। स्वामी लछीरामजी ने उनकी चिकित्सा का पूर्ण समर्थन करते अन्त में लिखा, 'रोग कष्ट-साध्य है, अवस्था वृद्ध है, रोगी अशक्त है, वर्षाऋतु उपद्रव कर रही है, ये सारी स्थितियां प्रतिकूल हैं।' पण्डितजी ने फिर कुछ नयी औषधियां मिलाकर उपचार किया तो खांसी का वेग बंद हो गया

और आपको नींद आने लगी, जिससे सब उल्लसित हुए, पर इसके उपरान्त भी बीमारी जटिल स्थिति में उलझती गई। कुछ लोगों ने बवण्डर खड़ा किया कि रंग-भवन में यक्ष रहता है और वह बीमारी ठीक नहीं होने देता, अतः उसे बदल देना चाहिए, पर आपने कहा कि 'यक्ष से मुझे कोई भय नहीं है। भय होगा तो भी सहेंगे पर स्थान की बदनामी नहीं होने देंगे, महत्त्व कम नहीं करेंगे।' पण्डित रघुनन्दनजी अत्यन्त प्रचुरता से उपचार कर रहे थे पर नियति के आगे पुरुषार्थ को भी हार माननी पड़ती है। श्रावण वदी ३० के बाद आपका शौच-निवृत्ति हेतु बाहर जाना रुक गया। श्रावण सुदी १३ से प्रवचन एवं परिषद् में बैठकर प्रतिक्रमण करना चालू नहीं रह सका। रुग्ण अवस्था में भी आप पेट के नीचे उतरकर मंत्री मुनि को वंदना करते, वह भी बंद करना पड़ा। जनता में ऊहापोह मच गया। पण्डितजी हताश हो गए और मंत्री मुनि से कहने लगे, 'मेरी चिकित्सा विफल हो गई है। जनता में आक्रोश है, किसी अन्य कुशल चिकित्सक से उपचार कराएं। मैं साथ रहूंगा।' आचार्यवर ने उन्हें साहस बंधाते हुए कहा, 'पण्डितजी, प्रयत्न करना आपके हाथ में है, उसमें कोई कमी नहीं रही। सफलता विफलता का प्रश्न नियति से जुड़ा है। आपकी चिकित्सा से रोग नियन्त्रित रहा है, क्षीण न होने पर भी उपशान्त हुआ है, आप किंचित मात्र उदासीन न हों।' पण्डितजी का संकोच जाता रहा। निरन्तर गिरते स्वास्थ्य से मंत्री मुनि व्यथित हो उठे। दोनों की मित्रता गंगाजल की तरह स्वच्छ और निर्मल थी। उनमें एक-दूसरे का मानस प्रतिबिम्बित होता था, दोनों के सामने व्यक्तिगत हित के स्थान पर संघ-हित सदा सर्वोपरि रहा। माणकगण के देहावसान की घटना के स्मरण मात्र से वे आन्दोलित हो उठे। उन्हें अनिष्ट की आशंका हो गई। उन्होंने आचार्यवर को व्यथा प्रकट की पर आपने दृढ़तापूर्वक कहा 'सब कुछ ठीक होगा। शरीर की समस्या असाध्य नहीं है।' मंत्री मुनि ने साधुओं को सजग करते कहा, आचार्यवर की सेवा कर यत्किंचित उद्गृहण होने का यह अनुपम अवसर है, पढ़ना-पढ़ाना तो जीवन भर चलता रहेगा, अतः सेवा में कोई बिल्कुल प्रमाद न करे।' कितनी मार्मिक प्रेरणा थी।

### युवाचार्य मनोनयन

भादवा वदी नवमी का दिन। डॉ० अश्विनीकुमार ने कलकत्ता से लौटकर आपके शरीर की परीक्षा की और उसके साथ ही उनकी आंखों से अश्रुधारा फूट पड़ी। सुबकते हुए उन्होंने मंत्री मुनि के पास जाकर कहा, 'यह शरीर अब अधिक नहीं टिकेगा, आचार्यवर को भावी प्रबंध कर लेना चाहिए।' पण्डितजी ने भी डॉक्टर के कथन का समर्थन करते हुए कहा, 'रोग असाध्य है, अब कर्तव्य-पालन में देरी ठीक नहीं।' मंत्री मुनि के पास प्रमुख संत सर्वश्री मुनि कुंदनमलजी, चौथमलजी, चंपालालजी, भीमराजजी, सोहनलालजी, खिन्नमना गुरुदेव को

दायित्व निभाने की प्रार्थना करने को कहा। मंत्री मुनि आचार्यप्रवर के पास गए। आचार्यवर सारी स्थिति को भांप चुके थे अतः आपने कहा, 'मैं स्वयं महसूस करता हूँ कि निर्णायक घड़ी आ गई है। मैंने सोचा था कि बीदासर जाकर साठ वर्ष पूर्ण होने पर मातुश्री छोगोजी के समक्ष अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति करूँगा पर आज तक मेरे सब मनोरथ फलने पर भी यह मनोरथ पूरा नहीं हो सकेगा, मुझे अब अनुभव हो गया है कि मेरा शरीर अब अधिक दिन नहीं रहेगा और मैं आपसे सहमत हूँ कि सघ-हित के लिए भावी प्रबन्ध कर देना चाहिए। मैं माणकगणि की घटना की पुनरावृत्ति कर संघ को फिर कसौटी में झोंकना नहीं चाहता।' मंत्री मुनि एवं संत आश्वस्त हो गए। मंत्री मुनि ने आपसे पूछा, 'कैसे? कब? और किसे? इस पर अपना अभिमत दें ताकि उसके अनुरूप व्यवस्था हो सके।' आपने कहा, 'मैं गुप्त रूप से उत्तराधिकारी की घोषणा नहीं करना चाहता, जो कुछ करूँगा, स्पष्ट रूप से जनता के सामने करूँगा। इसमें अब विलंब करना नहीं चाहता। कल एकादशी को ही यह कार्य कर सकता हूँ। जहां तक किसका सम्बन्ध है, यह आपसे छिपा नहीं है। पर मन में एक कठिनाई उत्पन्न हो रही है कि तुलसी अवस्था में छोटा है।' मंत्री मुनि ने कहा, 'कोई बड़ी अवस्था का ध्यान में हो तो देख लें।' आपने त्वरित कहा, 'इसका तो प्रश्न ही नहीं उठता। तुलसी की छोटी आयु में उसे सम्मानित कर आचार्य पद की गरिमा बढ़ाना व समय पड़ने पर परामर्श देकर शासन भार निभाने की क्षमता में अभिवृद्धि करना अब आपके भरोसे है, आप आश्वस्त करें तो सब कुछ अच्छा हो जाएगा।' मंत्री मुनि अपने प्रति ऐसे उद्गार सुनकर भाव-विभोर हो गए, एक नये युग के सूत्रपात्र से वे सिहर उठे, पर अब सोचने का समय तो रह ही नहीं गया था, उन्होंने पूर्ण रूप से आश्वस्त करते कहा, 'तुलसी पुण्यवान, निपुण एवं भविष्यद्रष्टा है, उसके बारे में आप कोई विचार न करें, मैं जैसा आपके लिए समर्पित रहा हूँ, वैसा ही इसके लिए रहूँगा व संघ हित में ही यह जीवन खपेगा। उत्तराधिकारी की नियुक्ति के लिए भादवा सुदी ३ का मुहूर्त श्रेष्ठ है, अतः उसी दिन यह कार्य सम्पन्न होगा।' आचार्यवर निश्चिन्त हो गए पर शारीरिक स्थिति देखकर उन्हें तीज दिन का समय कुछ लम्बा लगा पर मंत्री मुनि ने इस दृढ़ विश्वास पर कि आपका संकल्प कभी अधूरा नहीं रहा है और यह कार्य भी ठीक समय पर ही होगा, आप तीज के दिन यह कार्य करने को सहमत हो गए। उसकी पूर्व भूमिका के रूप में भादवा वदि ३० के मध्याह्न विजय मुहूर्त में, सवा ग्यारह बजे मुनि तुलसी को जल्दी आहार कराकर मुनिश्री चंपालालजी आचार्यवर के संकेत से उनके पास ले गए और गुरु-शिष्य के मध्य एकांत में वार्ता

१. महामनस्वी कालूगणि : आचार्यश्री तुलसी पृष्ठ संख्या १३२ में वर्णित तथ्य व 'आश्वस्त' भाव के आधार पर विवेचन।



हुई। आचार्यवर ने तुलसीजी को कहा, 'मेरे शरीर की स्थिति क्षीण हो गई है, स्वस्थ होने की आशा नहीं है, तुम्हें मैंने इसीलिए एक उद्देश्य से बुलाया है। मैं चाहता हूँ कि मेरा दायित्व अब तुम संभालो, भैक्षवगण की सार-संभार करो, इसकी प्रभावना में अभिवृद्धि करो।' मुनि तुलसी यह बात सुनकर सन्न रह गए। उन्हें कभी कल्पना ही नहीं थी कि इतनी छोटी आयु में यह महान् गुरुतर कार्य उनके कंधों पर आ जाएगा। वे चिन्तन की मुद्रा में आ गए। आचार्यवर ने पुनः शिक्षा फरमाते हुए कहा, 'सदा सजग रहना। जागरूकता और विवेक के बल पर छोटा भी बड़ा बन जाता है, परिपक्व हो जाता है।' इतना कहकर गुरु-शिष्य दोनों की वाणी अवरुद्ध हो गई, वे मन ही मन में, एक-दूसरे को समझ गए। वह कैसा अद्भुत क्षण रहा होगा? इसे केवल आचार्य तुलसी ही बता सकते हैं, पर वे भी इस भाव अभिव्यक्ति को शब्दों में प्रकट कर सकें, यह संभव नहीं लगता। आचार्यवर के लम्बे सान्निध्य से विरह की कल्पना उनको असह्य हो गई। पर जब आचार्यवर ने कहा कि गण की सुरक्षा उनकी ही सेवा है और भौतिक दृष्टि से दूर होने पर भी उनके चिन्तन में हर समय वे विद्यमान रहकर प्रेरणा देते रहेंगे', तब वे पुनः संभल गए। आचार्यवर ने मातुश्री छोगांजी की चित्त समाधि स्थिर रखने तथा उनकी दीर्घ सतत सेवार्थी सती श्री खुमांजी को सम्मानित करने की शिक्षा दी। इतना करने के बाद मुनि तुलसी ने हाथ के सहारे से विश्राम हेतु उन्हें पट्ट पर सुला दिया। चार अक्षरों का शिक्षा सूत्र 'सजगता' मुनि तुलसी के जीवन का सदा-सदा के लिए संबल बन गया और सफलता का आधार भी। आज उस क्षण के पचास वर्ष बाद भी उनकी सजगता में कोई कमी नहीं आई है और उसमें लगातार वृद्धि और निखार ही आया है।

इस मिलन से भावी व्यवस्था का स्पष्ट संकेत मिल गया। मंत्री मुनि ने श्री तुलसीजी को बताया, जिस दिन तुम दीक्षित हुए उसी दिन से आचार्यवर की दृष्टि तुम पर केन्द्रित हो गई थी और जो दृष्टि अब तक मौन थी, उसके साथ आज वाणी जुड़ गई है।' रात्रि में सब साधुओं को एकत्रित कर आपने प्रेरणादायी, सामूहिक शिक्षा दी और कहा, 'आचार्य अवस्था में छोटा हो या बड़ा, वह आचार्य है। चतुर्विध संघ का स्वामी है, अतः उसके आज्ञा की अखण्ड आराधना करना सबका परम कर्तव्य है। उसकी अवहेलना न हो, अवज्ञा या असम्मान न हो, इसी में संघ का भविष्य उज्ज्वल है। आचार्य की गरिमा संघ की गरिमा है। साधु संयम यात्रा पर निर्बाध चलते रहकर साधना का विकास करें, विषय वासना से दूर रहें, मर्यादाओं का पालन करें तथा भैक्षवगण का गौरव बढ़ाएं।'

आचार्यवर के शिक्षा रश्मियों ने सभी के हृदय में आलोक भर दिया। मंत्री मुनि ने कृतज्ञता ज्ञापित की। आचार्यवर ने यह भी बताया की भावी व्यवस्था का श्री गणेश हो गया है, जिसे दायित्व सौंपना है, उसे आवश्यक निर्देश दे दिए हैं।

भादवा सुदी १ को मध्याह्न में मुनि तुलसी को बुलाकर आचार्यवर ने दो स्पष्ट निर्देश दे दिए—१. 'संघ के सैकड़ों साधु-साधिवियों की जागरूकता समान नहीं हो सकती, कोई प्रमाद व स्वखलना भी कर सकता है, तुम्हारा कर्तव्य है कि यदि उसकी भावना शुद्ध संयम पालन की हो व प्रायश्चित्त करे तो तुम हर तरह से सहयोग कर उसे साधुत्व में स्थिर रखना। २. साधवियां बड़ी संख्या में हैं, काम कर सकती हैं, उनकी शिक्षा पर ध्यान देना जरूरी है। उनका विकास कैसे हो, इस पर चिन्तन करके क्रियान्विति करना।' अंतिम शिक्षा में तेरापंथ के विकास का भविष्य प्रतिबिम्बित हो रहा था। उनकी आंखों में वह स्वप्न उतर रहा था जिसे वे पूरा कर न सके। मुनि तुलसी ने शिक्षाओं को शिरोधार्य कर दोनों की पूति करने का आशीर्वाद चाहा। द्वितीया की रात्रि में आचार्यवर ने मुनि चंपालालजी को दूसरे दिन सूर्योदय होते ही स्याही, लेखनी, श्वेत-पत्र व पाटी लाने का निर्देश दिया। तृतीया का प्रभात आया। आपके जीवन का यह स्वर्णिम प्रभात था। ऐसा सूर्योदय कभी नहीं हुआ। आप आचार्य बने, तब दूसरों के लिए सूर्योदय हुआ, आपकी यात्रा का प्रारम्भ हुआ। पर यह प्रभात आपकी सजगता व कुशलता से यात्रा की सम्पन्नता का सूचक था और इसी में आप आनन्दित हो रहे थे।

आचार्यवर ने सूर्य की ओर मुंह कर एक पैर पट्ट पर व दूसरा धरती पर रखते, घुटने पर पत्र रखकर, कांपते हाथों, अकंपित चेतना से युवाचार्य नियुक्ति पत्र लिखा। हाथ व्रण की वेदना और क्षीण शक्ति में भी उन्होंने अपने जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य विधिवत् अपने हाथों से सम्पन्न किया। मुनि तुलसी को विधिवत् तेरापंथ धर्मसंघ का भावी आचार्य नियुक्त किया और तत्र विराजित सभी साधु-साधिवियों व श्रावक-श्राविकाओं के समक्ष वह पत्र मुनि मगनलालजी से पढ़वाया जो पत्र इस प्रकार है—

‘श्री भिक्षु पाट भारीमाल। भारीमाल पाट रायचंद।  
 रायचंद पाट जीतमल। जीतमल पाट मघराज।  
 मघराज पाट माणकलाल। माणकलाल पाट डालचंद।  
 डालचन्द पाट कालूराम। कालूराम पाट तुलछीराम।

विनयवंत आज्ञा प्रमाणे चालसी, सुखी होसी। संवत् १६६३ भादवा सुदी ३-शुक्रवार।’ आचार्यवर ने पत्र लेकर युवाचार्य श्री तुलसी को दिया। स्वयं श्वेत चादर धारण कर, अपने हाथों तत्काल उसे युवाचार्यश्री को ओढ़ाया, सब ओर आचार्यवर एवं युवाचार्यश्री के जय-जयकार के नारे गूंजने लगे। मंत्री मुनि की प्रसन्नता का पारावार नहीं था। उन्होंने दोहा रचकर सुनाया।

‘रंग भवन में रंगरली, पद युवराज प्रकाश,  
 मुनिच्छत्र महिमानिलो, पूरण कर दी प्यास॥

स्थान-स्थान पर तार द्वारा नियुक्ति की सूचना दी गई। मिठाई व पुरस्कार बांटे गये। मुनि मगनलालजी ने स्वयं युवाचार्य का जयघोष किया और अब कल का उनका बालक, मुनि तुलसी, जब भी उनके पास से निकलता, तब वे खड़े होकर जयघोष करते। युवाचार्य के प्रति व्यवहार का यह सक्रिय शिक्षण था।

### स्वर्ग प्रयाण

भादवा सुदी ३ को मध्याह्न में आचार्यवर ने केश-लुंचन करवाया व युवाचार्यश्री से श्रीमद् जयाचार्य कृत आराधना सुनी, चतुर्विध संघ व जिनके साथ चर्चा वार्ता या कटुता का प्रसंग रहा, उन सबको याद करके, आपने क्षमायाचना की व सम्पूर्ण मनोयोग से आत्मालोचन किया। हजारों व्यक्ति अब तक दर्शनार्थ पहुंच चुके थे। आपने सबको दर्शन करने का अवसर दिया। डॉक्टर व वैद्य, आपको इस प्रकार साहस व धैर्य से मौत का चुनौती से मुकाबला करते देखकर दंग थे। वे शरीर से निरपेक्ष होकर अन्तर्मुखी बन चुके थे। रात को श्वास का वेग बढ़ा, नाड़ी की गति विषम हो गई। आचार्यवर ने युवाचार्यश्री को बुलाकर संघ के साधु-साध्वी, पुस्तकें, दीक्षा संयम पालना हेतु शिक्षाएं दीं। मंत्री मुनि, साध्वी-प्रमुखा झमकूजी आदि को पुरस्कृत किया। आप ५० मिनट बोलते रहे, यह सचमुच आश्चर्य का विषय था कि जिस दीप का तेल समाप्त हो चुका हो, उसकी लौ झतनी प्रखर बन जाए। सर्वश्री मुनि सुखलालजी, पूनमचन्दजी, उदयरजजी कांकरोली से, धनरूपजी राजनगर से, फूलचन्दजी आमेट से व साध्वी केसरजी, केसरजी (छोटा) मधुजी, जुहारांजी क्रमशः पुर, पहुता, पीथास व नागौर से आचार्यवर के दर्शनार्थ आ गये। आचार्यवर ने आगे साधु-साध्वियों का आवागमन रोक दिया। भादवा सुदी ५ को संवत्सरी महापर्व के दिन आपने सशतं अनशन स्वीकार किया। उस दिन अपार वेदना रही व प्रवचन युवाचार्यश्री तुलसी ने दिया। भादवा सुदी ६ को उपवास का पारणा हुआ। संवत्सरी का उपवास निविघ्न होने से जनता को राहत मिली, पर यह राहत अधिक समय टिक न सकी। सायंकाल आपने बैठकर पानी पिया व ज्योंही लेटे, कि श्वास का प्रकोप बढ गया। मंत्री मुनि शौचार्य बाहर गये हुए थे, जानकारी मिलने पर, वे हांफते हुए आए व आचार्यवर ने उन्हें देखकर कहा, 'अबै...' आगे वाणी अवरुद्ध हो गयी। मंत्री मुनि ने आपकी 'हां' में स्वीकृति लेकर चतुर्विध आहार का त्याग करा दिया तथा अर्हत् सिद्ध आदि की शरण सुनाने लगे। पांच मिनट में ही आचार्यवर के प्राणपखेरू आंखों के रास्ते उड़ गए, केवल स्थूल पार्थिव शरीर पीछे रह गया। १०-११ मिनट में सूर्यास्त हो गया। ऐसा लग कि एक ज्योतिर्मय प्रभापुञ्ज व्यक्ति के अस्त होने पर, भला सूर्य देवता कैसे प्रकाशित रहते। सांझ पड़ते ही विरह वेदना की कालिमायुक्त उदासी भरी रात्रि का आगमन हो गया। भादवा सुदी सप्तमी

को तीस हजार नर-नारियों की उपस्थिति में, आपके शव का संस्कार, श्री रंगलालजी हिरण के खेत में हुआ। चंदन की चिता में ज्योतिपुंज का शव फिर ज्योतिर्मय हो उठा तथा धूप, अगर, घी, कपूर नारियल ने वातावरण को सुरभित बनाए रखा। श्रीमद् कालूगणि स्वयं में तो महान अध्यात्म पुरुष थे ही, पर उन्होंने अनेक अध्यात्म पुरुषों का अपने सुहृदिपूर्ण हाथों से निर्माण किया और युग पुरुष आचार्यश्री तुलसी सर्वांश रूप में आपकी ही कृति हैं, जिसमें आपने अपनी संपूर्ण ऊर्जा, शक्ति एवं साधना उड़ेल दी। आश्चर्य तो यह कि उस दूर द्रष्टा ने एक बीज में विशाल शतशाखी वट वृक्ष बनने की सम्भावना का अंकन प्रथम दृष्टि में ही कैसे कर लिया? आपने अपने शासनकाल में सर्वाधिक ४१० दीक्षाएं दीं। हस्तलिखित ग्रंथों में अकल्पित वृद्धि हुई। विद्या और कला के क्षेत्र में संघ समृद्ध हुआ। विहार क्षेत्र काफी विस्तृत हुआ। भावी विकास के बीज भली-भांति वपन कर दिए गए। आप समृद्ध धर्मसंघ को विकास की नयी दिशाओं को और अग्रसर कर स्वयं समाधिस्थ हो गए। आपके स्वर्गवास के समय संघ में १३६ साधु व ३३३ साध्वियां विद्यमान थीं।

आपके धर्म परिवार के विशिष्ट श्रमण-श्रमणियों का आकलन युग-प्रधान आचार्यश्री तुलसी ने इस प्रकार किया है—

#### श्रमण परिवार

१. मुनिश्री पृथ्वीराजजी—बत्तीस दीक्षार्थियों को प्रेरणा, सत्रह साधु व पांच साध्वियों को दीक्षा दी। परम वैरागी, तपस्वी, ध्यानी, ज्योतिर्विद, दिव्य शक्ति के प्रयोक्ता, आचार्यों के कृपा पात्र, धर्म संघ की श्रीवृद्धि व गंगाशहर क्षेत्र के निर्माण में विशेष योगदान।
- २ से १८. सर्व मुनिश्री छबीलजी, ईशरजी, फौजमलजी, चांदमलजी, आनन्दरायजी, मगनलालजी, डायमलजी, भीमराजजी, तेजमलजी, नथमलजी रीछेड़, रंगलालजी, हीरालालजी, सागरमलजी, बछराजजी, चंपालालजी (राजनगर), कुंननमलजी, चौथमलजी का परिचय पूर्व में दिया जा चुका है।
१९. मुनिश्री पूनमचन्दजी जसोल—प्रथम शिष्य से शुभ श्रीगणेश तत्त्वज्ञ व प्रभावक।
२०. मुनिश्री घासीरामजी दिवेर—भिक्षु साहित्य के विशिष्ट अध्येता, संघीय परम्पराओं के ज्ञाता, शासन भक्त, शास्त्रज्ञ एवं चर्चावादी।
- २१ से २८. सर्व मुनिश्री चुन्नीलालजी, रणजीतमलजी, हजारीमलजी, सुखलालजी, गनपतरामजी, आसारामजी, हुलासमलजी सभी विशिष्ट तपस्वी। मुनि सुखलालजी घोर तपस्वी व सेवाभावी;

तपस्वियों के सहायक आचार्यवर की उत्कट सेवा करने वाले व मत्रा मुनि के विशेष सहयोगी ।

२८ से ३१. मुनि भीमराजजी, सोहनलालजी (चूरू), कानमलजी व नथमलजी (बागोर) हेम, शब्दानुशासन के प्रथम अध्येता व संस्कृत साहित्य सृजक ।

मुनि सोहनलालजी (चूरू) सुघड़ लिपिक, उद्भट कवि, गायक, प्रवक्ता और सेवा भावी—बेजोड़ संचनिष्ठ, सभी परिस्थितियों में समभावी ।

मुनि नथमलजी संस्कृत, गद्य-पद्य लेखन में विरल क्षमताशाली । आपको युग प्रधान आचार्यश्री तुलसी ने इन दोनों को 'शासन स्तम्भ' पद से उपमित किया ।

३२. मुनि अमीचंद—वैराग्य भाव से दीक्षित—लिपि कला में कुशल ।

३३. मुनि हेमराजजी (आत्मा) विशिष्ट शास्त्र वेत्ता व चर्चावादी वर्तमान आचार्यप्रवरुनि जिनसे शास्त्रों के सूक्ष्म रहस्यों की जानकारी की । आपको युग प्रधान आचार्यश्री तुलसी ने 'शासन स्तम्भ' से उपमित किया ।

३४. मुनि शिवराजजी 'कोटवाल'—आचार्यवर की दिनचर्या में जागरूक-सेवी ।

३५. मुनि सूरजमलजी—ताकिक व दूसरों को समझाने की कला में निष्णात । सर्वप्रथम सुदूर प्रदेशों में पधारे ।

३६ से ४२. सर्व मुनिश्री गणेशमलजी (जसोल), छोगजी (पचपदरा) केवलचंदजी व जीव रामजजी (डूंगरगढ़) ने सपरिवार क्रमशः तीन, दो-दो पुत्रों व पुत्र-पुत्री सहित दीक्षा लेकर धर्मसंघ की प्रभावना को बढ़ाया । मुनि गणेशमलजी के पुत्र मुनि जीवनमलजी परम वैरागी, तत्त्वज्ञ व ऋजु प्रकृति के संत हुए । मुनि केवलचंदजी के पुत्र धनमुनि व चंदनमुनि ने शासन की बहुत सेवा की पर अंत में वे गण से बाहर हो गए । वे दोनों व आचार्यश्री तुलसी व मुनि गणेशमलजी (गंगाशहर) भिक्षु शब्दानुशासन के प्रथम अध्येता हुए ।

४३. मुनि चंपालालजी (लाडनू) आचार्यवर की सेवा व संरक्षण में प्रतिक्षण सजग व तत्पर । आचार्यश्री के अग्रज—युग प्रधान आचार्यश्री तुलसी द्वारा 'शासन स्तम्भ' उपमा से उपमित ।

४४. मुनिश्री अमोलकचन्दजी-विवाहित होकर ब्रह्मचारी रहे व बड़े वैराग्य से पति-पत्नी ने दीक्षा ली । प्रथम अंग्रेजी भाषा के अध्येता, श्रमशील, पंजाब प्रांत में प्रथम प्रबल प्रचारक, अत्यन्त आस्थावान् सजग साधु ।

४५ से ५५. मुनि किशनलालजी, हुलासमलजी, शिवराजजी, जयचंदलालजी, (सुजानगढ़), सोहनलालजी (सुजान), मन्नालालजी (सरदारशहर),

अमोलकचंदजी व झूमरमलजी (छापर) ने सपत्नीक दीक्षा ली ।

५६. मुनि फूसराजजी—आगमों के विशेष अध्येता ।

### श्रमणी परिवार

साध्वी कस्तुरोजी (मोंडा)—साहसी, व्याख्यान-कुशल एवं प्रभावक

साध्वी रामकुंवरजी—व्याख्यानी, चर्चावादी, शास्त्रज्ञ एवं साहसी

” भूरोजी (चितामा)—सरावगी जाति में से बहुत वैराग्य से दीक्षित

” गंगोजी (मोंडा) प्रतिष्ठित, चर्चावादी, निर्भीक, दूरदर्शी, संस्कार प्रेरक, गंगाशहर क्षेत्र के निर्माण में अपूर्व सहयोग, स्वाध्याय प्रेमी ।

” जड़ावोजी (जयपुर)—पुरानी रागों की अच्छी गायिका । स्वयं आचार्यश्री तुलसी व कुंदन मुनि ने उनसे पुरानी रागों का ज्ञान प्राप्त किया ।

सर्व साध्वीश्री नंजोजी, विरोधोजी, सोनोंजी, अंभाजी-विशेष सेवाभावी साध्वियां, साध्वी सोनोंजी (सरदारशहर) अंत तक आचार्यवर व बालमुनियों की सेवा करती रहीं तथा सिलाई, रंगाई की कलाओं में वे बहुत कुशल थीं ।

साध्वी लाडोजी (लाडनू), भतूजी (बीदासर) रतनोंजी (सुजानगढ़), लाधूजी (सरदारशहर), छगनोंजी (बोरावड़), कुनणोंजी (सरदारशहर) साहस पूर्वक कार्य करने वाली तथा संस्कार भरने में सिद्धहस्त साध्वियां हुईं ।

साध्वी खुमोंजी—मातुश्री छोंगोजी की ३१ वर्ष तक सतत व संपूर्ण सेवा परिचर्या में रहीं । बहुत विवेकशील, कर्मठ व संकेत समझने वाली । आचार्यवर से अनेक प्रकार से सम्मानित (समुच्चय कार्य से मुक्त; सात साध्वियों की सेवा आदि) । भगवती की जोड़ सुन्दर लेख से लिखी ।

साध्वी श्रमकूजी—साध्वी कानकुंवरजी के स्थिरवासिनी होने पर साध्वियों की सार संभाल करने लगी । कर्मठता, स्फूर्ति, चातुर्य, गंभीरता सहिष्णुता एवं मधुर व्यवहार की धनी । बाद में साध्वीप्रमुखा बनीं ।

साध्वी हीरोजी—मधुर वाणी, साधु जीवनोपयोगी उपकरणों की कलात्मक निर्मात्री ।

साध्वी हुलासोंजी—भगवती की जोड़ों की की लिपिकर्ता, अनुशासित, विनम्र, पाप भीरु ।

साध्वी प्रतापोंजी—सुन्दरजी, कमलूजी (जयपुर) ज्ञानोंजी, रूपोंजी, सोहनोंजी—ये सब हस्तलिपि विशारद व विनयनिष्ठ साध्वियां थीं ।

साध्वी सुन्दरजी (लाडनू), दीपोंजी (सिरसा), नजरकुंवरजी (ब्रास), गुलाबोंजी (भादरा), मोहनोंजी (राजगढ़)—ये सब तत्त्वज्ञ व अच्छी

व्याख्यानी ।

साध्वी मुखोंजी, चंदोंजी, प्यारोंजी, अणचोजी उस समय की प्रमुख तपस्विनें साधिवयां—मुखोंजी ने आछ के आगार नौ महीने की तपस्या की ।

साध्वी दाखोंजी (दिवेर), संतोकोंजी (चूरू), कमलूजी (राजलदेसर), रूपोंजी व भत्तूजी (सरदारशहर), झमकूजी (राजलदेसर)—ये सब साध्वीप्रमुखा झमकूजी के समय व बाद में विशेष कार्यशील व सेवाभावी रहीं ।

साध्वी संतोकोंजी ने पति छोड़कर बहुत वैराग्य से दीक्षा ली—कला में मुघड़ व साध्वीप्रमुखा कानकुंवरजी के आंखों की सफल शल्य चिकित्सक ।

साध्वी लिछमोंजी (सुजानगढ)—मघवागणि की प्रथम शिष्या, सवा आठ वर्ष में दीक्षित व मोलह वर्ष में अग्रगण्य ।

साध्वी फूल कंवरजी (मांढा), तानूजी (फलौदी), सूबटोंजी (राजलदेसर), दांखोंजी, हस्तूजी (माखुणदा), पार्वंतोजी (छापर), छजोनोजी (देशनोक), फेफांजी (कांकारोली), निजरकुंवरजी (लाडनू)—ये सभी उल्लेखनीय अग्रगण्य साधिवयां थीं । इनमें से कई व्याख्यान कुशल, कई निर्भीक व साहसी व कई तपस्या व अनशन में विलक्षण हुई ।

आपके समय में अनेक विशिष्ट तत्त्वज्ञ, शासन हितैषी, सेवापरायण, साहित्यकार, कवि, चर्चावादी व विशेष प्रभावक श्रावक हुए व संघ संपदा में अपार अभिवृद्धि का श्रीगणेश हुआ और ऐसा लगा कि एक नये युग का उदय हो रहा है तथा विकास की किरणें विकिरण हो रही हैं ।

आपके शासनकाल में तपस्या के महत्त्वपूर्ण आंकड़े इस प्रकार हैं—

१. नव मासी (आछ के आगार) साध्वी मुखोंजी

२. छः मासी ( " " " ) मुनि रणजीतमलजी

३. साढ़ा तीन मासी " " "

४. दो मासी—मुनि रणजीतमलजी दो बार, हुलासमलजी व सुमुखांजी एक-एक बार ।

५. पचपन दिन—मुनि सुखलालजी

६. चौहन दिन—मुनि रामलालजी

७. त्रेपन दिन—साध्वी सुखांजी

८. बावन दिन—मुनि सुखलालजी, मुनि रणजीतमलजी

९. इक्यावन दिन—मुनि कुंभकरणजी, मुनि सुखलालजी

१०. डेढ़ मासी—(४४ से ४७ दिन)—सन्तों में ५, सतियों में एक

११. ३२ से ४१ दिन—सन्तों में १६, सतियों में १०

१२. ४७ दिन आछ के आगार—मुनि रणजीतमलजी

१३. मासखमण २७ से ३१ दिन संतों में ३६ सतियों में २१

१४. लघुसिंह निष्कीडित तप परिपाटी पहली, दूसरी व चौथी मुनि हुलासमलजी ने दूसरी व तीसरी मुनि चुन्नीलालजी ने चौथी परिपाटी साधवी धन्तों जी व मुखोंजी ने संपन्न की ।
१५. दो मास संलेखना २ घंटा अनशन-मुनि रणजीत मलजी, अठारन दिन संलेखना पन्द्रह दिन अनशन मुनि आशारामजी, ४६ दिन संलेखना २ घंटा अनशन साधवी ऋदुजी ४१ दिन संलेखना ३० दिन अनशन साधवी जडावोंजी; ३७ दिन अनशन साधवी छगनोंजी ने किए ।
१६. संवत् १६७८ बीदासर में शीतकाल में संतों में सतरंगी व सधिवयों में नवरंगी हुई । उपर्युक्त विश्लेषण तपस्याओं से संघ की तेजस्विता व प्रखरता बढ़ी ।



# युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी—नवमाचार्य

(संवत् १९६३—सम्प्रति)

## अगाध व्यक्तित्व

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी का शासनकाल तेरापंथ धर्मसंघ का स्वर्णयुग कहा जा सकता है। जिस संघ को आचार्यश्री भिक्षु ने आधार दिया, श्रीमद् जयाचार्य ने पुष्ट व परिमार्जित आकार दिया, उसको आचार्यश्री तुलसी ने सुरम्यता एवं भव्यता प्रदान कर दी। आपने सारे संघ को युगबोध देकर उसका कायाकल्प कर दिया एवं अनेक नानाविध आयामों में अभूतपूर्व प्रगति करके, जन-जन को चमत्कृत कर दिया। सारे राष्ट्र में शीर्षस्थ अध्यात्म-पुरुषों में श्रद्धा सहित आपका स्मरण किया जाता है तथा तेरापंथ धर्मसंघ को अत्यंत चेतनाशील, जागरूक विकसित संघ के रूप में समादर दिया जाता है। श्रीमद् कालूगणि जैसे विज्ञ परीक्षक की नजरों में आप मात्र ११ वर्ष के थे, तब चढ़ गए व उन्होंने ११ वर्ष तक पूरी मेहनत के साथ तराश कर व साज-संवार कर अमूल्य आलोकपूर्ण हीरे की तरह आपको जनता के सामने प्रकट किया। अपने गुरु से अपार, अपरिमित व अगाध वात्सल्य पाकर आपका व्यक्तित्व आकाश की तरह ऊंचा व सागर की तरह गहरा बन गया और आपके व्यक्तित्व को किसी लेखनी से शब्दों में समाहित नहीं किया जा सकता, किसी तूलिका या रंग से चित्रित नहीं किया जा सकता। आप में सब कुछ अमाप है, अतुल है, अगाध है, असीमित है, अमूल्य है जिसे आंकने के लिए कोई विज्ञ कलाकार या अपूर्व सृजनकर्ता ही साहस कर सकता है। तेरापंथ की संक्षिप्त ज्ञांकी में उसे समाहित करना सम्भव नहीं है, पर ज्ञांकी अधूरी नहीं रह जाए इसीलिए अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति, राजसमन्द द्वारा सद्यः प्रकाशित साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाषी के 'आचार्यश्री तुलसी' पर लिखे लघुनिबन्ध के कतिपय अंशों को उद्धृत करके तथा उनके आधार पर अपनी भावना का उल्लेख कर मैं अपने कर्तव्य की इतिश्री समझूंगा। आचार्यप्रवर ने इतिहास का निर्माण किया है तथा आगे भी इतिहास के नव-निर्माण की आपसे विपुल संभावनाएं हैं, अतः उसका अलग स्वतन्त्र ग्रन्थ में सविस्तार प्रमाणित आलेख हो, यही समुचित एवं उपादेय है। आचार्य-

प्रवर के बारे में उस निबन्ध के आधार पर कतिपय ज्ञातव्य तथ्य इस प्रकार हैं—

### जन्म व बंश-परिचय

'हिन्दुस्तान के तत्कालीन जोधपुर राज्य के अन्तर्गत एक कस्बा लाडनू है। वहां संवत् १६७१ कार्तिक शुक्ला द्वितीया की निर्मल नीरव रात्रि में श्रेष्ठ झूमरमलजी खटेड के घर में एक नये अतिथि का आगमन हुआ। उस घटना से घर और परिवार के वातावरण में कुछ अतिरिक्त प्रसन्नता का दर्शन हुआ, जो किसी दिव्यता का अज्ञात संदेश दे रहा था। परिवार में उस नवजात शिशु की पहचान 'तुलसी' नाम से हुई। अपनी मां की आठवीं सन्तान बालक तुलसी तेरापंथ धर्मसंघ के आठवें आचार्य की नजरों पर चढ़ेगा, यह कल्पना उस समय किसने की होगी? पर नियति ने जो संयोग उपस्थित किया, वह इतिहास का अद्भुत हस्ताक्षर बन गया। बालक तुलसी की शिक्षा-दीक्षा व जीवन निर्माण में सर्वाधिक योग मातुश्री वदनांजी का रहा। वे स्वयं पढ़ी-लिखी नहीं थीं किन्तु बच्चों में संस्कार भरने की कला में निष्णात थीं। इसलिए उन्होंने बच्चे को जन्म के साथ जीवन भी दिया। पिता झूमरमलजी का साया पांच वर्ष की उम्र में ही बालक के सिर से उठ चुका था। शैक्षणिक दृष्टि से बालक तुलसी कुछ महीने अध्यापक श्री नंदलालजी के पास पढ़े। उसके बाद दो वर्ष प्राथमिक पाठशाला में अध्ययन किया जहां प्राध्यापक हीरालालजी ने पढ़ाया। सूक्ष्मग्राही मेधा से तुलसी को दो वर्ष की शिक्षा ने ही काफी प्रौढ़ बना दिया और वह व्यावसायिक बुद्धि से बंगाल जाने की सोचने लगा। किसी कारणवश बंगाल जाना नहीं हुआ और यहीं से बालक के जीवन में नया मोड़ आना प्रारम्भ हुआ।

### बीक्षा

विक्रम संवत् १६८२ का वर्ष चल रहा था। उन दिनों तेरापंथ धर्मसंघ के आठवें आचार्य पूज्य श्री कालूगणि लाडनू पधारे। माता की प्रेरणा से बालक तुलसी ने उनके दर्शन किए और प्रथम दर्शन में ही उसने अपने समग्र अस्तित्व को गुरु के प्रति समर्पित कर दिया। प्रतिदिन कई घण्टों तक वह दूर खड़ा-खड़ा अनिमेष दृष्टि से कालूगणि को देखता और कल्पना करता—'काश ! मैं इनका शिष्य होता इनके पास बैठता, पढ़ता आदि।' एक दिन कालूगणि की दृष्टि बालक पर टिकी और उन्हें उसमें छिपी सम्भावनाओं का आभास मिल गया। आकर्षण के दो बिन्दु एक स्थान पर मिल गए। बालक तुलसी कालूगणि का शिष्य बनने का स्वप्न संजो चुका था और कालूगणि की आगम सोची दृष्टि में वह उनका शिष्य ही नहीं, उत्तराधिकारी बन चुका था, दोनों ओर से प्रयत्न हुए, परिवार की ओर से कुछ बाधाएं आयीं। बालक ने साहस किया और हजारों लोगों की उपस्थिति में प्रवचन

के समय खड़े होकर व्यवसाय के लिए कहीं जाने तथा विवाह करने का त्याग कर दिया। एक तीव्र ऊहापोह के साथ वह सबके सामने उभर आया। बाधाएं दूर हुईं। पौष वदी ५ (५-१२-२५) को सूर्योदय के समय बालक तुलसी अपनी सहोदरी भगिनी लाडांजी के साथ कालूगणि के पास दीक्षित हो गया।

इससे पूर्व उसके ज्येष्ठ भ्राता चम्पालालजी साधु बन चुके थे। नया जीवन, नया परिवेश, नयी आकांक्षाएं और नया कार्य क्षेत्र। बालक तुलसी अपने जीवन का एक एकादशक पूर्ण कर मुनि तुलसी बन गया व नयी यात्रा प्रारम्भ हुई।

किशोर मुनि तुलसी के सामने उस समय एक ही लक्ष्य था, गुरुदेव द्वारा प्राप्त मार्गदर्शन के अनुसार अपने जीवन का निर्माण। इसके लिए उसने साधना की दृष्टि से आचार निष्ठा व विनम्रता के क्षेत्र में विशेष गति करने का संकल्प किया। गुरु के प्रति तो वह समर्पित होकर ही आया था। पांच वर्ष तक निरन्तर जागरूक भाव से अध्ययन कर मुनि तुलसी ने अपने सहपाठी वरिष्ठ साधुओं को पीछे छोड़ दिया। श्री कालूगणि के मन का विश्वास प्रगाढ़ हुआ और उन्होंने सोलह वर्षीय मुनि तुलसी के संरक्षण में बाल साधुओं के अध्ययन का क्रम चालू रखा। अवस्था के साथ तेजस्विता का कोई सम्बन्ध नहीं है, इसे मुनि तुलसी ने सार्थक कर दिया। जो समय स्वयं उसके अपने निर्माण का था, उसने दूसरों को निर्माण करने का कार्य हाथ में लेकर सबको चौंका दिया। गुरु का विश्वास, अपना पुरुषार्थ, बाल मुनियों का समर्पण भाव, इस त्रिपुटी ने तेरापंथ धर्मसंघ में शिक्षा के नये आयाम खोल दिए। एक नेतृत्व, एक आचार, एक तत्त्व निरूपण की पद्धति, इन तीनों तत्त्वों से तेरापंथ धर्मसंघ धर्मसंघों की लम्बी परम्परा में अपना वर्चस्व स्थापित कर ही चुका था। शैक्षणिक विकास के साथ वह युग धर्म का संवाहक धर्मसंघ बनने की प्रक्रिया से गुजरने लगा। मुनि तुलसी बाल साधुओं को पाठ्य-पुस्तकों के साथ जीवन की अन्य विद्याओं का भी प्रशिक्षण देने लगे। अन्य किसी प्रकार का संचयी दायित्व मुनि तुलसी पर नहीं था। पर वह संघ की हर गतिविधि का सूक्ष्मता से अध्ययन करता। शायद भावी का गुप्त शुभ संकेत अवचेतन मन को मिल चुका था इसलिए वह प्रशासनिक दृष्टि से भी सोचने लगा तथा यदा-कदा अपने चिंतन को श्री कालूगणि तक पहुंचाने लगा। अध्ययन कार्य में संलग्न होने पर भी मुनि तुलसी वैयक्तिक तथा अध्ययन से पूर्णतः प्रतिबद्ध थे। मुनि जीवन के ग्यारह वर्षों में बीस हजार पद्य प्रमाण ग्रन्थ कंठस्थ कर अपनी आशुशाही मेधा से सबको चमत्कृत किया। जैन आगम और उनके व्याख्या—ग्रन्थों के अध्ययन में कालूगणिजी की प्रेरणा अत्यधिक रही। यह युग भक्तिप्रधान युग था। साधु-साधिव्यां अपनी शक्ति व चिन्तन को गुरु की दृष्टि के अनुरूप मोड़ लेते थे। मुनि तुलसी के प्रति श्री कालूगणि के सहज वात्सल्य भाव ने संघ के हर सदस्य को उसकी ओर आकृष्ट कर दिया। अवस्था में बड़े साधु मुनि तुलसी को विशेष सम्मान देते और वह मन ही

मन संकोच अनुभव करता। यह क्रम सदा बर्द्धमान रहा, सहपाठी सन्तों में इस बात को लेकर प्रतिस्पर्द्धा के भाव जग सकते थे पर उसकी मिलनसारिता और व्यवहार कुशलता ने उस सुलगते भाव को प्रतिहत कर दिया। श्री कालूगणि कभी एकान्त क्षणों में मुनि तुलसी को बुलाते और धर्मसंघ की आन्तरिक गतिविधियों पर विचार-विमर्श करते। मुनि तुलसी अनुभव करने लगे कि संघ का दायित्व उन पर आ सकता है। साधु समाज और श्रावक समाज के अनेक व्यक्ति इस सम्बन्ध में आश्वस्त हो गए। मुनि जीवन का ग्यारह वर्ष का समय तुलसी के मन में साधुत्व के प्रति घनीभूत आस्था के निर्माण का समय था। उस अवधि में अध्यात्म की गहराई तक पहुंचने या साधना के नये प्रयोग करने की न तो आवश्यकता लगी, न अवसर ही आया।

### आचार्य पद पर

वि० संवत् १९९३ में कालूगणि अस्वस्थ हुए। अनेक उपचार हुए पर लाभ नहीं हुआ। उन्हें अपने जीवन के अन्तिम समय का अहसास हो गया। उसी वर्ष भादवा सुदी ३ (२१-८-३६) को गंगापुर (जिला भीलवाड़ा) में मुनि तुलसी को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया। इसके तीन दिन बाद कालूगणि का महाप्रयाण हो गया और धर्मसंघ का दायित्व एक बाईस वर्षीय युवा संत के कन्धों पर आ गया। भादवा सुदी ९ (२७-८-३६) के दिन आचार्य तुलसी ने विधिवत् आचार्य पद का दायित्व सम्भाला। छोटी उम्र, बड़ा दायित्व किन्तु आपने कभी उसका भार अनुभव नहीं किया। सारी गतिविधियां सामान्य किन्तु व्यवस्थित रूप से चलने लगीं। धर्मसंघ को नया मोड़ या नयी दिशा देने का लक्ष्य अभी तक बना नहीं था। शिक्षा के प्रति आकर्षण बहुत अधिक बढ़ा। इस क्षेत्र में नये उन्मेष लाने का चिन्तन स्थिर बना। आचार्यश्री ने सर्वप्रथम साध्वियों को शिक्षित करने का काम हाथ में लिया। जिसके लिए उन्हें कालूगणि ने अन्तिम प्रेरणा दी थी। उस समय साध्वियों में शिक्षा के प्रति न अभिरुचि थी न पुरुषार्थ ही था। राजनीतिक दासता और मानसिक गुलामी का प्रभाव सर्वाधिक महिलाओं पर था। राजस्थान में तो विशेष था। आचार्यश्री ने नारी जागरण के लिए, उसमें शिक्षा की मानसिकता बनाना आवश्यक समझा तथा साध्वी समाज पर प्रयोग किया। कुछ वर्षों तक यथेष्ट परिणाम नहीं आया। पर धीरे-धीरे एक क्रम बना और साध्वी समाज प्रगति की ओर अग्रसर होने लगा। आज तेरापथ साध्वी समाज का जो बहुआयामी विकास दृष्टि-गोचर हो रहा है, उसका पूरा श्रेय आचार्यश्री तुलसी को है। साध्वियों की शिक्षा के साथ ही आचार्यश्री ने अपने संघ को साहित्य और दर्शन में प्रवेश करने की प्रेरणा दी। तर्कशक्ति का विकास हुआ। चर्चा परिचर्चाओं के दौर चले, निबन्ध लेखन व भाषण-कला का विकास हुआ। उस समय अहिंसक दृष्टि का पूरा विकास

न होने के कारण चर्चाओं में जय-पराजय की भावना बनी रहती थी। आचार्यकाल के प्रथम ग्यारह वर्षों में आचार्यश्री ने अपने ज्ञान के धरातल को ठोस किया। इसमें आयुर्वेदाचार्य संस्कृतज्ञ आशु—कविरत्न पण्डित रघुनन्दनजी की सेवाएं उल्लेखनीय रहीं। धर्मसंघ की अन्तरंग सम्भाल आचार्यश्री को ही करनी होती। पर जनता को संभालने का काम सीमित बन गया। इस काम में आपको मन्त्री मुनिश्री मगनलालजी का अत्यधिक सहयोग मिला।

### उपलब्धियों का काल

तीस वर्ष की अवस्था के बाद आचार्यश्री के जीवन का चौथा अभिक्रम प्रारम्भ हुआ। सन् १९४८ से १९५९ तक का काल उथल-पुथल व नयी संभावनाओं का काल था। इसी समय देश आजाद हुआ और आजादी के साथ धर्मसंघ की स्थिति-पालकता के सन्दर्भ में विरोध के स्वर उठने लगे। इस स्थिति से प्रेरणा पाकर आपने प्रारम्भ में रूढ़ि उन्मूलन और अस्पृश्यता निवारण के दो काम हाथ में लिए, जो जैन संस्कृति के अनुकूल थे। उस समय तत्कालीन धारणाओं में माधु समाज का सामाजिक कार्यों में हस्तक्षेप उचित नहीं माना जाता था, इसलिए परम्परावादी लोगों ने विरोध किया। आचार्यश्री युग की मांग को पहचान रहे थे और पुरातन पीढ़ी के दृष्टिकोण से भी अवगत थे। विरोध के भय से काम छोड़ने की अपेक्षा उस क्षेत्र में अधिक शक्ति-नियोजन का काम शुरू किया गया। उस काम के लिए आपने कुछ नये कार्यकर्ताओं को जोड़ा और समाज के वैचारिक धरातल को युगबोध के अनुरूप ढालने के लिए नये साहित्य का निर्माण करवाया। इसी सन्दर्भ में २ मार्च १९४९ को सरदारशहर में आचार्यश्री ने 'अणुव्रत आन्दोलन' का सूत्र-पात किया। अनेक आलोचनाओं और विरोधों के उपरान्त अणुव्रत का कार्यक्रम सबने सराहा। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, उपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन्, प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू प्रभृति अनेक शीर्षस्थ लोगों ने इसका समर्थन किया। जाति, प्रान्त, वर्ग और धर्म की संकीर्णता से मुक्त नैतिक आचार-संहिता के रूप में अणुव्रत आन्दोलन ने आचार्यश्री तुलसी को अत्यन्त लोकप्रिय व त्राणदाता बना दिया और वे अणुव्रत अनुशास्ता के रूप में सर्वाधिक जाने-पहचाने बन गए। अणुव्रत कार्य को गति देने के लिए आचार्यश्री ने अपने विहार क्षेत्र का विस्तार किया। १२-४-१९४९ को रतनगढ से अणुव्रत यात्राओं का प्रारम्भ हुआ। पहली बार जयपुर, दिल्ली आदि बड़े शहरों में अणुव्रत की गूंज हुई। उसके बाद तो बम्बई, पंजाब, कलकत्ता, दक्षिणी भारत आदि प्रलंब यात्राओं का सिलसिला-सा चल पड़ा, जो अब तक अविच्छिन्न रूप से चल रहा है। पंजाब से कन्याकुमारी तक विशाल धर्म संघ के साथ लगभग सवा लाख किलोमीटर की पदयात्रा कर, आचार्यश्री ने इस क्षेत्र में भी कीर्तिमान स्थापित कर दिया। आचार्यश्री के शासन-

काल का यह युग अनेक दृष्टियों से, उपलब्धियों का काल रहा है। अन्तरंग व बहिरंग विरोधों और अवरोधों के बावजूद धर्मसंघ में नये उन्मेष आए। यात्रा, साहित्य, जन-सम्पर्क आदि माध्यमों से तेरापंथ की एक स्वतन्त्र पहचान बनी। साहित्य प्रकाशन के लिए आदर्श साहित्या संघ की स्थापना, दीक्षार्थी भाई-बहनों के सक्रिय प्रशिक्षण की व्यवस्था के लिए पारमार्थिक शिक्षण संस्था का प्रारम्भ, जैन आगमों की वाचना और व्याख्या के लिए आगम साहित्य का दुरूह सम्पादन आदि के निर्णय व कार्यारम्भ इसी काल में हुए।

### विकास की ओर

सन् १९५९ (वि० संवत् २०१६) में आचार्यश्री का चातुर्मासिक प्रवास कलकत्ता महानगर में व १९६९ का बैंगलौर (कर्नाटक) में था। ग्यारह वर्ष का यह काल पिछले दशक में हुए कार्यों को नये परिप्रेक्ष्य में विस्तार देने का काल रहा। इसमें लम्बी-लम्बी यात्राएं हुईं। साहित्यिक गतिविधियों में तीव्रता आई। तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु का साहित्य जनता के लिए सुगम भाषा में सुलभ हुआ। आगम साहित्य के सम्पादन का काम आगे बढ़ा। आधुनिक और असाम्प्रदायिक दृष्टि से सम्पादित आगमों का सभी जैन-अर्जन विद्वानों ने हृदय से स्वागत किया। जैन सम्प्रदायों के बीच एकता, समन्वय व सामंजस्य का वातावरण बना। अणुव्रत आन्दोलन के अन्तर्गत नया मोड़ का अभियान चला जिससे मेवाड़ क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रान्ति हुई। पर्दाप्रथा, मृत्युभोज, रुढ़ि रूप से मृतक के पीछे रोना, विधवा महिलाओं के काले वस्त्र और उसके साथ होने वाले दुर्व्यवहार आदि सामाजिक रुढ़ियों में आशातीत बदलाव आया। समाज की युवा पीढ़ी को संगठित और सक्रिय बनाने का प्रयास हुआ। तेरापंथ द्वि शताब्दी समारोह का विशाल आयोजन हुआ। सन् १९६१ में आचार्यश्री के सफल पच्चीस वर्षों के आचार्यत्व काल के उपलक्ष में गंगाशहर में धवल समारोह मनाया गया। जिसमें तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् ने आपको अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया। सन् १९६५ में बालोतरा में मर्यादा महोत्सव शताब्दी समारोह मनाया गया और विकास की ओर संघ के चरण निरन्तर बढ़ते रहे।

### आध्यात्मिक अवदान

‘धर्म की तेजस्विता के लिए उसका अध्यात्म से अनुबन्धित होना जरूरी है। अध्यात्मशून्य मात्र उपासना या क्रियाकांडों का धर्म किसी को ऋण नहीं दे सकता न परलोक सुधार के प्रलोभन से ही धर्म का सम्बन्ध है। जीवन-व्यवहार में धर्म उतरकर उसे वर्तमान में परिष्कृत करे, यही सच्चा धर्म है।’ आचार्यश्री ने अपनी इन मान्यताओं व परिभाषाओं के साथ धर्म क्रान्ति की उद्घोषणा की। सन्

१९७४ में भगवान् महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के अवसर पर यह चर्चा व्यापक बनी और प्रबुद्ध जनों की अनुकूल प्रतिक्रिया हुई। इसी सन्दर्भ में ४ फरवरी सन् १९७१ में बीदासर में आपको 'युग प्रधान आचार्य' के रूप में सम्मानित किया गया। धर्म के साथ प्रयोग के रूप में ध्यान की परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए आपने प्रेक्षाध्यान पद्धति का सूत्रपात किया। आपने सन् १९७८ में योग साधक, दार्शनिक तथा साहित्य-स्रष्टा मुनि नथमलजी को महाप्रज्ञ की उपाधि से अलंकृत किया था बाद में उन्हें अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया, तब से 'युवाचार्य महाप्रज्ञ' के निर्देशन में प्रेक्षाध्यान शिविरों के माध्यम से इस पद्धति ने अल्प समय में ही अनेक लोगों के जीवन का रूपान्तरण करके लोक जीवन पर अपना स्थायी प्रभाव छोड़ा है। आचार्यश्री द्वारा अपने धर्मसंघ में प्रवर्तित साधना, अध्यात्म-शिक्षा, शोक सेवा, धर्म और सत्य साधना के विषय में सतत शोध आदि प्रवृत्तियों को गति व दिशादर्शन देने हेतु समाज के चिन्तनशील व्यक्तियों ने आपकी जन्मभूमि खाडनू में 'जैन विश्व भारती' की स्थापना की, जो युगों-युगों तक समाज को अध्यात्म पोषण देने के लिए कामबन्धु बन रही है। वहाँ 'तुलसी अध्यात्म नीडम्' में ध्यान साधना और 'श्रुत सन्निधि' में जैन प्राच्य विद्या पर रिसर्च का कार्य निरन्तर चल रहा है। आहार-विहार एवं उत्सर्ग के साधु चर्या के नियमों में अपवाद रखकर गृहस्थों व साधुओं के बीच विशिष्ट साधक श्रेणी के रूप में 'समण दीक्षा' आचार्यश्री के क्रांतिकारी चिन्तन एवं अदम्य आत्म-विश्वास का एक जीवन्त उदाहरण है। इस श्रेणी को प्रस्थापित कर आपने विदेशों में तथा जन-जन में अध्यात्म सम्पदा के निर्यात का सुगम रास्ता खोज निकाला है।'

### अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर

'आचार्यश्री तुलसी स्वप्न-द्रष्टा हैं। आज तक आपने जो भी स्वप्न देखे, वे पूरे हुए हैं। जैनधर्म को विदेशों तक प्रामाणिक रूप से पहुंचाना, आपका चिर पोषित स्वप्न है। समणियों की विदेश-यात्रा इस स्वप्न की संपूर्ति में पृष्ठ-भूमि बन चुकी है। उनकी आगामी विदेश यात्राओं में सुनियोजित रूप से भगवान् महावीर के सन्देश को जन-जन तक पहुंचाने का लक्ष्य है, पर यह सब अभी भी भविष्य के गर्भ में है। आपके जीवन के सातवें एकादशक में प्रविष्ट होकर आचार्यश्री ने अनुशासन वर्ष, संयम वर्ष, स्वाध्याय वर्ष के माध्यम से लोकजीवन में अनुशासन और संयम के गहन संस्कार भरने का जो भगीरथ प्रयत्न किया है, वह स्तुत्य एवं अपूर्व है। सन् १९८५-८६ में आचार्यश्री अपने आचार्यकाल के शानदार पचास वर्ष पूरे किए हैं। इस उपलक्ष में अमृत महोत्सव मनाया गया है। जो रचनात्मक एक क्रांतिकारी कार्यक्रमों से परिपूर्ण था। इस अवसर पर आचार्यश्री ने समाज और देश को निश्चित ही नयी दिशा दी। सन् १९९१ तक चलने वाले चालू एकादशक के

समुज्ज्वल संभावनाओं के उजागर होने की प्रतीक्षा की जा सकती है। हमारी शुभ कामना है कि ऐसे वर्चस्वशील, दूर-द्रष्टा एवं प्रेरिक आचार्य सदा-सर्वदा स्वस्थ रहें तथा शतायु होकर समूचे लोक को आलोकित करते रहें? उनके जीवन की संक्षिप्त-सी झलक इसमें दी गई है जो संभवतः उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का शतांश भी नहीं है। उनके जीवन के हर ग्यारह संवत्सरोँ के कालक्रम को प्रमुख प्रवृत्ति के साथ इस प्रकार जोड़ा जा सकता है—

- |                                       |  |
|---------------------------------------|--|
| 1. सन् १९१४ से १९२५ (संवत् १९७१-८२)   | मां से संस्कार प्राप्ति।                                   |
| २. सन् १९२५ से १९३६ (संवत् ८२-९३)     | गुरु के चरणों में नया परिवेश।                              |
| ३. सन् १९३६ से १९४७ (संवत् १९९३-२००४) | ठोस धरातल का निर्माण या धर्मक्रान्ति के विस्फोट की तैयारी। |
| ४. सन् १९४७ से १९५८ (संवत् २००४-१५)   | उपलब्धियों का युग या धर्मक्रान्ति का श्रीगणेश।             |
| ५. सन् १९५८ से १९६८ (संवत् २०१५-२६)   | विकास के बढ़ते चरण।  |
| ६. सन् १९६९ से १९८० (संवत् १०२६-२०३७) | आध्यात्मिक अवदान।  |
| ७. सन् १९८० से १९९१ (संवत् २०३७-२०४८) | अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर।                                |

अन्तिम दो एकादशक आपकी अन्तर्मुखी साधना और वीतरागता की ओर बढ़ते चरण का समय होंगे, ऐसी कल्पना सहज की जा सकती है।

आचार्यप्रवर के बहु आयामी व्यक्तित्व में चेतनाशील सन्त, प्रखर अनुशास्ता-अध्यात्म-प्रवक्ता, सत्साहित्य सृजक, प्रबुद्ध चेता कवि, महान शिक्षक, कुशल व्यवस्थापक, व्यवहार कुशल नेता, दूरदर्शी भविष्य द्रष्टा, गंभीर अध्येता, अन्तर्मुखी साधक, प्रायोगिक धर्म के जन्मदाता, अणुव्रत प्रवर्तक, क्रान्तिकारी विचारक आदि अनेकानेक स्वरूप निहित हैं। जिसमें प्रत्येक विषय पर अनगिनत पृष्ठ भरे जा सकते हैं। उनके संस्मरण लाखों लोगों के मानस को आंदोलित कर रहे हैं तथा स्वल्प सम्पर्क होने पर भी उन्होंने मुझ जैसे विश्लेषक बुद्धिजीवी को सहजता व गहनता से प्रभावित किया है। मेरी भावना है कि मैं उनके किसी एक स्वरूप का विषद वर्णन करने में सफल बनूँ और मेरा विश्वास है कि उनके आशीर्वाद से मेरी भावना अवश्य साकार होगी, फलेगी।

संक्षेप में आचार्यश्री भिक्षु से आचार्यश्री तुलसी तक तेरापंथ के यशोगाथा की मात्र एक झलक प्रस्तुत कर मैं अपने आपको सौभाग्यशाली मान रहा हूँ।



## ६. आचार्यश्री तुलसी का युग : कीर्तिमानों की अपूर्व शृंखला

- (अ) संवत् १६७१ के कार्तिक शुक्ला २ को आपने लाडनूँ (ऐतिहासिक नगर चंदेरी) में जन्म लेकर मात्र ११ वर्ष की अवस्था में संवत् १६८२ के पौह वदी ५ को श्रीमद् कालूगणिजी के कर कमलों से दीक्षा ग्रहण की व तब से जीवन में प्रत्येक ११ वर्ष का काल खंड महत्त्वपूर्ण बन गया। दीक्षा लेने के पूर्व प्रथम दृष्टि में ही आप अपने गुरु की दृष्टि में चढ़ गए। दीक्षा के बाद ११ वर्ष तक आपने अपने गुरु का अनुपमेय वात्सल्य पाया। संभवतः इतना वात्सल्य किसी गुरु ने अपने शिष्य को नहीं दिया। अल्प समय में ही गुरु ने आप में अपनी समस्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र आराधना की ऊर्जा भर दी।
- (ब) श्रीमद् कालूगणि ने आपको मात्र २२ वर्ष की अवस्था में ही संवत् १६६३ भादवा सुदी ३ को गंगापुर में युवाचार्य मनोनीत किया। उनके महाप्रयाण के बाद भादवा सुदी ६ को आप आचार्य बने। इतनी छोटी आयु में इतने बड़े धर्म संघ (१३६ साधु एवं ३३३ साध्वियों के संघ) का आचार्य होना जैन इतिहास की विरल घटना है।
- (स) संवत् २०४२ के भादवा सुदी ६ को आपने पचासवें वर्ष के आचार्यत्व काल में प्रवेश किया, इतने सुदीर्घ समय तक सफल एवं यशस्वी आचार्यत्व काल का यह कीर्तिमान है। आप ७५ वर्ष की आयु में युवा की तरह कार्य करते हैं। आपकी दीप्तिमान आकृति देखते आपके शतायु होकर नया कीर्तिमान स्थापित करने की सहज ही कल्पना की जा सकती है।

## शिष्य — सम्पदा

- (अ) आपने संवत् २०४२ आसाढ़ पूर्णिमा तक २३२ साधु एवं ५४४ साध्वी कुल ७७६ व्यक्तियों को दीक्षित किया। शताब्दियों से किसी जैनाचार्य ने संभवतः अपने जीवन काल में इतनी सारी दीक्षाएं नहीं दीं।
- (ब) संवत् १६६४ में आपने अपना प्रथम चातुर्मास बीकानेर किया। वहां कार्तिक वदी ८ को एक साथ ३१ दीक्षाएं (८ साधु २३ साध्वियां) दीं। जिनमें आपकी संसार पक्षीय माता बदनांजी की दीक्षा भी थी। संवत् १६६६ के चूल्ह चातुर्मास में एक साथ १४ भाई और १३ बहनें दीक्षित हुए। संवत् २००० के गंगाशहर चातुर्मास में १५ भाई एक साथ दीक्षित हुए। संवत् १६६५ के एक ही वर्ष की अवधि में ४० दीक्षाएं (११ साधु २९) साध्वी हुईं। वे सभी अपने आप में कीर्तिमान हैं।
- (स) तेरापंथ धर्म संघ में आपके ज्येष्ठ भ्राता मुनिश्री चंपालालजी 'सेवाभावी' संवत् १६८१ में तथा आपके साथ आपकी ज्येष्ठ भगिनी महासती लाडांजी संवत् १६८२ में दीक्षित हुए। आपकी मातुश्री वदनोंजी को संवत् १६६४ में आपने दीक्षित किया। तेरापंथ धर्मसंघ में ऐसा योग पहले कभी नहीं बना।
- (द) आपके परिवार में संसार पक्षीय बुआ के बेटे भाई मुनि चंपालालजी ने संवत् १६८३ में, भानजे मुनि धनराजजी ने संवत् १६६४ में, सगे भतीजे मुनि हंसराजजी ने संवत् २००० में, भतीजे मुनि गुलाबचंदजी ने संवत् २००६ में, दौहित्र मुनि भूपेन्द्रकुमारजी ने संवत् २०३२ में एवं बुआ की पुत्रवधू साध्वी खुमोंजी ने संवत् १६६४ में, भानजी साध्वी मोहनोंजी ने संवत् १६६५ में तथा बुआ की पुत्रवधू साध्वी मोहनोंजी ने संवत् १६६८ में दीक्षा ली।
- (य) तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह के संवत् २०१७ के राजनगर चातुर्मास में—
१. आपके साथ ६७ साधु व १३० साध्वियां थीं।
  २. संवत् २००३ के चूल्ह मर्यादा महोत्सव पर संघ में १८३ साधु व ४०६ साध्वियां थीं।
  ३. जयाचार्य निर्वाण शताब्दी के संवत् २०३८ के चातुर्मास काल में बहिर्विहारी साधुओं के ४२ तथा साध्वियों के ६८—कुल १४० सिंघाड़े थे।

१५० हे प्रभो ! तेरापथ

**दीर्घवय स्थविर, दीक्षा स्थविर, अग्रणी, स्थिरवासी, युगदशक**

**१. वय स्थविर**

आपके शासनकाल में मुनिश्री मगनलालजी ने ६१ वर्ष (संवत् १६२५-२०१६) व मुनि श्री खूबचन्दजी ६६ वर्ष (१६४६ से २०४२) की आयु प्राप्त की। मातु श्री छोगोंजी ने ६५ वर्ष (संवत् १६०१ से १६६६) की तथा श्री बदनोंजी ने ६७ वर्ष (संवत् १६३६ से २०३३) की आयु प्राप्त की।

**२. दीक्षा स्थविर**

आपके शासन काल में मुनि छबीलजी ने संवत् १६२८ से संवत् २००२ तक लगभग ७४ वर्ष तथा मुनि मगनलालजी ने संवत् १६४३ से २०१६ तक ७३ वर्ष और साधवी लाडोंजी ने संवत् १६५५ से २०३७ तक ८२ वर्ष तक संघ में संयम साधना की।

**३. अग्रणी**

आपके शासनकाल में मुनि चंपालालजी (राजनगर) संवत् १६६६ से २०२६ तक ६० वर्ष व साधवी लाडोंजी (लाडनूं) संवत् १६६४ से २०३७ तक ७३ वर्ष अग्रणी रहे।

**४. स्थिरवासी**

मुनिश्री पूनमचंदजी (पचपदरा) संवत् १६६८ से १६६७ तक २६ वर्ष जयपुर में तथा साधवी लाडोंजी संवत् २००४ से २०३७ तक ३३ वर्ष डूंगरगढ़ में स्थिरवासी रहे।

**५. छः आचार्य युगदशक**

१. मुनि छबीलजी, २. साधवी भूरोजी, ३. साधवी गंगोजी, ४. साधवी जयकुंवरजी, ५. साधवी किस्तुरोंजी ६ भूरोजी, ७. साधवी जडावोंजी (बोरावड) ने श्रीमद् जयाचार्य से लगाकर आचार्यश्री तुलसी का काल देखा।

**६. सर्वोपरि पुरस्कार**

संवत् २००१ माघ शुक्ला ७ को सुजानगढ़ में आचार्यश्री ने मंत्री मुनि

मगनलालजी को खास रुक्का (मंत्री पद सहित तेरह बख्शीशें) प्रदान किया। इतनी बख्शीशें किसी आचार्य ने अब तक किसी को नहीं दीं। आपने अनेक अवसरों पर कई साधुसाधिवयों तथा श्रावक श्राविकाओं को विशेष विशेषणों से सम्बोधित किया। आपने जयाचार्य निर्वाण शताब्दी पर श्रीमद् जयाचार्य से लगाकर अब तक के १२ साधुओं को 'शासनस्तंभ' की उपाधि से सम्मानित किया।

### विशाल विहार क्षेत्र

१. आपने स्वयं वृहत् श्रमण संघ के साथ भारत के अधिकांश राज्य राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, बंगाल, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल प्रदेश में विहरण कर एक लाख किलोमीटर से अधिक यात्रा की।
२. आपके शासनकाल में उपरोक्त राज्यों के अतिरिक्त आपके अनुगामी साधु-साधिवयों ने असम, सिक्किम, गोआ, काश्मीर, पांडीचेरी तथा विदेश में नेपाल, भूटान की यात्रा की।
३. आपने निम्नलिखित नये स्थानों पर चातुर्मास व महोत्सव किए—

#### चातुर्मास

राजगढ़ (२००३), झांसी (२००७), दिल्ली (२००८, २२, ३१, ३८, ४४), बंबई (२०११), उज्जैन (२०१२), कानपुर (२०१५), अहमदाबाद (२०२४), मद्रास (२०२५), बेंगलोर (२०२६), रायपुर (२०२७), हिसार (२०३०), लुधियाना (२०२६), राणावास (२०३६), में नये व राजनगर में १६८ वर्ष बाद व बालोतरा में १७३ वर्ष बाद तथा आमेट में १७६ वर्ष बाद आपने आचार्यों का चातुर्मास किया।

#### मर्यादा महोत्सव

ब्वावर (१६६३), गंगाशहर (१६६४, २०००, २०२८, २०३८), भिवानी (२००७), राणावास (२०१०), बंबई (२०११, २४), भीलवाड़ा (२०१२), सेंथिया (२०१५), आमेट (२०१७), भीनासर (२०१८), राजनगर (२०१६), हिसार (२०२२), चिदम्बरम् (२०२५), हैदराबाद (२०२६), मोमासर (२०२८), दिल्ली (२०३०), पडिहारा (२०३३), संगरूर (२०३६), नाथद्वारा (२०३६), जसोल (२०४१) में, नये मर्यादा महोत्सव मनाए व संवत् २०४२ में उदयपुर में

१५२ हे प्रभो ! तेरापंथ

८३ वर्ष बाद व बालोतरा में संवत् २०२१ में १०० वर्ष बाद आपने मर्यादा महोत्सव कराया ।

## विशिष्ट तपस्याएं, साधना एवं सेवा

### १. मौन साधना

मुनि पांचौरामजी ने लगातार छः वर्ष तक मौन रखा व साध्वी राजकुमारीजी (नोहर) १७ वर्षों से मौन हैं ।

### २. विशिष्ट तप

१. मुनि वृद्धिचंदजी ने 'गुणरत्न संवत्सर' तप किया । २. घोर तपस्वी मुनि सुखलालजी ने 'भद्रोत्तर' तप किया । ३. साध्वी भूरोजी ने 'महा भद्रोत्तर' तप किया । ४. लघुसिंहू निष्क्रीडित परिपाटी तप २५ साधु-साधवियों ने किए, जिसमें पहली परिपाटी १३ ने, दूसरी ३ ने, तीसरी १ ने व चौथी ७ ने व आर्यबिल की परिपाटी १ ने की ।

### ३. रोमांचकारी तप

१. मुनि सुखलालजी ने १८० दिन जल परिहार तप (एक दिन बिना पानी भोजन व एक दिन चौविहार उपवास) किया । ऐसा तप पहले किया जाना सुना नहीं गया ।
२. साध्वी भूरोजी ने आछ (छाछ के ऊपर पानी) के आगार पर बारह (१२) माह का, छः साधवियों ने आछ के आगार पर छः मासी ३ ने साधिक चातुर्मासिक १ व चातुर्मासिक तप ५ ने किए । मुनि रेवतकुमार ने एक साथ बारह मास की तपस्या का संकल्प लिया पर वे १४८वें दिन दिवंगत हो गए ।
३. श्राविका कला देवी ने १२१ दिन की तपस्या की ।
४. साध्वी भीरोजी ने तेरह महीने तक लगातार आर्यबिल तप किया ।
५. मुनि छोगमलजी ने छाछ व पानी लेकर १८० दिन व मुनि मिलापचन्दजी ने २६० दिन, ३५० दिन व ४६५ दिन की क्रमशः तपस्या की ।
६. मुनि उगमराजजी ने अब तक ३५ बार महीने-महीने (मासखमण) की मौन तपस्या कर चुके हैं ।
७. श्रावक मनोहरी देवी आंचलिया ने ३० बार महीने-महीने की (मासखमण)

तपस्या की।

८. चूड़ा के लालचन्द भाई ने ३४ वर्ष से लगातार चोले (चार दिन) की तपस्या की।
९. श्राविका गीगो देवी डूंगरगढ़ ने ४६ वर्ष एकान्तर तप किया व चम्पाबाई सालेचा बालोतरा ३४ वर्षों से एकान्तर तप कर रही हैं।
१०. मुनि उगमराजजी ने उपवास से ३१ दिन तक, मुनि गुलाबचन्दजी ने उपवास से ३२ दिन तक तथा श्राविका मनोहरी देवी आंचलिया ने उपवास से ३४ दिन तक क्रमबद्ध तपस्या की।

#### ४. दीर्घ अन्तिम अनशन

१. श्राविका मनोहरी देवी छाजेड़ ने ८७ दिन व श्रावक हरकचन्दजी सुराणा ने १०३ दिन तक अन्तिम निराहार अनशन किया।
२. साध्वी सन्तोकोजी ने २० दिन, साध्वी रत्नवतीजी ने २२ दिन व साध्वी पिस्तोजी ने २४ दिन का अन्तिम निर्जल निराहार अनशन किया।

## कला, शिक्षा, साहित्य, अवधान, शोध आदि का विकास

### १. कला

आपके शासनकाल में चित्रकला, शिल्प कला, रंग रोगन, सिलाई का विकास हुआ। पात्र, प्याले, टोपसी का निर्माण व उन पर सूक्ष्म चित्रकारी व लिपि, ऐतिहासिक स्थलों के हस्त-कौशल चित्र एवं बोध गम्य सुन्दर चित्र बने। साहित्य सुरक्षा हेतु पेटियां, चश्मे, चश्मे के फ्रेम, लेंस, लेंस मीटर, घड़ी, जल घड़ी, टाइम पीस, दूरबीन आदि वस्तुएं लकड़ी, कार्ड बोर्ड व प्लास्टिक से बनाई गईं।

### २. शिक्षा

साधिव्यों की शिक्षा परा पूरा ध्यान दिया गया। आज अनेक साधु साध्वी संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, पंजाबी, कन्नड़, तमिल, बंगला भाषा के प्रवक्ता, लेखक, अधयेता, कवि, आशुकवि, अनुसन्धानकर्ता व सम्पादक हैं। अनेक साधु शतावधानी और सहस्रावधानी हैं। आपके, युवाचार्यश्री के व अन्य साधु-साधिव्यों द्वारा सृजित विपुल मात्रा में उच्च स्तरीय धर्म, दर्शन, योग, मनोविज्ञान आदि विषयों पर साहित्य की सर्वत्र बौद्धिक जगत में प्रशंसा है।

१५४ हे प्रभो ! तेरापंथ

### ३. शोध

संवत् २०१२ के आसाढ़ शुक्ला १५ के दिन संकल्प लेकर आचार्यश्री, युवाचार्यश्री तथा उनके शिष्य समुदाय ने जैन आगमों का सरल, सुबोध एवं शोध-परक भाषा में सम्पादन किया तथा अनेक आगम, कोष, समीक्षाएं अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। आचार्य भिक्षु का समग्र साहित्य सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका है तथा जयाचार्य के विशाल साहित्य का सम्पादन हो चुका है तथा क्रमिक प्रकाशन हो रहा है। मुनि नवरत्नमलजी ने तेरापंथ धर्म संघ में अब तक दीक्षित २२६७ साधु साधवियों के बारे में प्रमाणित तथ्यों का संकलन कर 'शासन-समुद्र' (भाग १ से १८) की रचना की है। जिसे तेरापंथ का विश्व कोश कहा जा सकता है।

## साधन के विकास एवं पुष्टिकरण की व्यवस्था

संयम के पथ पर चरण बढ़ाते ही साधक-संस्कार पुष्ट हो जाएं, यह सम्भव नहीं है। अतः उसका आधार पुष्ट बनाने हेतु आचार्यश्री के शासनकाल में निम्नलिखित नवीन व अभूतपूर्व योजनाएं प्रारम्भ हुईं—

### १. मुमुक्षु श्रेणी व पारमाथिक शिक्षण संस्था

संवत् २००५ के फागुण में सरदारशहर में आचार्यप्रवर की प्रेरणा से 'पारमाथिक शिक्षण संस्था' की स्थापना हुई। जिसमें दीक्षा लेने के इच्छुक भाई बहन प्रवेश पाकर समुचित शिक्षा और साधना का अभ्यास करें। ताकि उनकी वृत्ति, स्वभाव तथा जागरूकता के आधार पर दीक्षा की योग्यता का अंकन हो सके। अब तक इस संस्था में हजारों मुमुक्षु बहन-भाइयों ने प्रवेश पाकर शिक्षा और साधना का अभ्यास किया है। उनमें से सैकड़ों दीक्षाएं अब तक हो चुकी हैं। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी प्रभृति अनेक प्रख्यात साधवियां इस संस्था की देन हैं।

### २. समण-समणी श्रेणी

गृहस्थ तथा साधुओं के बीच साधकों की वह श्रेणी जो कतिपय (आहार, विहार, निहार) अपवादों के साथ महाव्रतों की साधना करते हुए अध्यात्म का प्रचार-प्रसार कर सके। संवत् २०३७ के कार्तिक सुदि २ को इस श्रेणी का प्रादुर्भाव हुआ तथा लाडनू में छः बहनों ने समण दीक्षा ली। समण-समणियां अब तक इंग्लैंड, नेपाल तथा भारत के कई सुदूर खण्डों की यात्रा कर अध्यात्म भावना का प्रचार कर चुकीं

हैं व आगे इनकी गतिविधियों में विकास की विपुल उज्ज्वल सम्भावनाएं हैं। जैन समाज को यह अनुपम देन आचार्य प्रवर की युगानुकूल मौलिक देन है।

## नैतिक जागरण व व्यक्ति सुधार के आन्दोलन

### १. अणुव्रत आन्दोलन

संवत् २००५ के फागुण शुक्ला द्वितीया को सरदारशहर में आपने इस आन्दोलन का सूत्रपात किया, जिसमें छोटे-छोटे व्रतों के आधार पर सार्वजनीन नैतिक आचार-संहिता बनायी गयी। धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग, वर्ण के भेद से परे जन-जन को इस संहिता को अपनाने हेतु उद्बोधन दिया गया। स्वयं आचार्यश्री ने देश के कोने-कोने तक प्रलंब यात्राएं कीं। भारत में नैतिकता की प्रतिष्ठापना के लिए चलने वाला मात्र यही एक आन्दोलन है, जिसके साथ कोटि-कोटि जन जुड़े हैं, जिसे शीर्षस्थ राजनेताओं, न्यायाधीशों, जन-नायकों, साहित्यकारों और पत्रकारों का समर्थन व सहयोग मिला है।

### २. नया मोड़

संवत् २०१७ के राजनगर चातुर्मास में आचार्यश्री ने सामाजिक कुरूद्वियों के उन्मूलन हेतु 'नया मोड़' का आह्वान किया ताकि व्यक्तिगत जीवन सात्विक बन सके। इस आन्दोलन से नारी जागृति के कार्यक्रम को विशेष बल मिला।

### ३. भावात्मक एकता एवं सर्वधर्म समभाव

साम्प्रदायिक समभाव हेतु आचार्यश्री ने संवत् २०११ के बम्बई चातुर्मास के अवसर पर पंचसूत्री कार्यक्रम दिया तथा भगवान् महावीर पच्चीससौवें निर्वाण महोत्सव पर दिल्ली में जैन समाज में एकता के लिए प्रयास किए, जिससे जैन समाज के एक प्रतीक, एक ध्वज व एक सिद्धान्त ग्रन्थ 'समण सुत्त' का निर्माण हुआ। आपने जैन, सनातन, बौद्ध, मुसलमान, ईसाई धर्म के आचार्यों के साथ सौहार्द भाव बनाया।

### ४. प्रेक्षा ध्यान

आपने धर्म को मात्र प्रवचन व उपदेश का विषय मानकर उसे प्रायोगिक बनाने हेतु 'प्रेक्षा ध्यान' पद्धति का आविष्कार किया। अब तक प्रेक्षाध्यान शिविरों के



१५६ हे प्रभो ! तेरापंथ,

माध्यम से हजारों व्यक्तियों ने शारीरिक व मानसिक व्यसन, व्याधि व तनाव से मुक्ति पायी है। इसकी प्रक्रिया व प्रयोग सतत् वर्द्धमान हैं।

#### ५. जीवन विज्ञान

सरल, सरस, सात्विक जीवन जीने के लिए निश्चित पाठ्यक्रम व पद्धति के रूप में शिक्षा-प्रणाली में 'जीवन-विज्ञान' विद्या का समावेश कर विद्यार्थियों व युवकों को सही जीवन का निर्माण करने की प्रेरणा दी।

#### ६. जन जागरण अभियान

किशोर, कन्याएं, युवक, महिलाएं इन सभी वर्गों के उन्नयन के लिए आपकी प्रेरणा से अलग-अलग संस्थान बने तथा सभी वर्गों में सर्वतोमुखी जागरण का स्वर बुलंद हुआ। देश के कोने-कोने में पाद विहार करते हुए आपने कोटि-कोटि जनता को अपनी झोली में बुराइयां भेंट करने की प्रेरणा दी तथा अनेक ने अपने व्यसन व दुष्कृत्यों को छोड़ने का संकल्प लिया।

### विरोधों में अजातशत्रु

आपके शासनकाल में अन्तरंग व बाह्य सभी प्रकार के संघर्ष आए। आपने अपूर्व सहिष्णुता, धैर्य व बुद्धिमत्ता से उनका शमन किया। संवत् २०१२ में मुनि श्री रंगलालजी प्रभृति १५ साधु, संवत् २०३०-३२ में मुनि नगराजजी, महेन्द्रकुमारजी, संवत् २०३८ में मुनि धनराजजी, चन्दनमलजी, रूपचन्दजी प्रभृति अनेक साधु-साध्वी संघ की मर्यादाओं तथा अनुशासन को चुनौती देते संघ से अलग हुए पर आपको दूरदर्शिता व सूझ-बूझ के कारण विरोध टिकन सका, संघ की एकता और अनुशासन पर किसी प्रकार की आंच नहीं आई।

संवत् २००६ जयपुर चतुर्मास में 'बालदीक्षा विरोध' संवत् २०१६ कलकत्ता चातुर्मास में 'मल मूत्र प्रकरण' तथा संवत् २०२७ रायपुर व संवत् २०२६ चूरू चातुर्मास में 'अग्नि परीक्षा' विरोध के नाम पर विद्वेषी लोगों ने घृणा और हिंसा को प्रोत्साहित किया। पर अहिंसक प्रतिकार से आपने सभी विरोधों को मात्र विनोद मानकर अपने अटूट आत्मबल व अजातशत्रुता का परिचय दिया।

## ऐतिहासिक समारोहों की अविच्छिन्न शृंखला

आपके सुदीर्घ शासनकाल में अनेक समारोह मनाए गए, जिनमें निम्नलिखित समारोह ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं—

### १. तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह

संवत् २०१७ के आसाढ शुक्ला पूर्णिमा को केलवा में मनाया गया। जिसमें ३०,००० तेरापंथी एकत्रित हुए तथा भारत के प्रधान न्यायाधीश बी० पी० सिन्हा, राजस्थान के मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया आदि अनेक विशिष्ट व्यक्ति सम्मिलित हुए।

### २. धवल समारोह

संवत् २०१८ में आचार्यप्रवर के शासन के पच्चीस वर्ष सम्पन्न होने के उपलक्ष्य में प्रथम चरण बीदासर में तथा द्वितीय चरण गंगाशहर में मनाया गया। गंगाशहर में भारत गणराज्य के तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन ने आपका सार्वजनिक अभिनन्दन किया तथा अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया।

### ३. मर्यादा महोत्सव शताब्दी समारोह

संवत् २०२१ में बालोतरा में लूणी नदी के विशाल पाट के बीच ३०,००० व्यक्तियों की उपस्थिति में समारोह मनाया गया।

### ४. भगवान् महावीर पच्चीससौवां निर्वाण महोत्सव

जैनधर्म के सभी सम्प्रदायों के आचार्यों व मुनियों ने दिल्ली में संवत् २०३० में निर्वाणोत्सव मनाया तथा एक प्रतीक, एक ध्वज और एक ग्रन्थ 'समण सुत्त' की रचना की।

### ५. श्रीमद् कालूगणि जन्म शताब्दी समारोह

संवत् २०३३ फागुन शुक्ला २ को छापर में मनाया गया, श्रीमद् कालूगणि से सम्बन्धित साहित्य प्रकाशित हुआ तथा सिद्धान्त संग्रह 'कालू तत्त्व शतक' की रचना हुई।

### ६. श्री जयाचार्य निर्वाण शताब्दी समारोह

संवत् २०३८ में दिल्ली में भादवा वदि १२ को मनाया गया तथा विशाल

१५८ हे प्रभो ! तेरापंथ

अनुशासन रैली (मौन) निकली । श्रीमद् जयाचार्य के समग्र साहित्य का संकलन और सम्पादन हुआ और क्रमशः यह प्रकाशित हो रहा है ।

### ७. आचार्यश्री तुलसी अमृत महोत्सव चार चरणों में

संवत् २०४२ में आचार्यश्री के शासनकाल के पचासवें वर्ष के उपलक्ष में मनाया गया ।

१. प्रथम चरण—अक्षय तृतीया के अवसर पर गंगापुर में मनाया गया ।
२. द्वितीय चरण—भादवा सुदि ६ को आमेट में विराट जनाभिनन्दन के रूप में मनाया गया । करीब चालीस हजार व्यक्ति सम्मिलित हुए ।
३. तृतीय चरण—उदयपुर में माह सुदि ५ से ७ तक मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर मनाया गया । माह सुदि ५ को भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंहजी ने आचार्यप्रवर का अभिन्दन किया एवं सुदि ६ व ७ को विभिन्न संस्थाओं और जनता ने शुभकामनाएं प्रकट कीं । लगभग ३०-३५ हजार व्यक्ति उपस्थित रहे । जैन समन्वय सम्मेलन एवं जीवन-विज्ञान शिक्षा सम्मेलन के ऐतिहासिक आयोजन हुए ।
४. चतुर्थ चरण—बोध-स्थल राजनगर में महावीर जयन्ती के अवसर पर मनाया गया । इस अवसर पर अखिल भारतीय अणुव्रत परिषद् एवं अहिंसा सार्वभौम सम्मेलन के महत्त्वपूर्ण आयोजन हुए ।

इसके अलावा अन्य महत्त्वपूर्ण आयोजन भी समय-समय पर होते रहे जिसमें निम्नलिखित आयोजनों का विशेष उल्लेख किया जा सकता है—

### १. युवाचार्य मनोनयन

संवत् २०३५ माघ शुक्ला ७ दिनांक ४-२-७६ को आपने भुनि नथमलजी को, पूर्व में 'महाप्रज्ञ' विशेषण से सम्मानित कर, युवाचार्य मनोनीत किया । उस समय युवाचार्यजी ५६ वर्ष के थे तथा विश्रुत-विद्वान, अध्यात्म योगी, अंतरप्रज्ञा के उद्घाटक, प्रबुद्ध साहित्यकार एवं गहन दार्शनिक के रूप में प्रख्यात हो चुके थे । आयु, अनुभव, प्रज्ञा, साधना सभी दृष्टियों से प्रौढ़ व परिपक्व युवाचार्य के मनोनयन का यह पहला अवसर था ।

### २. आचार्यभिक्षु निर्वाणोत्सव (११=वां) सिरियारी में

संवत् २०३६ के भादवा सुदि १३ को सिरियारी में स्वामीजी के समाधि-स्थल पर निर्वाणोत्सव मनाया गया, जिसमें खुली नदी के पाट में लगभग ५० (पचास) हजार व्यक्ति सम्मिलित हुए व नव निर्वाचित राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह विशेष रूप

से हेलिकोप्टर द्वारा पधारे। राज्य के राज्यपाल, मुख्यमंत्री, केन्द्रीय मन्त्री उनके साथ थे।

## अभिनन्दन, सम्मान आदि

### १. अभिनन्दन ग्रन्थ

संवत् २०१८ में २५ वर्ष के सफल शासन काल के उपलक्ष में धवल समारोह पर गंगाशहर में डॉ० राधाकृष्णन ने आपको वृहत् अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया, संभवतः इतने व्यापक स्तर पर श्रद्धा भाव प्रकट किए जाने का यह प्रथम अवसर था।

### २. 'युगप्रधान' पद

संवत् २०२७ माघ शुक्ला ७ को बीदासर में मर्यादा महोत्सव के अवसर पर दक्षिण भारत की सुदीर्घ एवं प्रभावक यात्रा की संपन्नता के उपलक्ष में तेरापंथ धर्म संघ द्वारा आपको 'युग प्रधान' पद से विभूषित किया गया।

### ३. 'अमृत पुरुष' सम्बोधन

अमृत महोत्सव के पावन अवसर पर सभी स्थानों पर जनता ने समवेत स्वर से आपको 'अमृत पुरुष' से सम्बोधित किया और स्वतः आप 'अमृत पुरुष' के रूप में जनता के हृदय में बस गए।

### ४. 'भारत ज्योति' अलंकरण

राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर ने अपने सर्वोच्च सम्मान 'भारत ज्योति' से आपको अलंकृत किया। संवत् २०४२ माघ शुक्ला ५, १४-२-८६ को भारत गणराज्य के राष्ट्रपति जैर्लिंगिहजी ने उदयपुर में यह सम्मान प्रदान किया।

५. भारत के प्रख्यात दार्शनिक एवं जू० पू० राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन ने विश्व की १४ महान विभूतियों का जीवन वृत्त 'लिंगिग विथ परपज' पुस्तक में लिखा है, उन विभूतियों में आपका जीवन वृत्त भी है और उन १४ विभूतियों में आप ही एकमात्र विद्यमान व्यक्ति हैं। इतने शीर्षस्थ विद्वान की लेखनी से

१६० हे प्रभो ! तेरापंथ

प्रस्फुटित श्रद्धा उद्गारों पर समूचा संघ अपने आस्था के धनी आचार्यप्रवर के प्रति श्रद्धावनत होकर गौरवान्वित है ।

आचार्यप्रवर स्वस्थ एवं दीर्घजीवी होकर अपने में अन्तर्निहित अध्यात्म के आलोक को विश्व में विकिरण करते रहें तथा युगों-युगों तक हमारा पथ प्रशस्त करें, यही आज जन-जन की भावना है ।

## उज्ज्वल भविष्य का प्रतीक

१०. युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ पूर्वनाम मुनि नथमलजी जन्म-स्थान, माता-पिता-वंश आदि

आपका जन्म संवत् १९७७ असाढ़ वदि १३ (१४-६-२०) को राजस्थान राज्य के जयपुर डिवीजन में टमकोर (विष्णुगढ़) गांव में हुआ । आपके पिता का नाम श्रीतोलारामजी चोरड़िया व माता का नाम बालूजी था । आपके शैशवावस्था (ढाई माह में आपके पिता का देहान्त हो गया और आपकी माता ने विकट परिस्थितियों में भी बड़े स्नेह से आपका लालन-पालन किया ।

संस्कार, वैराग्य, दीक्षा, शिक्षा आदि

जब आप मात्र आठ वर्ष के थे तभी किसी भिक्षु ने आपकी मात्र आकृति देख कर आपके योगी बनने की भविष्यवाणी की थी । मात्र नव वर्ष की अवस्था में कलकत्ता महानगर की भीड़-भाड़ में आप खो गए तो अन्तश्चेतना के बल पर मात्र संयोग से सकुशल अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच गए । संवत् १९८७ में मुनिश्री छबीलजी ने टमकोर में चातुर्मास किया तथा उनकी व उनके साथ मुनिश्री मूलचंदजी (बीदासर) की प्रेरणा से आपके मन में वैराग्य जगा । आपने अपनी माता के साथ पूज्यकालूगणिजी के गंगाशहर में दर्शन किए तथा अनिर्वचनीय आनंदानुभूति प्राप्त की । इसी वर्ष माघ शुक्ला १० को आपकी माता बालूजी के साथ आपकी दीक्षा सरदारशहर में श्रीमद् कालूगणि के कर-कमलों से हुई । आपकी बड़ी बहन श्रीमालूजी को संवत् १९९८ में आचार्यश्री तुलसी ने दीक्षित किया । श्रीमद् कालूगणिजी ने दीक्षा के बाद आपको मुनिश्री तुलसी के सान्निध्य में शिक्षा प्राप्त करने का निर्देश दिया । आप इतने सहज, सरल और निश्चित वृत्ति के थे कि आपकी सारी सार-संभार तथा देख-रेख मुनि तुलसी ही करते थे । तब किसे पता था कि जीवन भर आपकी देखरेख तथा सार-संभार करना मुनि तुलसी की नियति बन

जाएगी और आपका सेवा व समर्पण भाव उसी सहजता से उन्हें जीवन भर मिल जाएगा। आपकी तीक्ष्ण बुद्धि, सतत् अभ्यास व विनम्र भावना से आपने बाल्य-काल में अपूर्व ज्ञान राशि संचित कर ली। संवत् १६६३ में आचार्यश्री तुलसी के पदासीन होने के बाद आपकी प्रतिभा में निखार आता गया। कुछ वर्षों में ही संस्कृत, प्राकृत, न्याय, दर्शन, योग, व्याकरण, सिद्धान्त, तत्त्वज्ञान आदि अनेक विद्याओं में आप पारगामी मनीषी बन गए व आचार्यश्री के अनुग्रह से चतुर्मुखी दिशाओं में आपका विकास होता रहा। संस्कृत में आशु कविता और प्राकृत में धारा प्रवाह प्रवचन आपकी विशेष उपलब्धि रही। हिंदी भाषा में निबंध, कविता एवं प्रवचन की विशिष्ट शैली बनी। आपकी इन विशेषताओं के कारण आचार्यश्री आपको सम्मानित करते रहे।

### महाप्रज्ञ अलंकरण, युवाचार्य मनोनयन व योग पुनरुद्धारक के रूप में

संवत् २०३५ कार्तिक शुक्ला १३ को युग-प्रधान आचार्यश्री ने आपको 'महाप्रज्ञ' की विरल उपाधि से अलंकृत किया व उसी वर्ष मर्यादा-महोत्सव पर आचार्यश्री ने राजलदेसर में तेरापंथ धर्म-संघ का सर्वोच्चपद युवाचार्य मनोनीत कर प्रदान किया। आचार्यश्री ने अमृत महोत्सव पर आपको 'जैन योग पुनरुद्धारक' की उपाधि से सम्मानित किया। आचार्यप्रवर की तथा आपकी गुरु-शिष्य जोड़ी 'महावीर-गौतम' युग की याद दिलाती है। आचार्यश्री की भावना, संकेत, आदेश, निर्देश को आपने सदा सशक्त अभिव्यक्ति दी है। महाकवि दिनकर के शब्दों में आप आचार्यश्री जैसे अनुभूत परमहंस के व्याख्याकार स्वामी विवेकानंद हैं।

### तेरापंथ धर्मसंघ को आपका अपूर्व योगदान

१. संवत् २०१२ से आचार्यश्री की वाचना में जैन आगमों का सुव्यवस्थित सम्पादन व अर्थ, टीका, समीक्षा सहित करने में अब तक आप अथक प्रयास कर रहे हैं।

२. जैन आगमों में यत्र-तत्र बिखरे ध्यान योग के सूत्रों को गुंफित कर आज के युगीन समस्याओं के निराकरण तथा अध्यात्म से परिपूरित वैज्ञानिक व्यक्तित्व के निर्माण हेतु प्रेक्षाध्यान की ध्यान-प्रणाली का आपने प्रणयन किया जिससे सहस्रों लोगों ने अब तक तनाव-मुक्ति और सही जीवन जीने की युक्ति प्राप्त की। धर्म का प्रायोगिक स्वरूप प्रथम बार लोगों के सामने आया।

३. चरित्र निर्माण की दिशा में वर्तमान शिक्षा-प्रणाली को पूर्ण बनाने की

१६२ हे प्रभो ! तेरापंथ

दिशा में 'जीवन विज्ञान' विषय पर प्रेरणा दी ।

४. धर्म, तत्त्व ज्ञान, जीवन दर्शन, योग, साहित्य पर सैकड़ों पुस्तकें लिखकर श्रेष्ठ साहित्य का विपुल सृजन किया ।

५. अतीन्द्रिय ज्ञान व ध्यानयोग में अच्छी गति प्राप्त की। विश्व का समूचा अध्यात्म जगत् आप जैसे संत, मनीषी, दार्शनिक पाकर धन्य है ।

## ७. आचार्य भिक्षु की मान्यताएं व मर्यादाएं : आज के युग में उनकी प्रासंगिकता व सार्थकता

तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक आचार्यश्री भिक्षु एक अलौकिक एवं विलक्षण पुरुष थे। उनकी आत्म-चेतना पूर्णतः जाग्रत थी और उसकी निर्मलता में उन्होंने शाश्वत सत्य का समग्रता से साक्षात् किया एवं उसकी प्रशस्त व्याख्या की। स्वयं को निरंतर उत्कट त्याग और तपस्या की आंच में तपाकर, उन्होंने विराट् चैतन्य का आलोक प्राप्त किया। शाश्वत सत्य को जाना, परखा और अनुभव किया और जब वे पूर्णतः अभय और असंग बन गए तो उन्होंने उस सत्य को प्रखरता से अभिव्यक्ति दी। खोई हुई जीवन दृष्टि और छोड़ा हुआ जीवन-पथ जन-जन को दिखाने के लिए वे प्रकाश-स्तम्भ बने। उन्हें धर्म का वही स्वरूप इष्ट था जो वीतराग देव द्वारा प्रणीत था, जिसका आत्म-शुद्धि ही साध्य था और जो आप्त वाणी में अहिंसा, संयम व तप से परिबेष्टित था। वे आत्म धर्म के महान् उद्बोधक बने और उनकी दृष्टि में सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप की साधना से आत्म सिद्धि प्राप्त करने के सिवाय, अन्य किसी प्रकार की भौतिक या लौकिक सिद्धि की उपलब्धि के लिए की जाने वाली साधना, धर्म की कोटि में नहीं आ सकती। उन्होंने साधु की शीलचर्या एवं आचार संहिता को आत्म-शुद्धि एवं आत्म-सिद्धि की तुला पर रखकर परीक्षित किया और जहां वह संहिता इस तुला पर खरी न उतर सकती, उसका पूर्णतः निषेध किया। उनका सारा जीवन 'आत्म धर्म' एवं 'वीतराग-साधना' के परिपार्श्व में खपता रहा। उसी में उनकी जीवन ऊर्जा प्रकाशित हुई एवं उस ऊर्जा से जन-मानस आत्म साधना के पथ पर आकृष्ट हुआ। उनके द्वारा प्रस्थापित शाश्वत सत्य के स्वर आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने वे दो शताब्दी पूर्व थे। भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद उनके उत्तरवर्ती कुछ अतीन्द्रिय ज्ञानी आचार्यों को छोड़कर आत्मधर्म एवं शुद्ध साधवाचार की प्रखरता से, जितनी सशक्त अभिव्यक्ति आचार्य भिक्षु ने दी, उतनी संभवतः शताब्दियों में अन्य किसी आचार्य ने इतने व्यापक रूप से नहीं दी। आचार्यश्री भिक्षु, तात्कालिक साधु



समुदाय में व्याप्त शिथिलाचार, अव्यवस्था और सिद्धान्त विपर्ययता के विरुद्ध विद्रोह के स्वर में बोले, जिसका सहज परिणाम हुआ कि युगों की तहों में छिपी आचार-विचार की विकृतियां स्वयं अनावृत हो गईं एवं अनाचार की घुरी टूट गई। धन से धर्म को संबंधित कर एवं अपना-अपना घर बांधकर बैठने वाले मुख-सुविधा भोगी पदलोलुप साधुओं की लोकेषणा, महत्त्वाकांक्षाएं व शिष्यों की चाह पर उन्होंने अत्यन्त कड़े शब्दों में प्रहार किए और उनकी अन्तरभेदी वाणी से शिथिलाचार के गढ़ ढहने लगे और युग को नया बोध मिला। आचार्य भिक्षु ने वीतराग प्रभु में अपनी अविचल आस्था रखते हुए वीतराग वाणी से गुम्फित जैन आगमों का अनेक बार सूक्ष्मता से तलस्पर्शी अध्ययन किया और उसके आधार पर अपनी भाषा में शाश्वत सत्य की मौलिक मान्यताएं एवं मर्यादाएं प्रस्तुत की, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है—

संसार में सब कार्य दो प्रकार के हैं—एक अधार्मिक और दूसरा धार्मिक। धार्मिक कार्य वे हैं जो सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चरित्र एवं तप की वृद्धि करते हैं तथा जिनसे आत्मा कर्म बंधन से मुक्ति प्राप्त करती है, इसके विपरित जो कार्य सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप की प्रक्रिया का हास करते हैं, वे सभी कार्य अधार्मिक हैं। वीतराग प्रभु ऐसे कार्य करने, करवाने या अनुमोदन करने की प्रेरणा या आज्ञा नहीं देते। आचार्यश्री भिक्षु के शब्दों में—

१. अर्थ, परम अर्थ जिन धर्म छैः, उवाईं सूयगड़ा अंग मांय रे,  
तिण मोहे तो श्री जिन आगन्या, सेस अनर्थ में आग्या न कोयरे।  
ग्यान, दर्शन, चारित ने तप, एतो मोखरा मार्ग च्यार रे,  
यां च्यारों में जिणजी री आगन्या यां बिना नहीं धर्मलिगार रे।

—जिन आज्ञा री चौपी १।१६-२

२. वीतराग प्रभु ने साधना के दो मार्ग बताए हैं, जिन्हें आगार धर्म और अनागार धर्म कहा जा सकता है। अनागार धर्म में पांच महाव्रत यथा अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह की अखंड एवं समग्र साधना करनी पड़ती है, उसमें कोई अपवाद नहीं होता। ऐसी साधना तीन करण, तीन योग से यानि मन, वाणी, शरीर से करना, करवाना, अनुमोदन करने में सर्वांश रूप से समाहित होती है और इन महाव्रतों के सिवाय इस साधना में सारे कार्यों का निषेध किया गया है, जो भी तीन करण, तीन योगों की प्रवृत्ति में ही फलित होता है। ऐसे धर्म की साधना केवल साधु, मुनि या संन्यासी ही कर सकते हैं और यह उनके लिए अनिवार्य है। आगार धर्म में इन पांच महाव्रतों की साधना आंशिक रूप से, अपनी सीमा में रहते, जीविकोपार्जन के सारे कार्य पवित्रता पूर्वक करता हुआ, गृहस्थ अपनी साधना, अपवाद रखकर करता है। सर्वांश और आंशिक साधना दोनों ही वीतराग प्रभो की

आज्ञा में हैं। आचार्य भिक्षु के शब्दों में—

‘सर्वं विरत धर्मं साधु तणो, देश विरत श्रावक रो धर्मं रे  
यां दोनू धर्मं में जिन आगन्या, आग्या बारे तो बंधसी कर्म रे’  
‘सर्वं मूल गुण, उत्तर गुण, देस मूल उत्तर गुण दोग्य रे  
यां दोनू गुणों में जिन आगन्या, आगन्या बारे गुण नहीं कोय रे’

—जिन आज्ञा री चौपी १/२०-१८

‘साधु, श्रावक, दोनू तणी, एक अनुकंपा जाण  
इमरत सहु नो सारिखो, कूडी मत करो ताण’

—अणुकम्पा २ दो-३

साधु श्रावक नो एकज मार्गं, दोग्य धर्म बताया रे  
ते तिण दोन्यू आग्या मोहे, मिश्र अणहुंतो ल्याया रे’

—व्रताव्रत-१/२८

आचार्य भिक्षु की दृष्टि में आगार धर्म तथा अनागार धर्म के सिवाय तीसरा मिश्रित मार्ग वीतराग प्रभो द्वारा न तो प्रतिपादित है, न उनकी आज्ञा में है।

३. आत्म धर्म की साधना के दो प्रकार हैं, जिन्हे संवर (त्याग या संयम) और निर्जरा (तपस्या या सम्यक् प्रवृत्ति) परिभाषित किया गया है। संवर में सम्यक्त्व, व्रत, अप्रमाद, अकषाय तथा अयोग आदि बीस प्रकार की साधना से नये कर्मों का बंधन या आत्मा पर आच्छादन रुक जाता है और निर्जरा में बाह्य तपस्या तथा आंतरिक तपस्या, यथा—अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रस-परित्याग, काया-क्लेश, प्रतिसंलीनता, विनय, सेवा, ध्यान, स्वाध्याय, प्रायश्चित्त, कायोत्सर्ग से पूर्व संचित कर्मों के समूह को जिन्होंने आत्म निर्मलता को, अवरुद्ध कर रखा है, तोड़ने, काटने या हटाने की प्रक्रिया वेगवती हो जाती है, को ही आचार्य भिक्षु ने धर्म बताया तथा वीतराग प्रभो की आज्ञा में बताया और इसके सिवाय अन्य सारी क्रियाओं को पापकारी, अधर्म एवं वीतराग प्रभो की आज्ञा के बाहर बताया। आचार्य भिक्षु के शब्दों में—

बीस भेदों रुके कर्म आवता, बारे भेदों कहे बांध्या कर्म रे  
त्योरी देवे जिनेश्वर आगन्या, ओहिज जिन भाण्यो धर्म रे  
कर्म रुके तिण करणी में आगन्या, कर्म कटे तिण करणी में जाण रे  
यां दोग्यो री करणी बिन नहीं आगन्या, ते सगली सावद्य पिछों रे।

—जिन आज्ञा री चौपी १/५-६

भला परिणाम में जिण आगन्या, माठा परिणाम आज्ञा बाहर रे  
भला परिणामां निर्जरा निपजे, माठा परिणामां पाप द्वार रे

—जिन आज्ञा री चौपी १/१४-१५

४. चार प्रकार के ध्यान में आतं ध्यान और रौद्र ध्यान अधर्म हैं तथा भगवान की आज्ञा में नहीं है और धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान, धर्म हैं तथा भगवान की आज्ञा में हैं। इसी प्रकार तेजो, पद्म, शुक्ल, लेश्या तीनों शुभ हैं तथा धर्म हैं, अतः भगवान की आज्ञा में हैं। पर कृष्ण, नील, कापोत तीनों अशुभ लेश्याएं अधर्म हैं, तथा जिनाज्ञा में नहीं हैं। आचार्य भिक्षु के शब्दों में—

धर्म ने शुक्ल दोनू ध्यान में, जिन आज्ञा दी बारंबार रे  
आरत, रुद्र, ध्यान माठा बेहूँ, योने ध्यावेते आज्ञा बाहर रे  
तेजू, पद्म, शुक्ल, लेश्या भली, त्यामें जिन आज्ञा ने निर्जरा धर्म रे  
तीन माठी लेश्या में आज्ञा नहीं, तिण सु बंधे पाप और कर्म रे

5. मन, वचन, काया से त्रिविध हिंसा न करने को दया कहा है और जहाँ संयम, चरित्र या धर्म की अभिवृद्धि होती है, ऐसे दान को मोक्ष का मार्ग बताया गया है। ऐसी दया और दान भगवान् की आज्ञा में है, पर हिंसा या असत् दान भगवान् की आज्ञा में नहीं है। इसी प्रकार आत्म-निर्मलता की दिशा में किया गया उपकार, मोक्ष मार्ग है पर भौतिक अभिसिद्धि या शारीरिक सुविधा जुटाने की दिशा में किया गया उपकार, संसारिक बंधनों की वृद्धि करने वाला होने से, अधर्म है तथा उसमें जिनाज्ञा नहीं है। आचार्य भिक्षु के शब्दों में—

‘मन, वचन, काया रा जोग तीनूई, सावद्य, निर्वद्य जाणों  
निरवद्य जोगों री जिन आगन्या, तिण रो करो पिछाणों ॥’  
‘त्रिविधे, त्रिविधे छः काय हणवी नहीं, आ दया कहीं जिनराय हो  
दान देणो सुपातर ने कहयो, तिण सुं भुगत सुंखे जाय हो ॥’  
‘उपकार करे कोई मोखरो, तिणरी जिन आगन्या दे आप  
उपकार करे संसार नो, तिहों रहे आप चुपचाप ॥’  
‘उपकार करे कोई मोख रो, तिण में निश्चेई धर्म साब्घ्यात  
उपकार करे संसार नो, तिण में धर्म नहीं तिलमात ॥’

६. संसार में तीन तत्त्व श्रेष्ठ हैं जो देव, गुरु और धर्म हैं। अर्हत भगवान्, जो राग-द्वेष से विरत हो चुके हैं, वे सच्चे देव हैं। सांसारिक मोह-माया ने दूर, तथा आंतरिक कषायों की ग्रन्थि को छिन्न-भिन्न करने वाले और वीतराग साधना के पथ पर सतत् चलने वाले निर्ग्रन्थ सच्चे गुरु हैं। वीतराग प्रभो ने, जो आत्म-

साधना का मार्ग बताया, उपदिष्ट किया वही सच्चा धर्म है। ऐसे देव, गुरु, धर्म की आराधना भगवान् की आज्ञा में है व अन्य देव, गुरु, धर्म की आराधना भगवान् की आज्ञा में नहीं है। आचार्य भिक्षु के शब्दों में—

देव अरिहंत ने, गुरु शुद्ध साधु छै, केवलि भाख्यो ते धर्म रे ।  
और धर्म में नहीं जिनाज्ञा, तिण सुं लागे पाप कर्म रे ॥

इसी प्रसंग में संसार में चार बातें मंगलमय, उत्तम एवं शरण-स्थल हैं, जिन्हें अरिहंत, सिद्ध, साधु एवं केवली प्रणीत धर्म के नाम से सम्बोधित किया गया है। इनके सिवाय अन्य कोई वस्तु, तत्त्व या बात श्रेय या उपादेय नहीं है। आचार्य भिक्षु के शब्दों में—

च्यार मंगल, च्यार उत्तम कह्या, च्यार शरणा कह्या जिनराय रे,  
ए सगला छै, जिन आज्ञा मझे, आग्या बिन अन्य आछी वस्तु न कोय रे ।

७. संयम, ब्रह्मचर्य, कल्पनीक आचार, ज्ञान, धर्म क्रिया, सम्यकदृष्टि, सत्बोध, सन्मार्ग, जिन आज्ञा में है। असंयम, कुशील, अकल्प्य, आचार, अज्ञान, पाप क्रिया, मिथ्यात्व, अबोध एवं उन्मार्ग में प्रवृत्त होने से कर्मों का बंधन होता है, आत्मा अशुद्ध हो जाती है तथा निर्वाण प्राप्ति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, अतः वह जिनाज्ञा में नहीं है। आचार्य भिक्षु के शब्दों में—

आठ छोड्या ते जिन उपदेश सुं, पाप कर्म तणो बंध जाण रे  
जिन आज्ञा सु आठ आदर्या, तिण सु पामें पद निर्वाण रे

आचार्य भिक्षु द्वारा प्रस्थापित उपरोक्त मान्यताएं इतनी सुस्पष्ट व सरल हैं कि उनमें संशय या असहमति करना किसी प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए न तो सम्भव है और न उचित ही है। आचार्यश्री भिक्षु ने उपरोक्त मान्यताओं की प्रस्थापना में अपनी निर्मल प्रज्ञा से नीर-क्षीर विवेक का परिचय दिया है और उन्होंने उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर सिद्धान्त विकृति और शिथिलाचार पर कड़ा प्रहार किया और जब अन्य लोगों के स्वार्थ हित-साधना में बाधा उत्पन्न हुई और उनके पाखण्ड का पर्दाफाश हो गया, तब आचार्य भिक्षु के विरुद्ध उन्होंने झूठे और अनर्गल आरोप लगाए व नानाविध कष्ट दिए। पर आघात-प्रत्याघात के भंवरों में रुके बिना आचार्य भिक्षु अविरल गति से आगे बढ़ते रहे तथा उनके द्वारा प्रेरित धर्म क्रान्ति सुस्थिर हो गई। आलोचना और आरोपों का निरसन करते आचार्य भिक्षु ने अनेक प्रकार से समाधान दिया, जिसमें उनकी उपरोक्त मान्यताओं को विस्तार मिला। ऐसे कुछ विषयों पर आचार्य भिक्षु के उद्गार बताना यहां ममोचीन होगा—

१. धर्म और अधर्म का मिश्रण नहीं होता, हिंसा से कभी धर्म नहीं हो सकता

एवं मात्र अनिवार्यता उपयोगिता तथा कुछ की हित साधना हेतु किए गए हिंसा-जन्य, कार्यों को धर्म की कोटि में नहीं लिया जा सकता और आत्म-साधना का हेतु धर्म लौकिक कार्यों से कभी सम्बद्ध नहीं किया जा सकता। शुद्ध धर्म या एकान्त-धर्म के सिवाय मिश्र धर्म नाम की कोई स्वतंत्र क्रिया नहीं हो सकती और न वह जिन भगवान् की आज्ञा में ही है, आचार्य भिक्षु के शब्दों में—

“हिंसा री करणी में दया नहीं छै, दया री करणी में हिंसा नांहीजी  
दया ने हिंसा री करणी छै न्यारी, ज्यूं तावड़ो ने छांहीजी  
“और वस्तु में भेल ह्वै पिण दया में नहीं हिंसा रो भेलो जी  
ज्यूं पूर्व ने पिछम रो मार्ग, किण विध खावे मेलो जी  
“पाप अठारे सेव्यों एकंत पाप, ते नहीं सेव्यों धर्म होयो रे  
पाप धर्म री करणी छै न्यारी, पिण मिश्र करणी नहीं कोयो रे  
“पाप कियों धर्म न निपजे, धर्म थी पाप न होय,  
एक करणी में दोय न निपजे, ए संका म आणो कोय ॥

२. विशुद्ध दया और दान केवल वे ही हैं, जिनसे संयम का पोषण या वृद्धि हो, सम्यक्त्व ज्ञान, दर्शन, चरित्र की आराधना हां और वीतराग प्रभो द्वारा बताए गए मार्ग पर सत्प्रवृत्ति हो। मोह-अणुकम्पावश किए गए कार्य या लौकिक कीर्ति हेतु दिए गए दान अथवा आत्म-शुद्धि के सिवाय अन्य उद्देश्य से की गई दया और दान को मोक्ष मार्ग की कोटि में मात्र दान या दया का नाम देकर समाहित नहीं किया जा सकता। आचार्य भिक्षु के शब्दों में—

“जितरा उपगार संसार तणां छै, जेजे करे ते मोह वस जाणो।  
साधु तो त्यां ने कदे न सरावे, संसारी जीव तिण रा करसी बखाणो ॥”  
“जीवों ने मारे, जीवो ने पांषे, ते तो मारग संसार नो जाणोजी।  
तिण मांहे साध धरम बतावे, ते पूरा छं मूढ अयाणो जी ॥”  
“सावद्य दान दियो, दया उथपे, सावद्य दया सुं उथपे अभयदान हो।  
ते सावद्य दया-दान संसार ना, त्योने ओलखे ते बुधवान हो ॥”

“गाय, भैंस, आक, थोर नो, ए च्याहं दूध।  
तिम अणुकम्पा जाण ज्यो, राखे मन में सुध ॥”  
“आक दूध पीद्यां थको, जुदा करे जीव काय।  
ज्यूं सावद्य अणुकंपा, कियों, पाप कर्म बंधाय।”  
“भोलेइ मत भूलजो, अणुकम्पा रे नाम।  
कीजो अतर पारखा, ज्यूं सीझे आत्म काय ॥”

आत्म-साधना हेतु किए गए सारे कार्य अपनी या अन्य किसी की हार्दिक भावना को विशुद्ध बनाकर ही किए जा सकते हैं और बलात् या प्रलोभनवश कराए गए कार्य कभी धर्म की कोटि में नहीं आते। धन या बल-प्रयोग से कभी धर्म या अहिंसा निष्पन्न नहीं होती। साधु जो छः काया के रक्षक होते हैं, वे ऐसी क्रिया करवाने या उसका अनुमोदन करने में प्रवृत्त नहीं हो सकते, जिसमें किसी प्रकार की हिंसा या परिग्रह को प्रश्रय मिले। आचार्य भिक्षु के शब्दों में—

“देव, गुरु, धर्म ने कारण, मूढ़ हूँ छः कायो रे,  
उल्टा पड़िया जिन मार्ग थी, कुगुरां दिया बहूकायो रे ॥”  
“वीर कन्हो आचारंग मांहे, जिण ओलखियो तंत सारो रे,  
समदृष्टि धर्म ने कारण न करे, पाप लिगारो रे ॥”  
“लोही खरड्यो जे पितांबर, लोही सुं केम घोवायो रे,  
तिम हिंसा में धर्म कियां थी, जीव उज्जलो किम थायो रे ॥”  
“संसार तणो उपकार करे छै, तिण रे निश्चेई संसार वधतो जाणो,  
मोष तणो उपकार करे छै, तिण रे निश्चेई नेड़ी दीसे निरवाणो ॥”  
“एकण रे देवे, चपेटी, एकण रो दे उपद्रव मेटी,  
ए तो राग द्वेष नो चालो, दशवैकालिक संभालो ॥”  
“जीव खाधों, खवायों, भलो जाणियों, तीनूई करणां पाप हो,  
आ सरद्धा प्ररूपे जो भगवंत री, ते पिण दीधी अगन्या उत्थाप हो ॥”

४. आत्मार्थी व्यक्ति को न असंयममय जीवन काम्य है, न असमाधिपूर्ण मृत्यु ही। ऐसा व्यक्ति अपने लिए तथा अन्य के लिए आत्म-शुद्धि की साधना या मोक्ष मार्ग में प्रवृत्ति की कामना करता है और यही कामना विशुद्ध धर्म है। आचार्य भिक्षु के शब्दों में—

“जीव जीवे ते दया नहीं, मरे तेहो हिंसा मत जाण,  
मारण वाला ने हिंसा कही, नहीं मारे हो ते तो दया गुग खाण ॥”  
“बांछे मरणो जीवणो, तो धर्म तणो नहीं अंस  
ए अणुकम्पा कीयां थको, वधे कर्म नो वंश ॥”  
“असंयती जीव रो जीवणो बंछे ते राग, मरणो बंछे ते द्वेष,  
तिरणो बंछे ते वीतराग देव नो मार्ग छै ॥”

आचार्य भिक्षु ने सिद्धांत विपर्ययता के साथ-साथ तात्कालिन शिथिलाचार पर भी कड़ा प्रहार किया। उसका सजीव चित्रण उन्होंने ‘सरद्धा री चौपाई’ व ‘साधो रे आचार री चौपाई’ आदि रचनाओं में स्थान-स्थान पर किया है। जिसकी किंचित झांकी इस प्रकार प्रस्तुत है—

“चेला चेली करण रा लोमिया रे, एकंत मत बांधण सुं काम रे,  
विकलों ने मूड मूड भेला करे रे, दिरावे गृहस्थ ने रोकड़ दाम रे ।”

“विवेक विकलने सांग पहरावे, भेलो करे आहार जी,  
सामग्री में जाय बंदावे, फिर फिर करे खुंवारजी ।”

“अजोग ने दीखयादीधी ते, भगवंते आज्ञा बार जी,  
नसीत रोवे दंड मूल न मान्यो ते विरल हुवा विकारजी ।”

×

×

×

बिण अंकुश जिम हाथी चाले, घोड़ो बिगर लगाम जी,  
एहवी चाल कुगुरु जाणो, कहिवा ने साधनाम जी ।”

“समण थोडा ने मूंड घणा, पांचवे अरिचैन, भेष लेई साधो तणी  
करसी कूडाफेन ।”

“विराम्य घट्यो ने भेष बधियो, हाथ्यो रो भार गधा लदियो,  
थक गया, बोझ, दियो रालो, एहवा भेषधारी पंचम कालो ॥”

“खेत खाद्यो लोकों तणो, पहर नाहर री खाल,  
ज्यू भेष लियो साधो तणो, पिण चने गधे री चाल ।”

“दबकरे उतावला चाले, त्रस थावर मार्या जायजी ।  
ईया समिति जोयां बिना, ते किम साधु थायजी ।”

“हृष्ट पुष्ट ने मांस बधारे, बले करे विगे रा पूरजी,  
माठा परिणामां नारी निरखे, ते साधुपणा थी दूरजी ।”

“अचित्त वस्तु ने मोल लिरावे, तो सुमत गुप्त हुवे खंडजी,  
महाव्रत पांचोई भागा, चौमासी नो दंडजी ।”

“पुस्तक, पात्र, उपाक्षयादिक, लिबरावे, ले ले नामजी,  
आछा भूंडा कही मोल बतावे, ते करे गृहस्थ रा कामजी ।”

“आघाकर्मी थानक में रहे, तो पाडे चारित में भेदजी,  
नशीत में दशमें उद्देशे, च्यार महीनों रो छेदजी ।”

“गृहस्थी साथे कहे संदेशो भेलो हुवे संभोगजी,  
तिण ने साधु किमसरधीजे, लागे जोग ने रोगजां ।”

“पर निन्दा में राता माता, चित्त में नहीं, संतोषजी,  
वीर कह्यो दसमे अंगमां, तिण वचन में तेरे दोषजी ।”

“आवण जावण, बेसण, उठणरी, बले जायगा देवे बतायजी,  
इत्यादिक साधु कहे, गृहस्थ ने, तो दोनू बराबर थायजी ।”

“साधुओं ने डुबोया श्रावके, श्रावकों ने डुबोया साध,  
दोनू डुवा बापड़ा जिनवर वचन विराध ।”

आदि आदि ।

आचार्य भिक्षु ने शुद्ध संयम के निर्वाह और सुरक्षा हेतु धर्म संघ की स्थापना की, मर्यादा पत्रों का निर्माण किया तथा उसमें उपरोक्त शिथिलाचारी वृत्तियों का, मूलोच्छेद किया। एक आचार्य की आज्ञा में रहने और सारी शिष्य-शिष्याएं एक आचार्य के होने का विधान किया, जिसमें अहंकार और ममकार की कलुष भावना स्वतः समाप्त हो गई तथा शिष्य प्रथा के दोषों का शमन हो गया। उन्होंने स्वयं में साधुत्व के प्रति आस्था, संघ के साधु-साध्वियों तथा आचार्य में साधुत्व की आस्था रखने के संकल्प के साथ संघ को एकरूपता प्रदान की। स्वयं के आत्मानुशासन पर आधारित संघ निर्माण से साधु समुदाय की साधना को अपूर्व बल मिला और उसी का परिणाम है कि तेरापंथ धर्मसंघ विकस्वर है। स्वयं आचार्य भिक्षु से जब पूछा गया कि 'तेरापंथ कब तक चलेगा?' तो उन्होंने दो-टुक उत्तर देते हुए कहा, जब तक उसका अनुगमन करने वाले साधु-साध्वी श्रद्धा और आचार में सुदृढ़ रहेंगे, वस्त्र, पात्र, उपकरण व शिष्यों पर ममत्व भाव नहीं रखेंगे, स्थानक बांधकर नहीं बैठेंगे, तब तक यह मार्ग चलेगा। आचार्य भिक्षु का मूल मंत्र था, 'आत्म-सिद्धि' और साधन था 'वीतरागता की साधना'। इसको उन्होंने अनेक प्रकार से स्थान-स्थान पर सरल शब्दों में व्यक्त किया, जो आज भी जन-जन की स्मृति में सजीव है, जैसे—

“कहो साधु किसका सगा, तड़के तोड़े नेह  
आचारी सुं हिले मिले, अणाचारी सुं छेह ॥”  
“जिन मार्ग में देखू लो, गुण लारे पूजा  
गुण बिना पूजे तिके, मार्गं छे दूजा ॥”  
“बुद्धि वाहि सराहिये, जो सेवे जिन धर्म  
और बुद्धि किण काम री, पड़िया बांधे कर्म ॥”

आदि-आदि ।

आचार्य भिक्षु ने आत्म-साक्षात्कार तथा वीतरागता के मार्ग की सतत खोज में, जिस अखण्ड एवं समग्र सत्य को अनुभव किया, उसको कोई भी व्यक्ति इस प्रकार की साधना से आत्मसात कर सकता है, पर जो व्यक्ति आत्मा से परे की वस्तुओं की अभिसिद्धि को अपना ध्येय बना लेता है तथा भौतिक वस्तुओं पर ममत्व भाव रखता है, उसके लिए आचार्य भिक्षु द्वारा प्रस्थापित शाश्वत मूल्यों को समझना या उस पर चलना दुरूह हो जाता है। आज के युग में जब वीतराग प्रभु के अनुयायी बनने का दम भरने वाला, अधिकांश साधु समुदाय, सुख-सुविधाभोगी बनता जा रहा है, जिसे अपनी यशकामना और महत्त्वाकांक्षा के कारण, अनासक्त और असंग जीवन जीने में कठिनाई महसूस हो रही है, और जो लोकेषणा के भंवर-जाल में फंसकर नाम, पद, यश, सुविधा के लिए अहंनिश प्रयत्नशील है, वह वास्तव



में वीतराग प्रभो द्वारा प्रणीत मार्ग से बहुत दूर है। सांसारिक कार्यों के भंवर-जाल में वह प्रमादवश स्वयं फंसता जा रहा है। ऐसा लगता है कि वीतरागता के मार्ग से अन्यत्र कहीं भटक गया है। ऐसे में यह आवश्यक हो गया है कि वह आचार्य भिक्षु द्वारा प्रतिपादित तथा प्रतिष्ठापित मान्यताओं का पुनरावलोकन करे, अपने संन्यासी जीवन की शीलचर्या की संपूर्ण सुरक्षा करे। आत्म-साधना के पथ पर निश्चल भाव से आगे बढ़ता हुआ मोक्ष-प्राप्ति या कर्म-बंधन-मुक्ति का गंतव्य प्राप्त करे। आचार्यश्री भिक्षु की आज्ञा में चलने का संकल्प लेने वाले साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, समाज का तो यह विशेष दायित्व है कि उनके द्वारा निर्धारित धर्म और अधर्म की भेद-रेखाओं को कभी विस्मरण नहीं करे। सजगता से वीतराग प्रणीत धर्म की आराधना करता हुआ अपना और जन-जन का कल्याण करे, इसी में आचार्यश्री भिक्षु की मान्यताओं तथा मर्यादाओं की प्रासंगिकता और सार्थकता है, जो सदा सर्वदा रहेगी। जब-जब क्रान्ति की लौ क्षीण पड़ेगी, तब-तब उनका स्मरण क्रान्ति की लौ को नयी आभा, प्रकाश और तेजस्विता देता रहेगा। आचार्य भिक्षु के सशक्त शाश्वत स्वर की गूंज समूच्छित मानवता को जगाती रहेगी।

# परिशिष्ट

१. तेरापंथ का विधान (मर्यादा पत्र)  
संवत् १८५६ माह सुदि ७
२. गणविशुद्धिकरण हाजरी (हाजरी)—वर्तमान हिंदी भाषा में
३. लेख पत्र  
(अ) प्राचीन  
(ब) अर्वाचीन
४. आचार्यों का संक्षिप्त विवरण (झांकी)
५. साध्वी प्रमुखाएं
६. दीक्षा सिंहावलोकन
७. आचार्यों के चातुर्मास  
(अ) प्रथम शताब्दी  
(ब) द्वितीय शताब्दी
८. आचार्यों के मर्यादा महोत्सव
९. तेरापंथ के ऐतिहासिक स्थल

## तेरापंथ का विधान

आचार्य भिक्षु द्वारा लिखित अन्तिम व निर्णायक मर्यादा पत्र

१. सर्व साधु-साध्वी, भारमलजी री, आगन्या मांहे चालणो ।
२. शेष काल विहार, चौमासो करणो ते, भारमलजी री आगन्या सूं करणो ।  
आगन्या लोपने बिना आगन्या कठेई रहणो नहीं ।

३. दीक्षा देणी ते पिण भारमलजी रे नामे देणी । दिख्या देने आण सूपणो ।

### उद्देश्य

चेला री कपड़ा री साता कारियां खेतरो री इत्यादिक अनेक बोले री ममता करने अनंता जीव चारित गमाय ने नरक निगोद मांहे गया छै । वले भैषधार्यो रा एहवा चेन देख्या छै तिण सूं सिखादिक री ममता मिटावण रो ने चारित चोखो पालण रो उपया कीधो छै । विनय मूल धर्म ने न्याय मारग चालण रो उपाय कीधो छै । सिख शाखा रो संतोष कराय ने सुखे संयम पालण रो उपाय कीधो छै ।

### समर्थन

साधु-साधिवयों पिण इम हिज कहियो—

१. भारीमालजी री आगन्या मांहे चालणो ।
२. सिख करणा ते सर्व भारीमालजी रे करणा । औरो रे करण रा त्याग छै जीव जीव लगै ।
३. भारमलजी पिण चेलो करे तेपिण बुधवंत साध कहे ओ साधपणे लायक छै, बीजा साधो ने परतीत आवे तेहवो करणो बीजा साधो ने परतीत नहीं आवे तेहवो नहीं करण । कीधो पिछै पिण कोई अजोग हुवे तो बुधवंत साधारै कह्यो सू छोड़ देणो, किण ही घेरवी कह्यो सू छोड़णो नहीं ।
४. नव पदार्थ ओलखाय ने दीक्षा देणी ।
५. आचार पाला छां तिण रीते चोखो पालणो । इण आचार मांहे खामी जाणो तो अबारू कही देणो पछै मांहे मांही ताण करनी नहीं । किण ही में दोष भ्यास जाए तो बुधवंत साध री परतीत कर लेणी, पिण खांच करणी नहीं ।
६. भारमलजी री इच्छा आवे अथवा जद गुरु भाई अथवा चेलो ने टोला रो भार सूपे जद सर्व साधु-साध्वी उणरी आगन्या मांहे चालणो । एहवी रीत परम्परा बांधी छै । सर्व साधु-एकण री आगन्या माहे चालणो । एहवी रीत बांधी छै, साधु साधिवयां रो मारग चले जठा ताई ।
७. कदा कोई अशुभ करम रे जोगे टोला मांय फारा तोरो करने एक, दो, तीन आदि नीकले, धणी धुताई करे, बुगल ध्यानी हेवे । त्यांने साधु सरधणो नहीं, च्यार तीर्थ मांहे गिणणो नहीं, त्याने चतुर्विध तीर्थ रा निदक जाणवा, तेहवाने बांदे वे पिण जिन आज्ञा वारे छै ।
८. कदा कोई फेर दीक्षा लेवे और साधो ने असाध सरधायमानें, तो पिण उणने साधु सरधणो नहीं । उण ने छड़वियां तो वो आल दे काढै, तिण री एक बात माणणी नहीं । उण तो अनंत संसार आरै कीधो दीसै छै ।

६. कदा कर्म धक्को दीघो टोला सूं टलै तो उण रे टाला रा साध साध्वियां रा अंश मात्र हुंता अणहुंता अवरण बाद बोलवारा अनेत सिद्धांरी ने पांचू पदा री आण छै । पांचू पदा री साख सू पचखाण छै ।
१०. किण ही साधु साध्वियांरी शंका परे ज्यूं बोलण रा पचखाण छै । साधारण नीति-कदा उविट्ठल होय सूंसो भोगे तो ह्मकुर्मी न्यायवादी तो न माने उण सरीखो विट्ठल माने तो लेखा में नहीं ।
११. हिवे किण ही ने छोडणो मेलणो, किण ही चर्चा बोल रो काम परे तो बुधमान साध विचार ने करणो । बले सरधा रो बोल पिण बुधवंत हुवे ते विचार ने संचे बेसाणणो । कोई बोल न बेसे तो ताण करणी नहीं । केवल्या ने भोलावणो पिण खंच अंश मात्र करणी नहीं ।
१२. किण ने किम धक्को देवे तै टोलास्यूं न्यारो परै अथवा आप ही टोला सूं न्यारो हुवै तो इण सरधा रा भाई बाई हुवै तिहां रहणो नहीं, एक भाई बाई हुवै तिहो रहणो नहीं । बाटे बहतां एक रात कारण पड्या रहे तो पांचु विगे ने सूखड़ी खावा रा त्याग छै । अनेता सिद्धां री साख करने छै ।
१३. बले टोला मांही उपकरण करे ते, पाना पत्र लिखे ते, टोला मोही थकां पडत पाना पात्रादिक सर्व वस्तु जांचे तो साथ ले जावण रा त्याग छै । एक बोदो चोल पट्टो, मुंह पति, एक बोदी पछेवड़ी खंडिया उपरान्त बोदो रजोहरण उपरान्त साथ ले जावेण नहीं उपकरण सर्व टोला रे ने श्राप साधां रे छै और अंश मात्र साथ ले जावण रा पचखाण छै, अनेता सिद्धां री साख करने छै । बले कोई याद आवे तो लिखणो तिण रो पिण नो कहण रा त्याग छै । सर्व कबूल छै ।

### चेतावनी

सर्व साधां रा परिणाम जोय ने रजामन्द कराय कर यो करने सूं जुदो कहवाय ने मरजादा बांधी छै । जिण रा परिणाम चोखा हुवे ते आ मर्याद ने सूंस आरे होईज्यो । कोई शरमा-शरमी रो काम छै नहीं । मुंडे और ने मन में और इम तो साधु ने करणो छै नहीं, इण लिखत में खूजणो काढणो नहीं । पाछे और रा और बोलणो नहीं । अनन्ता सिद्धांरी साख करने सारां रे पचखाण है । पचखाण भांगण रा अनन्ता सिद्धांरी साख सू पचखाण छै । किण ही टोला मांहि अनेरा किण ही टोला मांहि जावा रा पचखाण छै । मर खापणो पिण सूंस न भांगणो । ओ एहवो लिखत लिखतु ऋष भीखण रो छै । संवत् १९५६ रा माघ सुदि ७ शनिवार ।

## प्रतिदिन बोलने, हस्ताक्षर करने व पक्ष में एक बार जनता के समक्ष बोला जाने वाला लेख पत्र

### (अ) प्राचीन लेख-पत्र

मत्थेण वंदामि हाथ जोड़ आप सूं अरज करूं महाराजाधिराज श्री भिक्षु भारीमाल ऋषिराय जय जश मघवा, माणक डालचन्द, कालूराम, तुलसीराम, गणिराजजी बांधी मर्यादा सर्व कबूल छै। खोली में श्वास रेह जठा ताई लोपण रा त्याग छै। आप महादयाल छो, गोवाल छो, परमपूज्य भगवान छो। सूत्र में आचार्य ना छत्तीस गुण कह्या त्यां गुणा कर सहित छो। ५ महाव्रत ना पालण-हार, ४ कषाय ना टालनहार, ५ आचार ना पालणहार, ५ समिति ३ गुप्ति ५ इन्द्रियां जीतनहार ९ बाड़ सहित ब्रह्मचर्य ना पालणहार एहवतरण तारण उत्तम पुरुष आपने जाणू छूं। आप री आज्ञा में चाले साधु-साध्वी त्यांने १४ हजार ३६ हजार आगे वीर थको हुतां त्यां सरीखा सरधु छूं। चोखो साधुपणो सरधु छूं। म्हाने पिण चोखो सरधु छूं। आपरी आज्ञा लोयी टालीकड़ हुवे तिण ने अढाई द्वीप रा चोर विचे मोटो चोर समझूं छूं। आपरा अवर्ण वाद बोलण हारा ने मोटो पापीष्ठ महा-मोहनीय कर्म बांधण हारो, भृष्ट भागल, अन्यायी, अनन्ता जन्म-भरण नो बंधाण हारो, नरक निगोद नो जाण हारो, तिणरी बात माने तिण ने चोर, झूठा बोलो जाणू छूं। इसो काम करण रा म्यारे तो जाव जीव रा त्याग छै। औरो ने साथे ले जावण रा त्याग छै। पोथी पाना साथ ले जावण रा त्याग छै। टालोकड़ भेलो आहार पाणो करण रा त्याग छै। सरधारा क्षेत्र में एक रात्रि उपरान्त रहिवा रा त्याग छै। टोला मांहिने बारे अंश मात्र अवर्णवाद बोलण रा त्याग छै। अनन्त सिद्धां री आण छै। पांच पदा री साख सूं जाव जीव पचखण छै। मैं घणे तीखे मन हर्ष राजीपा सूं लिख्यो। शर्माशर्मी सूं लिख्यो नहीं।

लिखतु ऋष

संवत्

(उपरोक्त लेखपत्र को संवत् २००७ भिवानी मर्यादा महोत्सव के अवसर पर संशोधित किया गया तथा प्रतिदिन प्रातःकाल सामूहिक उच्चारण करना अनिवार्य किया गया।)

### (ब) नवीन लेख-पत्र

मैं सविनय वद्धांजलि प्रार्थना करता हूं कि श्री भिक्षु भारीमाल आदि पूर्वज आचार्य तथा वर्तमान आचार्यश्री तुलसी-गणि द्वारा रचित सर्व मर्यादाएं मुझे मान्य हैं। आजीवन उन्हें लोपने का त्याग है। गुरुदेव ! आप संघ के प्राण हैं। श्रमण परम्परा के अधिनेता हैं। आप पर मुझे पूर्ण श्रद्धा है। आपकी आज्ञा में चलने

वाले साधु-साध्वियों को भगवान् महावीर के साधु-साध्वियों के समान शुद्ध साधु मानता हूँ। अपने-आपको भी शुद्ध साधु मानता हूँ। मैं आपकी आज्ञा लोपने वालों को संयम मार्ग से प्रतिकूल मानता हूँ।

- मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूंगा।
- प्रत्येक कार्य आपके आदेश पूर्वक करूंगा।
- शिष्य नहीं करूंगा, दलबंदी नहीं करूंगा।
- आपके कार्य में हस्तक्षेप नहीं करूंगा।
- आपके तथा साधु-साध्वियों के अंश मात्र भी अवर्णवाद नहीं बोलूंगा।
- किसी साधु-साध्वी में दोष जान पड़े तो, स्वयं उसे आचार्य को जताऊंगा।
- सिद्धान्त मर्यादा या परम्परा के किसी भी विवादास्पद विषय में आप द्वारा किए गए निर्णय को श्रद्धापूर्वक स्वीकार करूंगा।
- गण से बहिष्कृत या बहिर्भूत व्यक्ति से संस्तव नहीं रखूंगा।
- गण के पुस्तक पत्रों आदि पर अपना अधिकार नहीं रखूंगा।
- पद के लिए उम्मीदवार नहीं बनूंगा।
- आपके उत्तराधिकारी की आज्ञा सहर्ष शिरोधार्य करूंगा।
- पांच पदों की साक्षी से मैं इन सबों के उल्लंघन का प्रत्याख्यान करता हूँ। मैंने यह लेख-पत्र आत्म-श्रद्धा व विवेकपूर्वक स्वीकार किया है। संकोच आवेश या प्रमादवश नहीं, स्वीकृत मुनि।

संबत

## गण विभुद्धिकरण हाजरी

प्रतिदिन स्वयं व प्रति सप्ताह या पक्ष में श्रावक श्राविकाओं की परिषद् में जुहराए जाने वाले संकल्पों का विधान पत्र जो श्रीमद् जयाचार्य ने संरचित किया तथा जिसे आचार्यश्री तुलसी ने सं २००७ में हिन्दी भाषा में शोधित किया।

सर्व साधु-साध्वियां पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति की अखण्ड आराधना करें। ईर्या, भाषा, एषणा में विशेष सावधान रहें। चलते समय बात न करें। सावद्य भाषा न बोलें। आहारपानी पूरी जांच करके लें। शुद्ध आहार भी दाता का अभिप्राय देखकर हठ-मनुहार से लें। वस्त्र-पात्र आदि लेते और रखते समय तथा 'पूजने' व 'परठने' में पूर्ण सावधानी बरतें। प्रतिलेखन और प्रतिक्रमण करते हुए बात न करें।

भिक्षु स्वामी ने सूत्र सिद्धान्त देखकर सम्यक् श्रद्धा और आचार की प्ररूपणा की। त्याग धर्म, भोग अधर्म, व्रत धर्म, अव्रत अधर्म, आज्ञा धर्म, अनाज्ञा अधर्म, असंयति के जीने की वांछा करना राग, मरने की वांछा करना द्वेष और संसार समुद्र से उसके तरने की वांछा करना वीतराग देव का धर्म है।

भिक्षु स्वामी ने न्याय, संविभाग और समभाव की वृद्धि के लिए तथा पारस्परिक प्रेय, कलह-निवारण और संघ की सुव्यवस्था के लिए अनेक प्रकार की मर्यादाएं की। उन्होंने लिखा—(१) 'सर्वे साधु साध्वी एक आचार्य की आज्ञा में रहें, (२) विद्वार चातुर्मास आचार्य की आज्ञा से करें (३) अपना-अपना शिष्य (शिष्याएं) न बनाएं (४) आचार्य भी योग्य व्यक्ति को दीक्षित करें। दीक्षित करने पर भी कोई अयोग्य निकले तो उसे गण से अलग कर दें। (५) आचार्य अपने गुरु भाई या शिष्य को उत्तराधिकारी चुनें, तो उसे सब साधु-साध्वियां सहर्ष स्वीकार करें।

गण की एकता के लिए यह आवश्यक है कि उसके साधु-साध्वियों में सिद्धान्त या प्ररूपणा का कोई मतभेद न हो, इसलिए भिक्षु स्वामी ने कहा है, 'कोई सस्था, आचार, कल्प या सूत्र का कोई विषय अपनी समझ में न आए अथवा कोई नया प्रश्न उठे, वह आचार्य बहुश्रुत से चर्चा जाए, किन्तु दूसरों से चर्चा कर उन्हें शंका शील न बनाया जाए। आचार्य या बहुश्रुत साधु जो उत्तर दे, वह अपने मन में जंचे तो मान ले, न जंचे तो उसे केवलीगम्य कर दे, किन्तु गण में भेद न डाले, परस्पर दलबंदी न करे।'

गण की अखण्डता के लिए यह आवश्यक है कि कोई साधु-साध्वी आपस में दलबंदी न करें, इसलिए भिक्षु स्वामी ने पैतालीस के लिखत में कहा है, 'जो गण में रहते हुए साधु-साध्वियों को फटाकर दलबंदी करता है, वह विश्वासघाती व बहुलकर्मी है।' स्वामीजी ने स्थान-स्थान पर दलबन्दी पर प्रहार किया है। पचास के लिखत में उन्होंने लिखा है, 'कोई साधु साध्वीगण भेद न डाले और दलबन्दी न करे।' स्वामीजी ने चन्द्रभाणजी और तिलोकचंद्रजी को इसलिए गण से अलग किया कि वे जो साधु आचार्य के सम्मुख थे, उन्हें विमुख करते थे। छिपे-छिपे गण के साधु-साध्वियों को फोड़-फोड़कर अपना बना रहे थे, दलबन्दी कर रहे थे। हमारा यह प्रसिद्ध सूत्र है 'जिल्लो ते संयम ने टिल्लो।' गण में भेद डालने वाले के लिए भगवान ने दसवें प्रायश्चित्त का विधान किया है। तथा भिक्षु स्वामी ने कहा, 'जो गण के साधु-साध्वियों में साधुपन सरधे, अपने आपमें साधुपन सरधे, वह गण में रहे। छलकपटपूर्वक गण में न रहे।' पचास के लिखत में उन्होंने कहा, 'जिसका मन साक्षी दे, भलीभांति साधुपन पलता, जो गण में तथा आपमें साधुपन माने तो गण में रहे, किन्तु वंचनापूर्वक गण में रहने का त्याग है।'

गण में जो साधु-साध्वियां हों, उनमें परस्पर सौहार्द रहे। कोई परस्पर कलह

न करे तथा उपशान्त कलह की उदीरणा न करे इसलिए भिक्षु स्वामी ने कहा, गण के किसी साधु-साध्वी के प्रति अनास्था उपजे, शंका उपजे वैसी बात करने का त्याग है, किसी में दोष देखे तो तत्काल उसे जता दे तथा आचार्य को जता दे किन्तु उसका प्रचार न करे। दोषों को चुन-चुनकर इकट्ठा न करे। जो जान पड़े उसे अवसर देखकर तुरंत जता दे। वह प्रायश्चित्त का भागी है, जो बहुत समय बाद दोष बताए।' विनीत-अवनीत की चौपाई में उन्होंने कहा है—

“दोष देखे किणही साध में, तो कह देणो तिण ने एकन्तो रे।

जो माने नहीं तो कहणो गुरु कने, ते श्रावक छै बुद्धिवन्तो रे ॥

सुविनीत श्रावक एहवा ॥१॥

प्रायश्चित्त दिराय ने शुद्ध करे, पिण न कहे अवरं पासो रे।

ते श्रावक गिरवा गंभीर छै, श्री वीर बखाण्या तासो रे ॥

सुविनीत श्रावक एहवा ॥२॥

दोष रा धणी ने तो कहे नहीं, उणरा गुरुने पिण न कहे जायो रे।

और लोकों आगे बकतो फिरे, तिणरी प्रतीत किण विध आयो रे ॥

अविनीत श्रावक एहवा ॥३॥

तथा किसी साधु-साध्वी को जाति आदि को लेकर ओछी जवान न कहे। आपस में मन मुटाव हो वैसा शब्द न बोले, एक दूसरे में संदेह उत्पन्न न करे। तथा गण और गणी की गुण रूप वार्ता करे। कोई गण तथा गणी की उतरती बात करे, उसे रोक दे और वह जो कहे, उसे आचार्य को जता दे। कोई उतरती बात करता है और उसे कोई सुनता है, वे दोनों अविनीत हैं। विनीत वह होता है जो आज्ञा को सर्वोपरि माने।

जिन शासन में आज्ञा बड़ी, आतो बांधी रे भगवंतो पाल।

सहु सज्जन असज्जन भेला रहे, छांदो हंधे रे प्रभु वचन संभाल ॥

बुद्धिवंता एकल संगत न कीजिए।

छांदो हंध्यो पिण संजम निपजे, तो कुण चाले रे पर की आज्ञामाय।

सहु आप मते हुए एकला, खिण भेला रे खिण बिखर जाय ॥

भगवान ने कहा है 'चइज्ज देहे न हु धम्मसासण' मुनि शरीर छोड़ दे, किन्तु धर्म शासन को न छोड़े। जयाचार्य ने उसे पुष्ट करते लिखा है—

'नंदन वन भिक्षु गण में बसोरी, हे जी प्राण जाय तो पग में खिसोरी ॥१॥

गण मोहे ज्ञान ध्यान शोभेरी, हे जी दीपक मंदिर मांहे जिसोरी ॥२॥

टालोकर नों भणवो न शोभेरी, हे जी नाक बिना ओतो मुखड़ो जिसोरी ॥३॥



भाग्य बले भिक्षु गण पायोरी, हे जी रतन चिन्तामणि पिण न इसोरी ॥४॥  
गणपति कोप्यो ही गाढ़ा रहोरी, हे जी समचित्त शासन मांहे लसोरी ॥५॥

किन्तु कोई साधु-साधवी क्रोधादि बश आज्ञा और अनुशासन का पालन नहीं कर सकने पर या अन्य किसी कारण से गण से अलग हो जाए अथवा किसी को अलग किया जाए तो किसी साधु साधवी का मन भंगकर अपने साथ ले जाने का त्याग है। कोई जाना चाहे तब भी उसे साथ ले जाने का त्याग है। गण के साधु साधवियों की उतरती बात करने का त्याग है। अंशमात्र भी अवर्णवाद बोलने का त्याग है और छिपे-छिपे लोगों को शंकाशील बना गण के प्रति अनास्था उपजाने का त्याग है, तथा ब्रह्म पात्र पुस्तक पन्ने आदि गण के होते हैं, इसीलिए उन्हें साथ ले जाने का त्याग है।

गण से बहिष्कृत या बहिर्भूत व्यक्तियों के प्रति हमारा क्या दृष्टिकोण होना चाहिये, उसे स्पष्ट करते भिक्षु स्वामी ने लिखा है, 'गण से बहिष्कृत या बहिर्भूत व्यक्ति को साधु न सरधा जाए, चार तीर्थ में न गिना जाए, साधु मान बंदना न की जाए। श्रावक-श्राविका भी इन मर्यादाओं के पालन में सजग रहें।

भिक्षु स्वामी ने गण की सुव्यवस्था के लिए मर्यादा की ओर उन्हें दीर्घ दृष्टि से देखा कि भविष्य में वर्तमान मर्यादाओं में परिवर्तन या संशोधन करना आवश्यक हो सकता है, इसीलिए उन्होंने लिखा कि आगे जब कभी भी आचार्य आवश्यक समझें तो वे इन मर्यादाओं में परिवर्तन या संशोधन करें और आवश्यक समझें तो कोई नयी मर्यादा करें। पूर्व मर्यादाओं में परिवर्तन या संशोधन हो अथवा नयी मर्यादाओं का निर्माण हो, उसे सब साधु-साधवियों स्वीकार करें।

सफल साधु बही होता है, जो साधना में लीन रहे। निर्लेप रहने के लिए यह आवश्यक है कि साधु-साधवियों गृहस्थों के संग परिचय में न फंसे। जयाचार्य ने लिखा है—

थे तो चतुरसीखो सुध चरचा रे, थे तो पर हर देवो परचा ।  
एतो परचा आछा नहीं, तू तो समझ राख हियामांहि ॥१॥  
परचो राखे ते नर भोला, तिण रो जीव करे डालाडोला ।  
परचा स्युं ओलंभो पावे, तिण री क्यां ही शोभा नहीं थावे ॥२॥  
परचा वालो जो क्षेत्र भोलावे, तो मन रलियात थावे ।  
परचा वाले क्षेत्र नहीं मेलें, तो दाव कपट बहुखेले ॥३॥  
पछे आमण दुमण थको जावे, पिण मन में तो बहु दुख पावे ।  
रात दिवस जाए हिंजरतो, परचा वाला रो ध्यान ज धरतो ॥४॥  
एहवा परचा रा फल जाणी, तिण ने परहरे उत्तम प्राणी ।  
जिणरे परचे रो पड़ियो स्वभावो, छूटण रो कठिण उपावो ॥५॥

जबर समझ हुए हिए मांहियो, तो उ तुरंत देवे छिटकायो ।  
 तिणरे प्रीत औरों सुंपूरी, गणपति स्यूं प्रती अधूरी ॥६॥  
 परचा वाला साहमा नहीं जोंवे, बले नयण बयण नहीं मोवे ।  
 परचो छूटण रो राह उपायो जय गणपति एम जणायो ॥७॥  
 परचा वाला की भावना भावे, जाणे दरशण करवा कद आवे  
 आयो देखहियो अतिहरषे, जाण जंवरी नग ने परखे ॥८॥  
 उगणीसे वर्ष उगणीसे, म्गसर वदि सातम दिवसे ।  
 प्रथम मर्यादा दिन सुखदायो, परचा ने जय जश ओलखायो ॥९॥

निद्रा, हास्य, विकथा, ये साधना के विघ्न हैं, इसलिए नींद को बहुमान न दें  
 हास्य और विकथा का वर्जन करें तथा ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा आत्मा को  
 भावित करें ।

निदं च न बहुमन्नेज्जा, सप्प हासं विवज्जए ।  
 मिहो कहाहिं नरये, सज्झायम्मि रओ सया ॥  
 सज्झाय-सज्झाणरयस्स ताइणो, अपावभावस्स तवे रयस्स ।  
 विसुज्झईं जंसि मलं पुरेकडं, समीरियं हप्पमलं व जोइणो ॥

महाव्रतों, समिति-गुप्तियों तथा गण की छोटी-बड़ी सभी मर्यादाओं का सम्यग्  
 पालन करनेवाला मुनि आचार्य की आराधना करता है, श्रमणों की आराधना  
 करता है और सब लोगों की दृष्टि में वह पूज्य होता है । तथा जो उनका सम्यग्  
 पालन नहीं करता व न आचार्य की आराधना करता है और लोगों की दृष्टि में  
 पूज्य नहीं होता है ।

आयरिए आराहेईं समणे यावि तारिसो ।  
 गिहत्था विणंश्यं पू, जेण जाणंति तारिसं ॥  
 आयरिए नाराहेईं, समणे यावितारिसो ।  
 गिहत्था विणं गरिहति, जेण जाणंति तारिसं ॥

इसीलिए विनीत साधु-साध्वियों, आज्ञा, मर्यादा, आचार्य, गण और धर्म की  
 सम्यक् आराधना करें और धर्म शासन की गौरव वृद्धि करें ।

आणं सम्मं आराहइस्सामि । आणं सरणं गच्छामि ।  
 मेरं सम्मं पालयिस्सामि ॥ मेरं सरणं गच्छामि ॥  
 आयरियं सम्मं आराहइस्सामि । आयरियं सरणं गच्छामि ।  
 गणं सम्मं अणुगमिस्सामि । गणं सरणं गच्छामि ।  
 धम्मं न कयावि जहिस्सामि ॥ धम्मं सरणं गच्छामि ॥

—तेरापंथ मर्यादा और व्यवस्था । (श्रीमद् जयाचार्य, पृ० ४७५-७६)

(इस वाचना के बाद प्रत्येक साधु-साध्वी भरी परिषद् में लेख पत्र लेते हैं।)

## लेख पत्र

मैं सबिनय श्रद्धांजलि प्रार्थना करता हूँ कि श्री भिक्षु भारीमाल आदि पूर्वज आचार्य व वर्तमान आचार्यश्री तुलसी गणि द्वारा विरचित सर्व मर्यादाएं भुझे मान्य हैं। आजीवन उन्हें लोपने का त्याग है। आप संघ के प्राण हैं। श्रमण परम्परा के अधिनेता हैं। आप पर भुझे पूर्ण श्रद्धा है। आपकी आज्ञा में चलने वाले साधु-साधवियों को भगवान महावीर के साधु-साधवियों के समान शुद्ध साधु मानता हूँ। अपने आपको भी शुद्ध साधु मानता हूँ। मैं आपकी आज्ञा लोपने वालों को संयम मार्ग से प्रतिकूल मानता हूँ।

- मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूंगा।
- प्रत्येक कार्य आपके आदेश पूर्वक करूंगा।
- शिष्य नहीं करूंगा, दलबन्दी नहीं करूंगा।
- आपके कार्य में हस्तक्षेप नहीं करूंगा।
- आपके तथा साधु-साधवियों के अंश मात्र भी अवर्णवाद नहीं बोलूंगा।
- किसी साधु साध्वी में दोष जान पड़े तो स्वयं उसे या आचार्य को जताऊंगा।
- सिद्धान्त, मर्यादा या परंपरा के किसी भी विवादास्पद विषय में आप द्वारा दिए गए निर्णय को श्रद्धापूर्वक स्वीकार करूंगा।
- गण से बहिष्कृत या बहिष्भूत व्यक्ति से संस्तव नहीं रखूंगा।
- गण के पुस्तक-पन्नों आदि पर अपना अधिकार नहीं रखूंगा।
- पद के लिए उम्मीदवार नहीं बनूंगा।
- आपके उत्तराधिकारी की आज्ञा सहर्ष शिरोधार्य करूंगा।

पंच पदों की साक्षी से मैं इन सबके उल्लंघन का प्रत्याख्यान करता हूँ। मैंने यह लेखपत्र आत्म-श्रद्धा और विवेक पूर्वक स्वीकार किया है। संकोच, आवेश या श्रमादवश नहीं।

स्वीकर्त्ता मुनि । साध्वी.....  
संवत्.....माह.....मिती

×

×

×

उपरोक्त लेखपत्रों में उल्लेखित मर्यादाओं की परिपालना जब तक तेरापंथ के साधु-साध्वीगण करेंगे तथा संघ सजग रहकर अप्रमत्तता की ओर बढ़ेगा, तब तक तेरापंथ धर्मसंघ अजेय बना रहेगा और मानवता का पथ प्रशस्त कर जनता को अध्यात्म का आलोक देता रहेगा ।

१८४ हे प्रभो ! तेरापंथ

मर्यादा महोत्सव संवत् १९२१ से २०४२ तक

	श्री जयाचार्य	श्री मघवा- गणि	श्री माणक- गणि	श्री डाल- गणि	श्री कालुगणि	आचार्य श्री तुलसी
१. बालोतरा	१९२१	—	—	—	—	२०२१
२. कंटालिया	१९२२	—	—	—	—	—
३. बीदासर	१९२३, २६,२७, २९,३०, ३१,३२, ३३,३५,	—	१९५१, ५३	१९६०, ६२ १९५४, ५५	१९६६, ६९ १९७०	२००४, २३, २०२७, ४१
४. सुजानगढ़	१९२४	१९४८	—	—	१९७५, ८०,८६	२००१, २०३४
५. लाडनूं	१९२५ ३४,३६,	१९४० ४१,४६	१९५२	१९५७, ५८, ६४,६५	१९६८, ७३,७८, ८३,८५, ९०	१९९७, २०१४, २०२०, ३२
६. जयपुर	१९२८, ३७	१९३८, ४७	—	—	—	२००६
७. रतनगढ़	—	१९४५	—	१९६१	—	१९९५ २०४३
८. सरदारशाहूर	—	१९४९	—	१९६३	१९७६, ७७ ८१,८७	१९९६, ९८, २००८, ९,१२, १३,३७
९. राजलदेसर	—	—	—	१९५६	१९६७, ७९,८२	२००५, ३५

१०. उदयपुर	—	—	—	१९५९	—	२०४२
११. डुंगरगढ़	—	—	—	—	१९८९	१९९९
१२. गंगापुर	—	—	—	—	१९७१	२०३१
१३. पाली	—	—	—	—	१९७२	—
१४. छापर	—	—	—	—	१९८८	—
१५. बगडी	—	—	—	—	१९९१	२०४५
१६. बडनगर	—	—	—	—	१९९२	—
१७. चूरु	—	१९३९	—	—	१९८४	—
१८. जोजावर	—	१९४३	—	—	—	२००३
१९. दौलतगढ़	—	१९४४	—	—	—	—
२०. ब्यावर	—	—	—	—	—	—
२१. गंगाशहर	—	—	—	—	—	१९९३ १९९४, २००० २८,३८
२२. भिवानी	—	—	—	—	—	२००७
२३. राणावास	—	—	—	—	—	२०१०
२४. बम्बई	...	...	...	...	...	२०११, २४
२५. हांसी	...	...	...	...	...	२०१६
२६. भीलवाड़ा	...	...	...	...	...	२०१२
२७. सेंधिया	...	...	...	...	...	२०१५

१८६ हे प्रभो ! तेरापंथ

२८. आमेट	...	...	...	...	...	२०१७
२९. राजनगर	...	...	...	...	...	२०१९
३०. नाथद्वारा	...	...	...	...	...	२०३९
३१. भीनासर	...	...	...	...	...	२०१८
३२. हिसार	...	...	...	...	...	२०२२
३३. हैदराबाद	...	...	...	...	...	२०२६
३४. चिदम्बरम	...	...	...	...	...	२०२५
३५. पडिहारा	...	...	...	...	...	२०३३
३६. मोमासर	...	...	...	...	...	२०२९
३७. संगरूर	...	...	...	...	...	२०३६
३८. दिल्ली	...	...	...	...	...	२०३०; ४४
३९. जसोल	...	...	...	...	...	२०४१

## तेरापंथ के ऐतिहासिक स्थल

१. कंटालिया—आचार्य भिक्षु की जन्म स्थली (सं० १७८३)
२. बगड़ी— " " का अभिनिष्क्रमण स्थल  
जैतसिंहजी की छतरी (सं० १८१६)
३. केलवा— " " की भावदीक्षा व तेरापंथ की  
स्थानपना का क्षेत्र (सं० १८१७)
४. राजनगर— " " का बोधि प्राप्ति स्थल (सं० १८१५)  
एवं अणुव्रत विश्वभारती का  
मुख्यालय (सं० २०३७)
५. जोधपुर—तेरापंथ का नामकरण स्थल (सं० १८१६)
६. सिरीयारी—आचार्य भिक्षु का निर्वाण स्थल (सं० १८६०)
७. लाडनूं—१. वृद्ध एवं रुग्ण साधवियों का स्थिरवास स्थल  
संवत् १९१४ से.....  
२. जैन विश्व भारती सं० २०२८ से.....  
मुख्यालय  
३. पारमार्थिक शिक्षण संस्था मुख्यालय  
४. आचार्य तुलसी का जन्म स्थल (संवत् १९७१)
८. बालोतरा—मर्यादा महोत्सव का प्रारम्भ (संवत् १९२१)
९. जयपुर—श्रीमद् जयाचार्य की दीक्षा एवं निर्वाण स्थल  
(संवत् १८६९ व १९३८)  
(स्मृति चिह्न-छत्री, रामनिवास बाग में)
१०. राणावास—तेरापंथ का प्रमुख शिक्षा केन्द्र ।
११. दिल्ली—१. अणुव्रत विहार, २१० दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली ।  
२. अध्यात्म साधना केन्द्र, महारौली, छत्रपुर ।
१२. बीदासर—तेरापंथ के आचार्यों के सर्वाधिक चातुर्मास एवं मर्यादा महोत्सव  
का क्षेत्र-चमत्कारिक घटनाओं से सम्पृक्त ।
१३. गंगापुर—आचार्य कालूगणिजी का स्वर्गारोहण एवं आचार्यश्री तुलसी का  
पट्टारोहण स्थान (संवत् १९६३)



१८८ हे ! प्रभो तेरापंथ

## तेरापंथ की अग्रणी साधवियां

अब तक तेरापंथ धर्म संघ में ११ साध्वीप्रमुखा हो चुकी हैं। इसमें प्रथम तीन को विधिवत् साध्वीप्रमुखा घोषित नहीं किया गया। क्योंकि उस समय तक इस पद की संरचना नहीं की गई थी। पर उन्होंने संघ की साधवियों का प्रवर्तन आदि साध्वीप्रमुखा की तरह ही किया। शेष आठ साधवियों की विधिवत् साध्वी-प्रमुखा पद पर नियुक्ति की गयी है—

१. साध्वीश्री वरजूजी	
२. साध्वीश्री हीरांजी	
३. साध्वीश्री दीपोंजी	(साधना काल सं० १८७२ से १९१८)
४. साध्वीश्री सरदारोंजी	(साध्वी प्रमुखा सं० १९१८ से १९२७)
५. साध्वीश्री गुलाबोंजी	( " " " १९२७ से १९४२)
६. " " नवलोजी	( " " " १९४२ से १९६५)
७. " " जेठोंजी	( " " " १९६५ से १९८१)
८. " " कानकुंवरजी	( " " " १९८१ से १९९३)
९. " " झमकूजी	( " " " १९९३ से २००३)
१०. " " लाडोजी	( " " " २००३ से २०२७)
११. " " कनकप्रभाजी	( " " " २०२८ से .....)

## आचार्यों के चातुर्मास (प्रथम शताब्दी)

(संवत् १८१७ से १६३८ तक)

	श्री भिक्षु स्वामी	श्री भारीमालजी	श्री ऋषिराय	श्री जयाचार्य
केलवा	१८१७, २१, २५ ३८, ४६, ५८	१८६४, ७८	—	—
सिरीयारी	१८१६, २२, २६, ३६, ४२, ५१, ६०	१८७२	—	—
पाली	१८२३, ३३ ४०, ४४, ५२ ५५, ५६	१८६२, ६८, ७३	१८७६, ८२, ८६ ९०, ९३, ९६ १९०२, ५	१९१३, २२
खैरवा	१८२६, ३२, ४१ ४६, ५४	१८६३	—	—
बगडी	१८२७, ३०, ३६	—	—	—
नाथद्वारा	१८४३, ५०, ५६	१८६५, ७४, ७७	१८८५, ८८, ९४ १९०१, ४	१९१०
पीपाड़	१८३४, ४५	—	—	—
सवाई मा. पु	१८३१, ४८	१८७०	—	—
कंटालिया	१८२४, २८	—	—	—
पुर	१८४७, ५७	१८७६	१८९४	—
बरलू	१८१८	—	—	—
राजनगर	१८२०	—	—	—

१६० हे प्रभो ! तेरापथ

आमेट	१८३५	१८६६	—	—
पाडू	१८३७	—	—	—
सोजत	१८५३	—	—	—
कांकरोली	—	१८७५	—	—
जयपुर	—	१८६६	१८८०, ६२, ६७, १६००	१६८६, २८, ३७, ३८
बोरावड	—	१८७१	१६०३, १६०७	—
बालोतरा	—	१८६७	—	—
पीसांगन	—	१८६१	—	—
गोगुन्दा	—	—	१८६१	—
उदयपुर	—	—	१८८३, ८६, ६५ १६०८	१६१२
बीदासर	—	—	१८८७, ६६	१६१४, १७, २३, २६, २७, ३०, ३५, ३६
पेटलावाद	—	—	१८८४	—
साडनूं	—	—	१८६८, १६०६	१६१५, १८, २७ ३२, ३३, ३४
रतलाम	—	—	—	१६११
सुजानगढ	—	—	—	१६१६, १६ २४, ३१
जोधपुर	—	—	—	१६२१, २५
चूरू	—	—	—	१६२०

## द्वितीय शताब्दी संवत् १६३६ से २०४२ तक

पूर्वाचार्य	श्री मधवा- गणि	श्री माणक गणि	श्री डाल- गणि	श्री कालूगणि	आचार्य श्री तुलसी गणि
जयपुर ११	१६४८	१६५२	—	१६८०	२००६,३२
जोधपुर २	१६४२	—	१६५६	१६७३,६१	२०१०,४१
उदयपुर ५	१६४३	—	—	१६७२,६२	२०१६
सरदारशहर—	१६४१ ४५	१६५०	१६५६ ६२	१६६७,७४ ८६	१६६५,२००६ १३,२०३३
बीदासर १०	१६४४ ३६ ४७	१६५३	१६५७ ६४	१६६८,७६ ८२,८८	१६६६,२०१८ २३
लाडनूं ८	१६४६	—	१६५५ ६२,६५, ६६	१६७०,८६	१६६७,२०२० २८,३४, ३७,४३,४६
सुजानगढ़ ४	—	१६५४	१६६०	१६७१,६०	२००१,१४
गंगाशहर	—	—	—	१६८३,८७	२०००,२०३५
बीकानेर	—	—	—	१६७६	१६६४,२०२१
चूरू १	१६४०	१६५१	१६६१	१६७६,८१	१६६६,२०२६
रतनगढ़	१६४६	—	—	१६७८	२००४
राजलदेसर	—	—	१६५८	१६७५	१६६८
भिवानी	—	—	—	१६७७	—
डूंगरगढ़	—	—	—	१६८४	२००२,२०१५
छापर	—	—	—	१६८५	२००५

१६२ हे प्रभो ! तेरापंथ

गंग।पुर	—	—	—	१६६३	—
राजनगर १	—	—	—	—	२०१७
बालोतरा १	—	—	—	—	२०४०
आमेट २	—	—	—	—	२०४२
राजगढ़	—	—	—	—	२००३
हांसी	—	—	—	—	२००७
दिल्ली	—	—	—	—	२००५, २०२२ २०३१, ३५, ४४
बम्बई	—	—	—	—	२०११
उज्जैन	—	—	—	—	२०१२
कानपुर	—	—	—	—	२०१५
कलकत्ता	—	—	—	—	२०१६
अहमदाबाद	—	—	—	—	२०२४
मद्रास	—	—	—	—	२०२५
बैंगलोर	—	—	—	—	२०२६
रायपुर	—	—	—	—	२०२७
राणावास	—	—	—	—	२०३६
लुधियाना	—	—	—	—	२०३६
हिसार	—	—	—	—	२०३०

